पार्थिव का सपना

कल्कि

पार्थिव का सपना

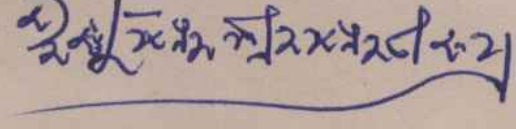

पार्थिव का सपना

लेखक
स्व० 'कल्कि'

अनुवादक
रा० वीलिनाथन

साहित्य अकादेमी

Parthiv ka Sapna : Hindi translation by R. Veezhinathan of Kalki's Tamil novel *Parthipan Kanavu* (abridged). Sahitya Akademi, New Delhi, fourth printing (1983), Rs. 15.

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : १९६६
द्वितीय संस्करण : १९६७
तृतीय संस्करण : १९७६
चतुर्थ संस्करण : १९८३

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली ११०००१

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम. कलकत्ता ७०००२९
१७२, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई ४०००१४
२९, एलडाम्स रोड (दूसरा तल्ला), तेनामपेठ, मद्रास ६०००१८

मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली ११००३२

प्रस्तावना

तमिष् प्रदेश में साहित्य के नाम से जो लिपिबद्ध सामग्री उपलब्ध है, वह अधिकांशतः छंदोबद्ध रूप में ही है। फिर भी नगरों और देहातों के सभा-समाजों तथा रंगमंचों में प्राचीनतम काल से पद्य के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ है। ऐसे अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि कहानी-कला हमारे देश में नाना रूपों में प्रचलित रही है।

ऐतिहासिक प्रमाणों की बात छोड़िए। तमिलनाडु के देहातों में आज भी मन्दिरों, मठों तथा सार्वजनिक जगहों में जनता की जुबानी हज़ारों की तादाद में कहानियां सुनने को मिलती हैं। आहा! उनमें कैसी अनूठी कल्पनाएं हैं! कैसी सौन्दर्य-सुषमाएं हैं! कहानी कहने के कैसे परिमार्जित शिल्प-विधान विद्यमान है। तात्पर्य यह है कि हजारों वर्ष पूर्व ही तमिष्-कुल की उपजाऊ हृदय-भूमि में कहानी-कला का उत्तम बीज पड़ा, सुन्दर सुकोमल अंकुर फूटे, जड़ें जमीं और पनप कर उसकी शाखा-प्रशाखाएं विशाल वट-वृक्ष की भांति फैलीं। फूलों और फलों से लदकर वह ऐसा सुशोभित हुआ कि तब जो क्रम चला, वह अब भी अटूट और अविच्छिन्न रूप में जारी है।

श्री कल्कि का जन्म तमिष् की इसी उपजाऊ मिट्टी में हुआ। उन्होंने जननी जन्म-भूमि की मिट्टी से प्राप्त प्राचीनता और अंग्रेज़ी के संपर्क से प्राप्त नवीनता, दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण किया और अपनी प्रबुद्ध मेधा-शक्ति लगाकर नई सुन्दर कल्पनाओं को जन्म दिया, जिससे तमिष् साहित्य की श्रीवृद्धि में चार चांद लगे।

साहित्यकार कल्कि से तमिष् भूमि भलीभांति परिचित है। उनकी कुछेक कृतियां पहले भी हिन्दी में अनूदित हो चुकी हैं। अब साहित्य अकादेमी ने उनके 'पार्थिव का सपना' का संक्षिप्त तमिष् संस्करण निकालने तथा भारत की अन्य भाषाओं में रूपांतरित करके प्रकाशित करने का प्रबंध किया है। यह अत्यन्त स्तुत्य प्रयत्न है।

'पार्थिव का सपना' एक ऐतिहासिक कल्पना है।

इतिहास और कल्पना दोनों भिन्नार्थ शब्द हैं। एक-दूसरे के उल्टे हैं। इतिहास कोई कल्पना नहीं है और कल्पना इतिहास नहीं बन सकती। फिर भी जब ये दोनों भिन्नार्थक शब्द मिलते हैं तब अनुपम सौन्दर्य पाते हैं। विभिन्नता में अभिन्नता लाना ऐतिहासिक गल्प की अपनी विशेषता है!

इतिहास की घटनाएं तो कंकाल-मात्र हैं। उस कंकाल पर मांस-मज्जा चढ़ाना, धमनियों में रक्त प्रवाहित करना, नसों में स्फूर्ति भरना और प्राण फूंककर जीवन-नाद भरना तो दुष्कर योग-साधना है। उस योग-मार्ग के यशस्वी साधक थे—कलाकार कल्कि।

इतिहास से सम्बन्धित घटनाओं को कथा का रूप देते हुए लेखक को चाहिए कि वह बहुत सतर्क रहे और ऐतिहासिक एवं काल्पनिक पात्रों को मिलाते समय पाठकों को भ्रम में पड़ने से बचाये। सच पूछा जाय तो यह एक तरह से रज्जु-नृत्य ही कहा जाएगा।

दो हजार वर्ष पहले तोल्काप्पियर ने अपने लक्षण-ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' में एक सूत्र रचा है :

"मुदलुम् मुडिवुम् मारु कोल इन्ड्रि
तौहैयिनुम् वहैयिनुम् पोरुण्मै काट्टि"

अर्थात्, आरम्भ और अन्त में कोई फ़र्क न पड़ने पाय और संकलन और विभाजन में सत्य-तत्त्व का ही निरूपण हो।

यह सूत्र ऐतिहासिक गल्प के विषय में शत-प्रतिशत लागू होता है।

'पार्थिव का सपना'—इस उपन्यास की कथा-वस्तु पल्लवों के स्वर्ण सुशासन काल से ली गई है। चोल साम्राज्य का अभ्युदय उसी के बाद होने वाला था। बीच का संक्रांति काल तमिलनाडु के इतिहास में अपना अलग महत्त्व रखता है। यह काल तो ऐसा था, जैसे एक राजमार्ग के मोड़ पर दूसरे राजमार्ग की शुरुआत हो। कल्कि ने अपने उपन्यास की कथावस्तु दुराहे की इसी मिलन-स्थली से ली है और महती साधना की है।

इस उपन्यास में प्रेम और कर्त्तव्य एक-दूसरे से टकराते हैं और अन्त में गले लगते हैं। पल्लव और चोल कसकर मुकाबला करते हैं। उनका वह जोश-पूर्ण आक्रमण स्नेहपूर्ण गाढ़ालिंगन में परिणत होता है। कथा की घटनाओं में कापालिक आते हैं। मामल्लपुरम् में पल्लवों ने कला की जो स्वप्नपुरी निर्मित की थी, वह हमारी आंखों के सामने भित्ति-चित्र की भांति खड़ी हो जाती है। झरने, नद-नदियां नन्दन-कानन, वन-वनान्तर, बलिवेदी, रण-क्षेत्र, राज-दरबार, अन्तःपुर, फुलवारियां, धर्मशालाए, नौका-घाट, नीला सागर, चंपक द्वीप आदि अनूठे दृश्य ऐसे उभर कर आते हैं कि वे हमारे मनः-पटल पर अंकित होकर निरन्तर वास करने लग जाते हैं।

डॉक्टर सी० मीनाक्षी देवी, मइलै चीनि वेंकटसामी-जैसे इतिहास-वेत्ताओं के ग्रंथों और चोल-वंश-संबंधी शोध-पत्रों को पढ़ने पर हमें मालूम होगा कि कल्कि ने अपने उपन्यास की पृष्ठभूमि तथा घटना-विशेषों के वर्णन के लिए उन ग्रंथों का कितना गहरा अध्ययन किया है। साथ ही हमें इस बात का भी पता चलेगा कि

वास्तविक घटनाओं के साथ आधारित काल्पनिक घटनाओं का कैसा सामंजस्य बिठाया है तथा पाठकों के मन मोह लिए हैं।

उपन्यास तो आपके हाथ में है। आम खाने से पहले आम के सम्बन्ध में लम्बा-चौड़ा व्याख्यान देने की भी कोई आवश्यकता होती है क्या ? लेकिन फिर भी यहां एक बात का उल्लेख कर देना जरूरी है। साहित्य अकादेमी वालों ने मुझे सुझाया कि इस ग्रंथ को अन्यान्य भारतीय भाषाओं में रूपांतर करने योग्य बनाना है; अतः इसकी लम्बाई में कुछ कमी की जाय पर स्वाद रंचमात्र भी न घटने पाय। कल्कि के सुपुत्र श्री राजेन्द्रन् ने भी मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान की है। मंगल तूलकम् के प्रकाशकों ने बड़े उत्साह से इसके प्रकाशन का बीड़ा उठाया है। अपने परम पूजनीय साहित्यकार की कृति को दूसरे भाषाभाषियों के सामने रखने का सौभाग्य हमें मिल रहा है—इस आनन्दोल्लास में भरकर मैंने अपना यह कार्य संपन्न किया है। इसमें मैंने अपनी ओर से कुछ भी नहीं मिलाया है। इसके सारे वाक्य कल्कि के ही वाक्य हैं। मूल-ग्रन्थ को संक्षिप्त करते हुए मैंने इस बात का ख़याल रखा है कि घटना-प्रतिघटनाओं का क्रम न टूटने पाय, कथा-पात्रों के स्वरूप में कहीं कोई अदला-बदली न हो जाय तथा वर्णन की सुषमा-सुन्दरता न बिगड़ने पाय। स्वर्गीय लेखक की शांति में ख़लल न पड़ जाय, उनकी आत्मा को टीस न पहुंचे—इस विचार से मैंने फूंक-फूंककर कदम रखा है। अतः मूल ग्रंथ का स्वरूप जैसे-का-तैसा अपके हाथ में है।

मामल्लपुरम् के शिला-शिल्पों की ही भांति अमर कलाकार कल्कि ने एक शब्द-शिल्प खड़ा किया है, 'पार्थिव का सपना' नाम से। मैं आप लोगों को आमन्त्रण देता हूं कि आइए, इसके अन्दर प्रवेश करके साहित्य-शिल्प की सौंदर्य-सुषमा का आनन्द लूटिए।

मद्रास
१०. १०. ५७

मी. प. सोमसुन्दरम् (सोमु)

भूमिका

फ्रांस देश में वाल्तेयर नाम का एक महान् साहित्यकार था। वह इसलिए महान् नहीं था कि उसकी आकृति बड़ी या भारी थी। बल्कि इसलिए कि सच-मुच उसकी लेखनी में महानतम शक्ति थी। उनके ज़माने में फ्रांस की बागडोर पन्द्रहवें लुई के हाथ में थी।

एकाएक एक दिन लुई के मन में आया कि हम भी क्यों न कोई कहानी लिखें? जब राजा के मन में कोई बात आती है तो फिर पूछना ही क्या?

उसने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया कि लाओ कागज़-क़लम! तुरन्त कागज़-क़लम हाज़िर किये गए। राजा ने लिखना शुरू किया। पृष्ठों पर पृष्ठ भरके उसने एक बड़ी पोथी लिख डाली।

लिख चुकने के बाद उसने राय जानने के लिए वाल्तेयर को बुला भेजा और हुक्म दिया, "मैंने कहानी लिखी है। पढ़कर मुझे अपनी राय बताओ!"

वाल्तेयर ने उसे पूरा पढ़ा और कहा, "मैंने पढ़ ली।"

"कहानी कैसी लगी?"

"बिलकुल रद्दी!"

यह उत्तर सुनते ही राजा के गुस्से का पारा ऐसा चढ़ा कि उसने तुरन्त आदेश दे दिया कि इसे कारागृह में बंद कर दो।

राजा की आज्ञानुसार सिपाहियों ने वाल्तेयर को ले जाकर कारागृह में डाल दिया।

कुछ दिनों बाद राजा पर फिर से कहानी लिखने की सनक सवार हुई। उसने एक और कहानी लिखी। अब की बार भी कहानी पढ़कर राय देने की ज़िम्मेदारी वाल्तेयर पर ही पड़ी। राजा के हुक्म पर वाल्तेयर कारागृह से बाहर लाया गया।

राजा ने कहा, "मैंने एक दूसरी कहानी लिखी है। कोई जल्दी नहीं, फ़ुरसत से पढ़ो और अपनी राय दो।"

वाल्तेयर ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके पूरी कहानी बड़े ध्यान से पढ़ी।

"कैसी लगी?"—कड़कते स्वर में राजा ने प्रश्न किया।

वाल्तेयर ने शांत स्वर में कहा, "मुझे फिर जेल जाना मंज़ूर है, वहीं भेज दीजिये!"

उस राजा की तरह कितने ही लोग यह सोचते हैं कि कहानी लिखना बड़ा

ही आसान काम है। लेकिन भुक्तभोगी ही जानता है कि वह कितना कठिन कार्य है। तमिलनाडु जिन्हें शीर्षस्थानीय साहित्यकारों में अग्रगण्य मानता है, उनके साथ, उनका पुत्र होने के नाते, मुझे जन्म ही से रहने-सहने का सौभाग्य मिला है। इस बूते और हक़ पर मैं यह लिखने की हिम्मत नहीं तो धृष्टता करता हूं :

कहानी लिखना आसान काम नहीं है। अत्यन्त कठिन काम है। धारावाहिक रूप से उपन्यास लिखना तो उससे भी कठिन है। वह उपन्यास ऐतिहासिक हो तो यह मानना ही पड़ेगा कि असाध्य न होने पर भी वह दुःसाध्य अवश्य है।

साहित्यकार कल्कि ऐतिहासिक उपन्यास कैसे लिखते थे, सो मालूम है? उनकी मेज़ के ही निकट लोहे के सन्दूक में इतिहास-संबंधी प्रामाणिक ग्रन्थ रखे होते थे। लिखने के पहले वे उन ग्रंथों का ऐसा अध्ययन कर लेते थे कि मन में उस काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भली-भांति अंकित हो जाय। यही क्यों, स्वयं अपने को वे उसी काल का महसूस करते थे। फिर खूब आगा-पीछा सोचते और लिखने को क़लम उठाते थे। लेखनी बीच-बीच में रुक जाती, लिखी बात को काटती, कटी बात का संशोधन करती और तभी आगे बढ़ती थी।

इस तरह बड़े यत्न से लिखे ऐतिहासिक उपन्यासों में 'पार्थिव का सपना' भी एक है। समूचे भारत का रसिकवृन्द इसे पढ़े और लाभ उठाये, यह कार्य साहित्य अकादेमी के सहयोग से संपन्न होने जा रहा है। भारत की चौदहों भाषाओं में इसका रूपान्तर प्रकाशित होने वाला है। इसका पहला क़दम है तमिष् में यह संक्षिप्त संस्करण। श्री सोमु ने सुन्दर ढंग से इसका संक्षिप्तीकरण किया है। मैं उनका हृदय से आभार मानता हूं।

मद्रास

कृ० राजेन्द्रन्

अनुवादक की ओर से

"शेन्ड्रिडुवीर् एट्टु तिक्कुम कलैच्चेल्वंगल
यावुम् कोणर्दिगु शेर्पीर् ।"

तमिष् के महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की यह सूक्ति है। भारत के सपूतों से वे चाहते हैं कि वे आठों दिशाओं में जायं और जहां भी जो भी उत्तम कला-रत्न मिलें, उन्हें अपने भारत के खजाने में लाकर सुरक्षित करें।

महाकवि के इस आदेश के पालन में मेरे भी जीवन का कुछ अंश व्यतीत हो रहा है। सेतु-बन्धन के काम में गिलहरी के छोटे-से बच्चे ने श्री रामचन्द्र को जो सहयोग पहुंचाया था, मेरे द्वारा भी साहित्य के आदान-प्रदान के कार्य में, उत्तर और दक्षिण के बीच सेतु-बन्धन के रूप में वही तो नहीं हो रहा है! एक बात यहां कह दूं। मुझे साहित्य-सेवी बनाने का सारा श्रेय मेरे प्रिय बंधु श्री पूर्णम् सोमसुन्दरम् को है, जो आजकल सोवियत रूस में साहित्य-सेवा का ही कार्य कर रहे हैं। मेरी भाषा और शैली देखकर उन्होंने जो प्रोत्साहन दिया। उसीसे प्रेरित होकर मैंने साहित्य के क्षेत्र में क़दम रखा।

मुझे इस बात का बड़ा गर्व है कि अहिन्दी भाषा-भाषी होते हुए भी मेरी पहली रचना हिन्दी में ही छपी थी और श्रद्धेय कवि स्व० सियारामशरण गुप्त, पंडित श्री हृषीकेश शर्मा-जैसे महानुभावों की प्रशंसा की पात्र भी हुई। साहित्य के आदान-प्रदान के कार्य में बढ़ते-बढ़ते आज यह दिन भी आ गया है कि साहित्य अकादेमी-जैसी संस्था ने तमिष् के मूर्धन्य साहित्यकार स्वर्गीय रा० कृष्णमूर्ति 'कल्कि' के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'पार्थिव का सपना' का हिन्दी रूपान्तर करने का भार मुझे सौंपा है। इस काम में मुझे सफलता मिली है, या नहीं —यह विज्ञ पाठक ही जानें।

मेरा अनुभव कहता है कि मौलिक रूप से साहित्य-रचना करना जितना आसान है, अनुवाद करना उतना आसान नहीं है। मौलिक रूप से लिखते समय लेखक को अपनी मर्यादा और सामर्थ्य का ध्यान रहता है। वह अपनी ताकत से बाहर की ऊंची उड़ान नहीं भर सकता। पर अनुवाद-कार्य करते हुए अनुवादक को मूल लेखक की आत्मा से भली-भांति परिचित होना पड़ता है और तभी वह मूल लेखक के साथ यथोचित न्याय कर सकता है।

'क्या अनुवाद-कार्य भी कोई बड़ी कला है?'

यह प्रश्न करने वालों के सामने एक छोटा-सा उदाहरण पेश करना चाहता हूं।

सोवियत रूस में अनुवाद के विषय में जो शोध कार्य हुआ था, वह यह सिद्ध करता है कि अनुवाद करना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। सोवियत रूस के एक राजनीतिक नेता ने रूसी भाषा में जो भाषण दिया था उसका अंग्रेजी में अनुवाद करने का काम चार-पांच सिद्धहस्त अनुवादकों को सौंपा गया। अनुवाद पूरा होने पर देखा गया कि एक दूसरे के अनुवाद में काफी अन्तर है। अनुवादकों ने मगज़-पच्ची करके प्रामाणिक अनुवाद तयार किया तो उसे फिर से रूसी भाषा में रूपान्तरित कराया गया। मूल रूसी भाषण और रूपान्तरित लेख—दोनों की तुलना करने पर यह नतीजा निकला कि दोनों में पर्याप्त अन्तर है। कहीं-कहीं तो अर्थ का अनर्थ ही हो गया था।

एक ही भाषा-भाषी जहां एक-दूसरे की बात समझने में ग़लती कर बैठते हैं, वहां दूसरे भाषा-भाषी कुछ अर्थ का अनर्थ कर बैठें आश्चर्य की क्या बात है?

मुझ पर भरोसा करके—एक अहिन्दी भाषी की हिन्दी-सेवा पर भरोसा करके साहित्य अकादेमी ने कल्कि-जैसे महान् लेखक की कृति को मेरे हाथ में अनुवाद के लिए सौंपा तो मैं बल-संबल पाकर अखाड़े में उतर गया। फल-स्वरूप 'पार्थिव का सपना' का हिन्दी रूप पाठकों के हाथों में है।

कालिदास-जैसे महाकवि, जिन पर भारतीय साहित्य को नाज़ है, अपने अनुपम नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के प्रयोग-विज्ञान पर शक करते हैं और कहते हैं कि जब तक विद्वानों का समाज सराहना नहीं करेगा, तब तक मैं कैसे मानूं कि मुझे अपनी रचना में सफलता मिली है। साहित्य-जगत् में उनके समक्ष बैठने की योग्यता मुझे भले ही हासिल न हो, पर उनके सुर-में-सुर मिलाकर यह कहने का अधिकार तो प्राप्त है ही। उससे मैं क्यों वंचित होऊं? अतः उन्हीं के शब्दों को दुहराता हूं :

"आपरितोषात् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोग विज्ञानम्।"

रा० वीलिनाथन्

'कल्कि' कार्यालय
मद्रास-१०
२ अगस्त, १९६६

एक

कावेरी नदी के तीर पर शांति विराज रही थी। उदय होते सूर्य की सुनहरी किरणों से नदी का रक्ताभ सलिल स्वर्णिम रंग से रंग गया था। उस समय उस पुण्य नदी का 'पोन्नि' (स्वर्णा) नाम सर्वथा उपयुक्त ही लगा।

दृष्टि जहां तक जाती थी, पानी-ही-पानी दिखाई देता था। नदी के बीच पूर्वोत्तर दिशा में एक हरा-भरा द्वीप दृष्टिगोचर हो रहा था। उस द्वीप के मध्य भाग में, हरे-भरे पेड़ों के झुरमुट में, ऊंचाई में उनसे होड़ लगाता हुआ एक महल गर्वोन्नत खड़ा था। उसका स्वर्ण-कलश सूर्य की किरणों में जगमग-जगमग कर रहा था।

उस मनोहारिणी ऊषावेला में जो मधुर ध्वनियां वहां गूंज रही थीं वे नदी-तट की सौम्य शोभा को और भी आकर्षक बना रही थीं। विशाल वटवृक्षों पर निवास करने वाले पक्षी सूर्योदय के स्वागत में सुमधुर कलरव कर रहे थे। कलकल बहता नदी का जल प्रकृति के उस गायन में तानपूरे का काम दे रहा था। दाने की खोज में प्रस्थान करते हुए पक्षी पंख फड़फड़ाकर ताल का अभाव दूर कर रहे थे। चिड़ियां अपने बच्चों को दुलारकर विदा ले रही थीं।

वटवृक्षों के बीच पीपल का एक बड़ा वृक्ष ऊंचा खड़ा था, जो अपने पत्तों की मर्मर से अपने भी अस्तित्व की सूचना दे रहा था। नदी-किनारे वटवृक्षों की लटकती शाखाओं से जो नौकाएं बंधी थीं, नदी की तेज़ धारा उन्हें बहा ले जाने का ज़ोर-शोर से प्रयत्न कर रही थी। पर अपना कोई वश न चलता देख वह क्रोध से गरज पड़ी, "अच्छा! तुम्हारी इतनी मजाल! सारी शेखी किरकिरी करके ही दम लूंगी। क्या समझ रखा है मुझे!"

किनारे से थोड़ी दूर पर एक वटवृक्ष की छाया में एक कुटिया दिखाई दी। उसकी छत से धुआं छनकर निकल रहा था। चूल्हे पर बाजरे की 'अड़े'(रोटी-जैसा खाद्य-पदार्थ) बन रही थी, जिसकी हल्की-सी महक भी फैल रही थी।

कुटिया के द्वार पर एक दुधारू भैंस बैठी जुगाली कर रही थी। उसका कटरा पास ही खड़ा कौतुक-भरे नेत्रों से उसकी जुगाली देख रहा था।

टप टप, टप टप, टप···

नदी-किनारे की शांति को भंग करती हुई घोड़े की टाप सुनाई दी।

टप टप, टप टप, टप···

क्षण-क्षण घोड़े की टाप निकट आने लगी। थोडी देर में एक सुन्दर गठीला घोड़ा दिखाई दिया जो सरपट दौड़ा चला आ रहा था। उसकी पीठ पर लंबे कद

का एक आजानुबाहु सवार बैठा था। बड़ी तेज़ी से आने के कारण घोड़ा और सवार दोनों पसीने से तरबतर हो गए थे। नौका-घाट पर आते ही घोड़ा रुका और उसकी पीठ पर बैठा सवार छलांग मारकर नीचे उतरा।

कुटिया के भीतर एक सुन्दर युवती चूल्हे के सामने बैठी 'अड़े' बना रही थी। पास ही एक हट्टा-कट्टा नवयुवक बैठा था और बरगद के पत्तों की हरी पत्तलों पर परोसी हुई बाजरे की रोटी को सब्ज़ी के शोरबे में डुबा-डुबाकर बड़े चाव से खा रहा था। एक बार वह चटकारा भरकर बोला, "अरी मेरी वल्लि ! न जाने और कितने दिन तुम्हारे हाथ की रोटी और सब्ज़ी खाना मेरे भाग्य में लिखा है !"

"रोज़ तुम्हारे मुंह से ऐसी ही बातें सुनती रहती हूं। फिर कभी ये बातें मुंह पर लाओगे तो सच मानो मैं यह चूल्हा तोड़कर कावेरी मैया में बहा दूंगी"— युवती ने गुस्से में भरकर कहा।

"मैं हंसी नहीं कर रहा हूं, वल्लि ! महाराज और महारानी में कल जो बातें हुई थीं वे मैंने अपने इन्हीं कानों से सुनी हैं। युद्ध होगा ज़रूर।" युवक ने ज़ोर देकर कहा।

"युद्ध हो या न हो, तुम्हें उससे क्या ? तुम्हें कौन युद्ध में बुला रहा है ? तुम्हारा काम तो नौका खेना है।"

"इस बार यह नहीं होने का, मैं महाराज के पैरों पड़कर हठ करूंगा कि वे मुझे भी युद्ध में ले जाएं।"

"तो मैं भी तुम्हारे पैरों पड़कर हठ करूंगी कि मुझे भी अपने साथ लेते चलो। न मानो तो मुझे फिर से उसी कावेरी मैया में बहा दो जिससे निकालकर मेरी जान बचाई थी।"

"शाबाश, वल्लि ! शाबाश ! खूब कहा तुमने। चोल देश की आज यही हालत हो गई है ! औरतें हाथ में तलवार लेकर लड़ने निकलें और मर्द घर में बैठकर अपनी जान की खैर मनायें···ज़रा सुनो तो, घोड़े की टाप-सी सुनाई देती है।"

उसी समय घोड़े की टाप सुनाई दी थी। उसे सुनते ही युवक की देह में एक लहर-सी दौड़ गई। रोटी खाना छोड़कर जूठे हाथों ही वह उठ पड़ा और द्वार की ओर बढ़ा।

युवक को देखकर घोड़े पर आया हुआ सिपाही बोला, "पोन्नन, नाव जल्दी खोलो। महाराज के लिए समाचार लाया हूं।"

"अभी आया !" कहकर पोन्नन अन्दर दौड़ा हुआ गया। वल्लि उसी समय दूसरी 'अड़े' बनाने के लिए कलछे में आटा भर रही थी।

"वल्लि, सिपाही उरैयूर से कोई खास खबर लाया है। कहता है कि जल्दी जाना है। इसलिए मैं जा रहा हूं।" यह कहता हुआ पोन्नन द्वार की ओर मुड़ा तो

वल्लि बरस पड़ी, "ऐसी भी कोई जल्दी है, अभी तो आधा पेट भी नहीं भरा। मुझे तो ये बातें बिलकुल नहीं भातीं।"

"क्या किया जाय, वल्लि ! राजा की नौकरी जो ठहरी !" कहता हुआ पोन्नन उसके निकट गया और उसका झूठे गुस्से से भरा चेहरा बड़े प्यार से अपनी ओर किया। वल्लि के मुख पर मुस्कान खेलने लगी। लटकती लटें उस पर पर्दा-सा डालने लगीं तो बाएं हाथ से उठाकर वल्लि ने उन्हें सिर पर खोंस लिया और कहा, "अच्छा, जल्दी आ जाना।"

इतना कहकर इधर वल्लि ने अपना मुंह ऊपर उठाया, उधर पोन्नन ने अपना झुकाया। दोनों के अधर मिलने को ही थे कि बाहर से ऊंची आवाज़ आई, "अरे पोन्नन, देर हो रही है जल्दी चलो !"

पोन्नन ठिठक गया। "अभी आया" कहकर वह कुटिया के अन्दर से बाहर की ओर दौड़ पड़ा।

पोन्नन के चले जाने के बाद वल्लि घर के काम-काज में व्यस्त हो गई। पर न जाने क्यों, मन किसी काम में न लगा। वह बार-बार कुटी के द्वार पर जाती और अपनी कजरारी आंखें घुमाकर चारों ओर दृष्टि डालती। ऐसा लगता था, मानो वह बड़ी उत्सुकता से किसी विशेष घटना की प्रतीक्षा कर रही हो।

उसकी उत्सुक प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं गयी। थोड़ी देर में उरैयूर की तरफ़ से दस-पंद्रह घुड़सवार आए। उनके संरक्षण में सुन्दर सजे हुए दो सफ़ेद घोड़े और एक दंतशिविका आयी। उन श्वेत-वर्ण अश्वों पर कोई सवार न था। शिविका भी खाली ही आई थी। शरीर-बल से संपन्न आठ हट्टे-कट्टे व्यक्ति शिविका उठा लाये थे।

सब नौका-घाट से थोड़ी दूर पर आ खड़े हुए। शिविका नीचे उतारी गई। अश्वारूढ़ सिपाही भी नीचे उतर गए और घोड़ों को पेड़ों के तनों से बांधने लगे।

उनमें से दो सिपाही कुटिया के निकट आये।

"वल्लि, थोड़ा पानी तो पिलाओ।" वेलप्पन ने कहा।

वल्लि बड़ी फुर्ती से अन्दर गई और एक मटके में मट्ठा उठा लाई। उधर दोनों ने मट्ठा पीना आरम्भ किया, इधर वल्लि पूछ बैठी, "सुना है कि आज ही महाराज उरैयूर जा रहे हैं, बात क्या है ? इन महीनों में तो वे बसंत महल में ही रहा करते थे न ?"

"हमसे क्या पूछती हो, अपने आदमी से क्यों नहीं पूछती, वल्लि ? ऐसा भी कोई राज्य-रहस्य है जो पोन्नन मल्लाह न जाने !" वेलप्पन ने कहा।

"सुबह खाने को बैठे ही थे कि कोई आदमी आया और कहने लगा कि महाराज को जल्दी खबर पहुंचानी है। सो झटपट वह हाथ धोकर चल पड़े। ठीक से खाया भी नहीं।" वल्लि ने कहा।

"देखो भाई, पति से इसका कैसा लगाव है ! औरत हो तो ऐसी हो !" वेलप्पन की यह बात सुनकर वल्लि के गाल लज्जा से लाल हो उठे। बोली, "बस, बस ? रहने दो अपनी हंसी-दिल्लगी।"

"बुरा न मानो, वल्लि ! ऐसी हंसी-दिल्लगी न जाने हम और कितने दिन कर सकेंगे ?" वेलप्पन ने गद्‌गद् होकर कहा।

"अरे, क्या कह रहे हो तुम, साफ-साफ बताओ। आखिर बात क्या है ?" वल्लि ने पूछा।

"बड़ा युद्ध होने वाला है, तुम नहीं जानतीं ?"

"हां, युद्ध की बात तो बड़े लम्बे अर्से से चल रही है। लेकिन मालूम नहीं, क्यों यह युद्ध होने वाला है ?"

"चार-पांच सालों से हमारे महाराज ने कांची के नरसिंह वर्मा चक्रवर्ती को कर अदा नहीं किया। सुना जाता है कि कांची के चक्रवर्ती उत्तर की चढ़ाई से वापस लौटे हैं। चार वर्ष से हमारे महाराज ने कर क्यों नहीं दिया ?—इसका जवाब तलब करते हुए उन्होंने दूत भेजे हैं। वे आज महाराज से मिलने आ रहे हैं।" वेलप्पन ने उत्तर दिया।

"इतनी-सी बात के लिए युद्ध क्यों हो, क्या हमारे महाराज के पास इतना धन नहीं है कि चारों वर्ष का कर एकमुश्त अदा कर दें ?" वल्लि ने अनजान बनकर पूछा।

"पर हमारे महाराज तो कर देना ही नहीं चाहते। कहते हैं कि आगे बढ़ा हुआ कदम पीछे नहीं हटाएंगे।"

ये लोग बातें कर ही रहे थे कि नदी में एक नाव आती हुई दिखाई दी। वेलप्पन और उसका साथी जल्दी से वापस अपने साथियों में जा मिले।

थोड़ी देर बाद नाव किनारे आ लगी। यह वह साधारण नाव नहीं थी, जिसे पोन्नन जाते समय ले गया था। यह एक राजसी नाव थी। बढ़िया कारीगरी का सुन्दर नमूना। इसके एक छोर पर खूबसूरत मण्डप था। उस मण्डप के नीचे तीन व्यक्ति बैठे थे। उनकी वेशभूषा से मालूम होता था कि वे राजघराने के हैं। वे तीनों और कोई नहीं, चोल महाराज पार्थिव, महारानी अरुल्मोलि और राजकुमार विक्रम थे।

नाव से उतरते ही महाराज की दृष्टि पोन्नन की कुटिया की ओर गई। वल्लि द्वार पर खड़ी थी। महाराज ने इशारे से उसे अपने पास बुलाया। वल्लि दो-ही-चार कदमों में उनके पास पहुंच गई और घुटने टेककर प्रणाम किया। महाराज ने उठने का आदेश दिया तो वह पोन्नन के बगल में जाकर विनयपूर्वक खड़ी हो गई।

"वल्लि ! पोन्नन तुम्हारी देख-भाल ठीक तरह से करता है न ?"

महाराज का यह प्रश्न सुनकर वल्लि ने सिर झुका लिया। उसके मुंह पर लज्जा-भरी मुस्कान खेलने लगी। उससे कोई उत्तर न देते बना। तब महारानी ने कहा, "आपको यह नहीं पूछना चाहिए था। इसके बदले आप यह पूछते कि 'तुम पोन्नन की देख-भाल ठीक तरह से कर लेती हो न ?' तो वल्लि झट से उत्तर दे देती।"

महाराज हंसकर बोले, "वल्लि, सुनीं, तुमने महारानी की बातें ? पोन्नन की देख-भाल सावधानी से करना। उसे इधर-उधर न जाने देना। जैसे तुम्हें बाढ़ से बचा लाया, वैसे ही और किसी को वह बचा लाया तो क्या होगा ?"

एक ओर तो वल्लि लाज-शरम से गड़ गई और दूसरी ओर प्रेम पुलक से भर गई। उसका मन आनन्द से हिलोरें लेने लगा। उसकी झुकी हुई अदा कुछ ऐसी बन गई, मानो कोई कोमल कनकलतिका हो।

लेकिन पोन्नन का ध्यान हंसी-दिल्लगी की इन बातों पर नहीं था। उसने हाथ जोड़कर विनती की, "महाराज मुझे एक वर दीजिए। जब महाराज युद्ध में चलें तो सेवक को भी साथ ले चलें।"

महाराज कुछ सोच में पड़ गए, फिर बोले, "पोन्नन, मैं तुम्हारे मन की बात जानता हूं। लेकिन तुम्हें यह वर नहीं दे सकता। तुम्हें यहीं रहना चाहिए। यदि मैं रणक्षेत्र से न लौटा···राजकुमार को तैरना सिखाने का ज़िम्मा तुम्हारा है।"

पोन्नन और वल्लि दोनों की आंखें भर आईं। महारानी आरुलमोलि देवी ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी। उसके मन में कौन जाने उस समय क्या बीत रहा था !

दो

पोन्नन और वल्लि अपनी झोंपड़ी बंद करके उरैयूर की ओर चल पड़े। उरैयूर नौका-घाट से एक कोस पश्चिम में था। उन दिनों चोल साम्राज्य अपना पुरातन गौरव गंवा बैठा था और सामंतशाही राज्य-मात्र रह गया था। दक्षिण से पांड्य और और उत्तर से पल्लव दोनों राज्यों ने, नई कीर्ति प्राप्त करके चोल देश पर एक धावा बोल दिया और उसे दबाकर उसके गौरव को ध्वस्त कर दिया। किन्तु शस्य-श्यामला चोल भूमि की सम्पन्नता और दानशीलता का वे कुछ न बिगाड़ सके। जो कावेरी चोल प्रदेश की सुख-समृद्धि का कारण थी, उसे भी वे लूटकर न ले जा सके। उरैयूर राजमार्ग के दोनों ओर दृष्टि डालने पर देखा जा सकता था कि चोल देश की जल-थल संपत्ति किस प्रकार की थी। एक ओर किनारों को चूमती हुई, ताल दे-देकर हंसती-खिलखिलाती कावेरी नदी और उसके पार मस्ती में झूमते, नीले आकाश से बातें करते नारियल के झुरमुट। दूसरी ओर सूदूर क्षितिज तक शस्य-श्यामला नित्य नवयौवना उर्वरा भूमि की हरियाली

ही हरियाली दृष्टिगोचर होती थी।

खेतों में धान के पौधे रोपे जा चुके थे। उन नन्हें पौधों की हरीतिमा कुछ-कुछ गाढ़ी हो चली थी। निकट के झरनों से कलकल बहता पानी खेतों को सींच रहा था। श्वेत-वर्ण सारस पानी में एक पांव पर तपस्या करते-से खड़े खेत की हरियाली निहार रहे थे। खेतों के बीच जगह-जगह कदली के वन, नारियलों के झुरमुट, गन्नों के पौधे आदि भी सिर उठाए खड़े थे। ऐसी सुन्दर हरी-भरी भूमि की शांति भंग करने के लिए रणचंडी कदम बढ़ाती चली आ रही थी। चोल देश की प्रजा कितनी परेशान और बेचैन थी, उसे उरैयूर की ओर बढ़ते हुए पोन्नन और वल्लि ने स्वयं अपनी आंखों देखा।

वे जब उरैयूर के दुर्ग-द्वार पर पहुंचे, तब सूरज डूबने लगा था। ठीक उसी समय दुर्ग-द्वार खुला। भीतर से कुछ घुड़सवार आते दीख पड़े। आगे-आगे जो सवार आ रहा था उसके हाथ में सिंह-ध्वजा फहरा रही थी। उसे देखते ही पोन्नन समझ गया कि वे ही पल्लव-दूत हैं जो दोपहर को उरैयूर गये थे। दोनों कुछ हटकर खड़े हो गए। दुर्ग-द्वार पार करते ही घोड़े हवा से होड़ लगाने लगे। उनके पैरों से उड़ती धूल जब तक ओझल न हुई तब तक पोन्नन और वल्लि उसी दिशा की ओर एकटक देखते रहे। फिर दुर्ग-द्वार से होकर नगर में प्रविष्ट हुए।

नगर की गलियों में लोग छोटी-छोटी टोलियों में खड़े बातें कर रहे थे। एक टोली के पास पोन्नन और वल्लि भी जा खड़े हुए। एक व्यक्ति पल्लव-दूतों के आने पर राज्य-सभा में जो कुछ हुआ उसका वर्णन कर रहा था।

"अहा! उस दृश्य का वर्णन कैसे करूं? महाराज गांभीर्य की मूर्ति बने सिंहासन पर बैठे थे। युवराज, मंत्रीगण, सेनापति आदि अपने-अपने स्थान पर आसीन थे। दरबार में ऐसी स्तब्धता छाई हुई थी कि तिल रखने की ध्वनि भी स्पष्ट सुनाई दे जाती। महाराज ने आदेश दिया, "दूतों को लिवा लाओ।" उनके स्वर से अवर्णनीय तेज फूट रहा था। दूत आये। उनके प्रधान ने आगे बढ़कर महाराज को प्रणाम किया।

"'क्या संदेश लाये हो?' महाराज ने दूत से पूछा। उनके इस सिंहनाद से दूत तिलमिला गया। उसकी बोलती बन्द हो गई। लड़खड़ाते स्वर में बोला, 'त्रिलोक चक्रवर्ती कांची मण्डलाधिपति शत्रुसंहारी नरसिंह वर्मा पल्लव राय के दूत हैं हम···' हमारे राजविदूषक ने उसे आगे न बोलने दिया। बीच में ही टोककर पूछा, "ठहरिये-ठहरिये, दूत महाशय! पहले यह बताइये, वे किस त्रिलोक के चक्रवर्ती हैं? अतल, सुतल, पाताल के या चंद्रलोक, इन्द्रलोक, यमलोक के?' सभा में ऐसे जोर का ठहाका लगा कि रुकने को ही न आता था। दूत बड़े असमंजस में पड़ा। उसकी देह कांप उठी, जीभ लड़खड़ा गई। फिर किसी तरह अपने को संभालकर बोला, 'आपके दादा के ज़माने से प्रति वर्ष कांची नरेश को जो कर

दिया जाता था, वह पिछले छः वर्षों से नहीं पहुंचा है। इसका क्या कारण है? चक्रवर्ती इसकी कैफ़ियत चाहते हैं।'

"अहा, उस समय महाराज की मुख-मुद्रा देखने योग्य थी। बोले—'दूत! अपने चक्रवर्ती महाराज से जाकर कहो, उन्होंने जो जवाब-तलब किया है, उसका उत्तर हम रणभूमि में आकर देंगे।' यह सुनकर मुझे रोमांच हो आया···।"

वर्णन करने वाला व्यक्ति जब कुछ रुका तो बहुत-से लोग एक साथ पूछ बैठे, "फिर क्या हुआ!"

"हुआ क्या? वह दूत कुछ देर भौंचक्का-सा खड़ा रहा। फिर बोला, 'तो चक्रवर्ती ने कहा है कि रणभूमि में मिलने को तैयार हो जायं। अब तक पल्लव-सेना कांची से कूच कर चुकी होगी। चक्रवर्ती ने यह भी कहा है कि रणक्षेत्र और तिथि आप ही नियत करें।'

"उत्तर में महाराज ने कहा, 'भाद्रपद पूर्णिमा को वेण्णारु (चोल देश में बहने वाली नदी) के किनारे मिलेंगे।' इतना सुनते ही सभा-भवन महाराज के जय-जयकार से गूंज उठा।" यह सुनकर टोली में जमा लोगों ने भी उत्साह से ऊंचे स्वर में जय-जयकार किया। लगता था मानो सभा-भवन के जय-जयकार की ही प्रतिध्वनि गूंज रही हो। पोन्नन ने भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर जय बोली और वल्लि को लेकर आगे बढ़ा।

अंधेरा हो चला था। सफ़ेद बादलों के पीछे छिपे चांद से छनकर धुंधला प्रकाश आ रहा था। हर गली के छोर पर पत्थर के खंभे थे, जिन पर बड़े-बड़े दीये रखे थे। जलाये जाने पर वे धुआं उगलते हुए प्रकाश फैलाने लगे।

सहसा कहीं ऊंचे पर डंका बज उठा। डंके की आवाज़ थी मानो बिजली की कड़क! पोन्नन के रोंगटे खड़े हो गए। खून खौल उठा। नसें फड़क उठीं। वल्लि एकदम घबरा गई। "यह क्या? ऐसी आवाज़ तो मैंने आज तक नहीं सुनी"—वल्लि ने पूछा।

"युद्ध का डंका बज रहा है"—पोन्नन ने कहा। उसका स्वर सुनकर वल्लि घबरा उठी और बोली, "हाय रे, तुम्हें यह क्या हो गया है?"

"कुछ नहीं वल्लि, कुछ नहीं।" थोड़ी देर के मौन के बाद पोन्नन फिर बोला, "वल्लि, मैं युद्ध में जरूर जऊंगा।"

तीन

उरैयूर की लोहार गली में एक घर के सामने पोन्नन और वल्लि आकर खड़े हुए। किवाड़ बंद था। "दादा जी" वल्लि ने आवाज़ दी। थोड़ी देर में किवाड़ खुला। खोलने वाला था एक बूढ़ा। "आओ बिटिया, आओ बैठो!" कहकर

उसने उन दोनों का बड़े प्रेम से स्वागत किया। फिर घर के अन्दर की ओर मुंह करके पुकारा, "ऐ बुढ़िया, यहां तो आओ ! देखो, कोई आया है।"

तीनों घर के भीतर गए।

"कौन आया है ?" पूछती हुई बुढ़िया बाहर आई तो देखा, वल्लि और पोन्नन खड़े हैं। उसके पोपले मुंह पर हंसी फूट पड़ी। खुशी का कोई ठिकाना न था। वल्लि को उसने अपने कलेजे से लगा लिया और पूछा, "अच्छी तो हो बिटिया, वे भी अच्छे हैं न ?"

बीच में पोन्नन बोल उठा—"दादा जी, आपकी पोती को लाकर आपको सौंप चला। अब मैं ज़रा बाहर जा रहा हूं।"

"अभी-अभी तो आये हो। इतनी जल्दी कहां चल दिए ?" बूढ़े ने पूछा।

"महराज के दर्शन करने जा रहा हूं"—पोन्नन ने उत्तर दिया।

"महाराज अब महल में नहीं हैं। पहाड़ के मंदिर गये हैं। इधर आओ तो दिखाऊं"—कहकर बूढ़ा उन्हें घर के आंगन में ले गया। आंगन में उसने जिस ओर इशारा किया, उसी ओर सबने दृष्टि दौड़ाई। 'उच्चि पिल्लैयार कोयिल' (तिरिचिरापल्ली के पर्वत पर के विनायक मंदिर) का दीप दिखाई दिया। मशालें लिये कुछ लोग वहां से उतरते भी दिखाई दिये। नीचे आती हुई मशालें रास्ते में एक जगह पर थोड़ी देर के लिए रुकीं।

"वे तो उतर रहे हैं दादा जी, तब तक मैं राजद्वार पर पहुंच जाऊंगा। जैसे भी हो आज रात को मुझे महाराज से मिल लेना चाहिए।"—कहता हुआ पोन्नन घर से बाहर चल दिया।

बूढ़ा भी उसके साथ द्वार तक आया और रहस्य-भरे धीमे स्वर में बोला, "पोन्नन महाराज से एक ज़रूरी बात कहनी है। एकांत में मिल पाओ तो उनसे कहना कि मारप्प भूपति के विषय में वे ज़रा सावधान रहें।"

"मारप्प भूपति के विषय में ? बात क्या है, दादा जी ?"—पोन्नन ने पूछा।

"वह बाद को बताऊंगा। महाराज के कानों तक किसी तरह यह खबर पहुंचा देना"—बूढ़े ने बात टाल दी।

बुढ़िया मेहमानों के लिए खाना पकाने रसोई में चली गई। दादा-पोती आंगन में बैठ गए।

"अरे बाप रे, यह सब क्या है ?" सहसा वल्लि ने पूछा।

आंगन में एक ओर लोहारखाना था। वहां कटार, तलवार, भाले, बर्छे वगैरह ढेर के ढेर रखे थे। उन्हीं को देखकर वल्लि विस्मय में पड़ी थी।

"नहीं जानती ? तलवार, भाला, शूल···पर तुमने ये कहां देखे ? पुराने ज़माने में···।"

"ये सब किससे लिए हैं, दादा जी ?"

"किसके लिए ? मंदिर में सजाकर धूप-दीप दिखाने और पूजा-अर्चना करने के लिए हैं !—कैसा सवाल करती हो, बिटिया ? शत्रुओं के सिर नारियल के गुच्छों की तरह काटने के लिए ये तलवारें हैं ! दुश्मनों के पेट चीरने और आंखें निकालकर उनकी माला बनाकर पहनने के लिए ये भाले-बर्छे हैं !"

"हाय, हाय ! मुझे तो बड़ा डर लगता है।" वल्लि चीख पड़ी।

"अरे, कुछ दिन बाद इस देश के मर्द भी तुम्हारी ही तरह डरने लगेंगे और पूछने लगेंगे कि ये तलवारें और भाले हैं किस लिए ? वल्लि, मेरे दादा-परदादा के ज़माने में क्या होता था, जानती हो ? लोहारखानों में रात-दिन आठों पहर कटारें, तलवारें और भाले-बर्छे बनते रहते थे। हर शहर में लोहारों की गलियों में चौबीसों घण्टे चहल-पहल रहा करती थी। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और सेनापति आदि भी लोहारों से मिलने आया करते थे। मेरे बाप के जमाने से यह क्रम टूट गया। अब तो ऐसी नौबत आ गई है कि लोहार दरांती, हंसिए, गाड़ी के लिए कीलें और चाबुक में लगाने के लिए सुइयां बनाकर पेट पालते हैं। अपनी उम्र में पहली बार तलवारें और बर्छियां अपनी आंखों से देख रहा हूं···काश, इन हाथों में पहले का-सा बल होता !···बीस बरस पहले यह युद्ध आया होता···!"

"अरे दादा जी, मैं तो समझती थी कि तुम उन्हें समझाओगे। वे तो यही रट लगाये रहते हैं कि युद्ध में जाना है युद्ध में जाना है।"

"क्या कहा, पोन्नन ऐसा कहता है ? वह बेचारा युद्ध में कहां जायगा, वल्लि ? मुझे विश्वास नहीं होता। पोन्नन तुम्हारा विछोह एक पल के लिए भी न सह सकेगा। नाव खेने वाले हाथ कहीं तलवार पकड़ते हैं ? औरत के पीछे पागल फिरने वाला कहीं युद्ध में जाता है ?"

"ऐसी बातें न करो, दादा जी। वे तो युद्ध में जाने के लिए तड़प रहे हैं। पर महाराज मना करते हैं और युवराज को तैरना सिखाने का काम इन पर छोड़ रहे हैं।"

"हाय रे, तुम्हारे बाप और चाचा सब ज़िंदा होते तो मैंने हर एक के हाथ में तलवार और बर्छी देकर लड़ाई में भेजा होता। जाने क्यों कावेरी मैया ने उन सबकी एक साथ बलि ले ली !"—यह कहकर बूढ़े ने एक लम्बी सांस छोड़ी। फिर बोला—"मेरे कुल का नाम रखने के लिए केवल तुम शेष हो। तुम्हारे पेट से एक बेटा पैदा हो तो मैं स्वयं पोन्नन को ज़बरदस्ती लड़ाई में भेज दूं। घर में एक पल के लिए भी न ठहरने दूं।"

"युद्ध क्यों होता है, दादा जी ?"

"युद्ध क्यों होता है ? नहीं जानती ? मान-मर्यादा नाम की जो चीज़ है, उसी के लिए युद्ध होता है। बैल के झण्डे के सामने बाघ का झण्डा झुक जाय—यह कहीं

शोभा देता है ? तोन्डै मण्डल की अधीनता चोल मण्डल स्वीकार करे, यह किसे गवारा हो सकता है ? इस अपमान को धोने के लिए ही युद्ध होने वाला है।"

"बैल का झण्डा किसका है ?"—वल्लि ने पूछा।

"यह भी नहीं जानती ? बैल का झण्डा कांची के पल्लव राजा का।"

"बैल का नहीं, सिंह का झण्डा कहो।"

"नहीं, बैल का ही है।"

"मैंने आज अपनी आंखों देखा, दादा जी ! दूतों के झण्डे में सिंह का ही चित्र बना था।"

"हां, बैल के झण्डे को शेर के झण्डे में बदल लिया है। लेकिन बैल सुअर पर विजय पा ले तो भी कहीं सिंह हो सकता है ?"—बूढ़े ने पूछा।

"तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं, पहेली बुझाना छोड़ो, खोलकर बताओ तो बात समझ में आये"—वल्लि ने कहा।

"अच्छा सुनो, शुरू से बताता हूं।" बूढ़े ने कहना आरंभ किया।

"तुम जिस साल पैदा हुई थीं यह उसी साल की घटना है। तब कांची में महेन्द्र चक्रवर्ती राज करते थे। उनके धीर पराक्रम की देश में बड़ी चर्चा थी। वे एक बार हमारी इस उरैयूर नगरी में भी आए थे। उनके आगमन की यादगार में हमारे पहाड़ पर उनकी एक पत्थर की मूर्ति भी बनाकर खड़ी की गई है। उसी समय उत्तर से वातापि का राजा पुलिकेशी बहुत बड़ी सेना लेकर दक्षिण पर चढ़ आया। समुद्र की लहरों की तरह आगे बढ़ती हुई उस विशाल सेना का रणक्षेत्र में सामना करने का साहस महेन्द्र चकवर्ती को नहीं हुआ। वे कांची के किले में अपने दल-बल सहित जा छिपे। कुछ दिन पुलिकेशी किले पर घेरा डाले रहा। जब कोई लाभ नहीं हुआ तो वहां से और दक्षिण की ओर बढ़ आया। हमारी कोल्लिडम नदी के उस पार तक आ गया। उफ़, उस समय की उरैयूर की दशा की क्या कहूं ! हमारे पार्थिव महाराज को गद्दी पर बैठे तब थोड़े ही दिन हुए थे। पुलिकेशी से भिड़ने की बड़ी मुस्तैदी से तैयारी कर रहे थे। पर न जाने उत्तर में पुलिकेशी के राज्य पर कौन-सी आफ़त आ गई कि वह कोल्लिडम के इस पार न आया और उल्टे पांव लौट गया। जाते समय उस अन्यायी और उसकी राक्षसी सेना ने जो अत्याचार किये उनकी कोई गिनती नहीं। कहते हैं कि गांवों को लूटते और आग लगाते गये थे। बेचारी असहाय प्रजा ने नरक-यातना भोगी थी। तब से महेन्द्र चत्रवर्ती का यश मंद पड़ गया। उनके कीर्ति-चन्द्र को अपयश के राहु ने ग्रस लिया। चालुक्यों की सूकर ध्वजा के सामने पल्लवों का बैल-झण्डा डरकर झुक गया, लोगों में इस प्रकार की बात फैल गई। इस अपमान के बाद महेन्द्र चक्रवर्ती अधिक दिन नहीं जिये। उनके बाद नरसिंह चक्रवर्ती गद्दी पर बैठे। ये जब से राजा हुए तभी से इस प्रयत्न में लग गए कि पुलिकेशी से बदला लेकर पल्लव-

कुल के गौरव पर लगा कलंक धो डालें। आखिरकार वे तैयारी करके छः साल पहले एक विशाल सेना लेकर बड़े दल-बल सहित उत्तर की ओर चले। उन्होंने अपना संकल्प पूरा किया और पुलिकेशी को रणक्षेत्र में ही गहरी नींद सुला दिया। वातापि नगर को भी आग लगाकर भस्म कर डाला। इस महान विजय के उपलक्ष्य में नरसिंह चक्रवर्ती ने पल्लवों का अपना बैल का झण्डा शेर-झण्डे में बदल लिया। उन्हें उत्तर से लौटे हुए अभी एक महीना भी नहीं हो पाया है, वल्लि ! लेकिन इतने में···"

वल्लि अभी तक बड़े ध्यान से बूढ़े की बात सुन रही थी। अब उसने पूछा—"ऐसे चक्रवर्ती से हमारे महाराज लड़ाई क्यों मोल लेना चाहते हैं, दादा जी, उनसे दोस्ती कर लें तो क्या···"

"हट, पगली !" बूढ़ा उत्तर देने जा रहा था कि सड़क पर घोड़े की टाप सुनाई दी। उसीके घर के द्वार पर आकर घोड़ा रुका।

"वीरभद्र आचारी"···किसी ने ऊंचे अधिकार-भरे स्वर में पुकारा। बूढ़े ने वल्लि से फुसफुसाकर कहा, "यह चाण्डाल मारप्प भूपति आया है। वल्लि, उसके सामने तुम्हें नहीं पड़ना चाहिए। तुम रसोई में चली जाओ। उसके जाने पर मैं तुम्हें बुला लूंगा।"

द्वार पर घोड़े से जो सवार उतरा था वह हट्टा-कट्टा बलिष्ठ युवक था। उम्र पच्चीस साल की होगी। उसकी वेश-भूषा से मालूम होता था कि वह राजघराने का है और किसी ऊंचे पद पर है। उसका चेहरा बता रहा था कि उसके हृदय में महत्त्वाकांक्षा और मद-अभिमान के भाव कूट-कूटकर भरे हैं।

"सेनापति जी, पधारिये ! पधारिये !" कहकर बूढ़े ने उसका स्वागत किया और अन्दर लिवा लाया।

"अब से मुझे ऐसा संबोधन करके न पुकारा करो। मैं सेनापति नहीं हूं। मैं मारप्प भूपति नहीं हूं। मैं अपने बाप का बेटा भी नहीं हूं"—क्रोध-भरे शब्दों में कहता हुआ मारप्प भूपति अन्दर आया और आंगन में आकर जिस आसन पर बूढ़ा बैठा था उसी पर बैठ गया।

"युवराज गुस्से में हैं।"

"युवराज ? कौन युवराज ? मैं ? किसने कहा ? युवराज तो कल का छोकरा है। युवराज विक्रमसिंह की जय हो ! जय विजयी भव"—ताने के स्वर में कहता हुआ मारप्प भूपति ठठाकर हंस पड़ा। फिर बोला, "अच्छा जाने दो इसे। पहले यह बताओ कि तुम्हारी कौड़ी क्या बताती है ?"

वीरभद्र आचारी कुशल लोहार होने के साथ-साथ ज्योतिष-शास्त्र में भी बड़ा निपुण माना जाता था। कौड़ियों के सहारे हिसाब लगाकर भविष्य बताने में बड़ा सिद्धहस्त था।

"युवराज, आपको यह भ्रम क्यों ?" बूढ़े ने शुरू किया।

"वह सारा किस्सा बाद में बताऊंगा। पहले यह बताओ, तुमने कुछ देखा है कि नहीं ? या मुझे व्यर्थ में भरमा रहे हो ?"

"देखा है, युवराज ! आपको जो पूछना हो, पूछिये !"

"पहली बात तो लड़ाई की है। जानना चाहता हूं कि इसका क्या नतीजा होगा। यह न बता सको तो तुम्हारा ज्योतिष किस काम का ? तुम्हारी पोथी-कौड़ी उठाकर मैं ही क्यों न कावेरी में बहा दूं ?" मारप्प भूपति ने पूछा।

"बहा दीजिये, युवराज ! मैं आपका बड़ा एहसान मानूंगा। सच पूछिए तो मेरे अपने निजी विषय में यह ज्योतिष किसी काम का नहीं रहा।"

"अरे, बंद करो अपनी बक-झक। बता सको तो बताओ कि लड़ाई के बारे में तुम्हारी कौड़ी क्या बताती है ? नहीं तो अपना पोथी-पत्रा बांध लो।"

"पोथी-पत्रा तो कभी का बांध लिया था, युवराज। आप ही की ज़िद से फिर खोला है।"

"खोला तो क्या मालूम हुआ ?"

"ग्रहों का संयोग बड़ा ही बुरा फल बता रहा है। लड़ाई में एक ओर की सेना तहस-नहस हो जाएगी। रणभूमि से एक भी वीर जीता नहीं लौटेगा। पर यह नहीं मालूम होता कि किस पक्ष की ऐसी हालत होगी।"

"यह तो मुझे मालूम है कि किस पक्ष की यह हालत होगी। यह बताने के लिए मुझे तुम्हारी कौड़ियों की कोई आवश्यकता नहीं। मैं भली-भांति जानता हूं कि चोल सेना निर्मूल होने चली है। और इस सारे पुण्य के भागी होने वाले हैं तुम्हारे महाराज पार्थिव चोल।"

"युवराज, आपके मुंह से ये बातें शोभा नहीं देतीं। हमारे बीच आपस में चाहे जितना भी वैमनस्य हो, किंतु शत्रु के आगे···"

"शत्रु कौन है ? पल्लव चक्रवर्ती हमारे शत्रु हैं ? नहीं, बिलकुल नहीं। अब चोल देश का कोई बड़ा शत्रु है तो वह है पार्थिव। वह तलवार पकड़ना या भाला चलाना नहीं जानता और वही वीरातिवीर, धीरातिधीर पराक्रमी पल्लव सेना से लोहा लेने चल पड़ा है। पल्लव सेना को उसने समझ क्या रखा है ! समुद्र की रेत के कण गिने जा सकते हैं, पर पल्लव की सेना नहीं। कौन जानता है, उसमें कितने सैनिक शामिल हैं ? कहां कावेरी से गोदावरी तक फैला हुआ पल्लवों का विशाल साम्राज्य और कहां हथेली-भर का चोल देश ! नरसिंह चक्रवर्ती भी क्या कोई सामान्य व्यक्ति हैं ? सैकड़ों मीलों का रास्ता तय करके उत्तर के राक्षस पुलिकेशी को रणक्षेत्र में सुलाकर वातापि नगर अग्निदेव को अर्पित कर लौटे हैं। हम उनका मुकाबला कैसे कर सकते हैं ? हाथी के आगे मच्छर ···"

"युवराज, ये सारी बातें मुझसे क्यों कह रहे हैं ? महाराज से कहते तो कोई

फ़ायदा होता।"

"अरे बूढ़े, तू क्या समझता है कि मैंने महाराज से नहीं कहा ? कहने का फल यह हुआ कि मुझसे सेनापति का पद छीन लिया गया। अब महाराज ने स्वयं सेनापति का पद ग्रहण कर लिया है। सुना है कि वे स्वयं ही सेना का संचालन करके रणक्षेत्र में जाने वाले हैं। जायं खुशी से, मुझे क्या ? यहां कौन रोता है सेनापति के पद के लिए ?"

"तो युवराज, क्या आप लड़ाई में नहीं जायंगे ?"

"मैं ? मैं ? मुझे बुलायंगे तो जाऊंगा, न बुलायंगे तो नहीं जाऊंगा। ···अरे बूढ़े, लड़ाई के भविष्य के बारे में अभी तुमने जो कहा था, उसे एक बार फिर तो दोहराओ।"

"अच्छा, युवराज ! मैंने कहा था कि लड़ाई में एक ओर के लोग ध्वस्त हो जायंगे। एक भी वीर जीवित नहीं लौटेगा।"

"जीवित नहीं लौटेगा ? तो बे-जान लौटेगा ?—हा, हा, हा, हा !" मारप्प भूपति जोर से हंस पड़ा। फिर उठकर खड़ा हुआ और चारों तरफ़ आंखें दौड़ाईं। आंगन में एक ओर रखी तलवारें, ढालें, बर्छे आदि देखकर ठहाका मारकर हंसा और बोला, "मालूम होता है कि तुम भी बड़ी मुस्तैदी से काम कर रहे हो। तलवार, ढाल, भाले, बर्छे ये सब तुम्हींने बनाये हैं ? केला चीरने की ये छुरियां और घास-कटनियां लेकर तुम्हारे पार्थिव महाराज पल्लव सेना से लोहा लेंगे ? बहुत खूब ! यह भी अच्छा-खासा तमाशा है !" हा, हा, हा, हा हंसता हुआ मारप्प भूपति आगे बढ़ा और उसने लात मारकर तलवारों का एक ढेर गिरा दिया। फिर सीधा बाहर चला गया।

बूढ़े की आंखों से लोहारखाने से उठने वाले अंगारों की तरह चिनगारियां निकलने लगीं।

जब घर के द्वार से घोड़े के चले जाने की आवाज़ कानों में पड़ी तो वल्लि रसोईघर से आंगन में आई। मारप्प भूपति ने जिस ढेर पर लात मारी थी, उसमें से एक तलवार उसने अपने हाथ में ले ली और नागिन की तरह फुफकारती हुई बोली, "दादा, ये तलवार तुमने बनाई ही किस लिए ? जिसने हमारे महाराज का अपमान किया उसे तुमने यों ही छोड़ दिया !"

"वल्लि ! इतनी नाराज़ क्यों होती हो ? तुम जो कह रही थीं वही तो हमारे भूतपूर्व सेनापति ने भी कहा कि युद्ध नहीं होना चाहिए। उन्होंने बुरा क्या कहा ?"—बूढ़े ने पूछा।

"मैं क्या जानूं ? मैंने कब कहा था कि लड़ाई नहीं होनी चाहिए। नासमझी के कारण इतना ही तो पूछा था कि लड़ाई क्यों आवश्यक है ?" कहते-कहते वल्लि की आंखों में आंसू छलछला आये।

"हां, वल्लि, मैं तुम्हें उसका कारण बताने ही जा रहा था कि यह पापी आ गया। हां, तो क्या कह रहा था मैं? यही न कि वातापि का चक्रवर्ती पुलिकेशी दक्षिण पर चढ़ आया था और अनेक अत्याचार करके असहाय प्रजा को अनेक कष्ट देकर वापस लौट गया था। नरसिंह चक्रवर्ती यह न सह सके और कसकर बदला लेने की तैयारी में जुट गए। जब तैयारी पूरी हो गई तो उन्होंने वातापि पर धावा बोल दिया। बात छह साल पहले की है। तब हमारे पार्थिव महाराज के नाम उन्होंने एक पत्र भेजा था कि आप अपनी सेना के साथ आकर इस आक्रमण को सफल बनाने में योग दें। उसके उत्तर में हमारे महाराज ने लिखा हम साथ देने को तैयार हैं, आप उसके बदले में उरैयूर से कर लेना बन्द कर दें और चोल देश के बाघ-झण्डे को समान आदर प्रदान करें। इस पर नरसिंह चक्रवर्ती ने ध्यान ही न दिया। हमारे पार्थिव महाराज को कोई उत्तर तक दिये बिना युद्ध के लिए कूच कर दिया। उस दिन से पार्थिव महाराज ने भी कांची को कर देना बंद कर दिया। यही कारण है कि अब यह युद्ध हमारे ऊपर आया है। वल्लि, अब तुम्हीं कहो कि पार्थिव महाराज क्या आगे बढ़ा हुआ कदम पीछे हटा लें और नरसिंह चक्रवर्ती के गुलाम हो जायं? हमारे त्रिचिरापल्ली के पहाड़ पर जो बाघ-झण्डा हवा से बातें कर रहा है, उसे उतारकर क्या हम पल्लवों का बैल झण्डा फहराएं? ऐसा अपमान सहने के लिए चोल देश के लोग जीवन-धारण ही क्यों करें।"

"यह सारा न्याय-औचित्य तो मैं नहीं जानती, दादाजी! मैं तो इतना ही जानती हूं कि हमारे पार्थिव महाराज जो भी करते हैं ठीक ही करते हैं। उनके विरोध में मुंह खोलने वाले पापी हैं—महापापी हैं। वे नरक जायंगे! मुझे इसी बात का बड़ा दुःख है दादाजी कि, तुमने उस मारप्प भूपति को यों ही छोड़ दिया। हमारे महाराज कितने महान् हैं, मालूम है तुमको?"

"हां, मालूम है। हमारे महाराज बहुत महान् हैं। तभी तो इस कुलांगार मारप्प भूपति को इतनी छूट देकर सिर पर चढ़ा रखा था।"

"तुम क्या कह रहे हो, दादाजी?"

"सच्ची बात कहता हूं। यह मारप्प भूपति हमारे महाराज का सगा भाई नहीं है। महाराज के पिता पचास साल की ढलती उम्र में वासना के वश में पड़कर किसी कुलच्छनी को ब्याह लाए थे। उनका यह काम देशभर में किसी को पसंद नहीं आया था। पर करते क्या? उसी कलमुंही का बेटा है यह मारप्पन! मरते समय महाराज के पिता कह गए थे कि पार्थिव के कोई लड़का न हो तो इसे राज्य मिलना चाहिए। युवराज विक्रम के पैदा होने तक यही युवराज रहा। पार्थिव महाराज ने इसे अपना स्नेह दिया, गौरव दिया, और सेनापति का पद भी दिया। इतना सब करने पर भी यह नमकहराम पापी ही निकला!"

इसी समय द्वार पर ढिंढोरा पीटने की आवाज़ आई। साथ ही यह घोषणा

भी कानों में पड़ी, "जय शूल ! जय त्रिशूल ! युद्ध आ रहा है। युद्ध आ रहा है। चोल देश की मान-रक्षा के लिए युद्ध आ रहा है। सेना में भरती होने सभी आयं। लूला, लंगड़ा, अंधा-काना, मां का इकलौता बेटा, इन्हें छोड़कर और सभी आयं। जिनकी नसों में असली खून बहता हो, वे सभी आ जायं। जय शूल ! जय त्रिशूल ! जय रणचंडी !" घोषणा बंद होते-होते डंके पर ऐसी चोट पड़ती कि उसकी गर्जना से दुश्मनों के दिल दहल जाते।

ढिंढोरे की आवाज़ सुनकर वल्लि और उसके बाबा द्वार पर आये। डंका ढोने वाला हाथी मस्त चाल से चला जा रहा था, उसे घेरे हुए कुछ सैनिक वीर भी साथ चल रहे थे। डंका, डंका बजाने वाला और घोषणा करने वाला हाथी की पीठ पर थे। जलूस जब तक गली के मोड़ पर नहीं पहुंचा, तब तक बाबा और पोती द्वार पर खड़े उसे देखते रहे।

दक्षिणी आकाश में अचानक एक नक्षत्र टूटा। एक पल के लिए आंखों को चौंधियाता हुआ वह आकाश में तेज़ी से दौड़ गया और दूसरे ही क्षण आंखों से ओझल हो गया। देखकर वल्लि को रोमांच हो आया।

ठीक उसी समय पोन्नन ने भी वह दृश्य देखा और उसके भी रोंगटे खड़े हो गए। उस समय वह उरैयूर की राज-वीथी पर चल रहा था। पूर्णिमा आने में अभी चार दिन शेष थे। शुक्ल पक्ष का चांद आकाश में राजहंस की तरह तैर रहा था और पृथ्वी पर अपनी रजत-चंद्रिका की वर्षा कर रहा था। उरैयूर की अट्टालिकाएं उस शुभ्र ज्योत्सना में स्नान करती जगमगा रही थीं और स्वप्नलोक का-सा मनमोहक दृश्य उपस्थित कर रही थीं।

'कभी नाव गाड़ी पर, कभी गाड़ी नाव पर' की कहावत चरितार्थ करती हुई त्रिचिरापल्ली और उरैयूर नगरी आज विराजित हैं। आज की त्रिचिरापल्ली नगरी बड़ी हो गई है और उरैयूर नगरी का रूप एक छोटे-सेकस्बे-जैसा रह गया है। उस ज़माने में तो उरैयूर चोल साम्राज्य की राजधानी थी और त्रिचिरापल्ली उसकी निकटवर्ती बस्ती। दोनों की कड़ी जोड़ते हुए बीच में बाज़ार और विभिन्न पेशों वाले लोगों के मुहल्ले थे। त्रिचिरापल्ली के पर्वत-शिखर से महाराज उतर आयं, इसके पहले ही पोन्नन राजमहल के द्वार पर पहुंच जाना चाहता था।

भगवान् के दर्शन करके पर्वत-शिखर पर उतरते हुए रास्ते में थोड़ी देर रुककर महाराज ने युवराज को क्या दिखाया होगा—इसे पोन्नन ने अटकल से जान लिया था। वहीं चोल-वंश के अपमान-चिह्न थे। वहां पर इस आशय का चित्र अंकित था कि पार्थिव महाराज के पिता महेन्द्र चक्रवर्ती के सामने अपने धनुष-बाण और तलवार रखकर पैर छू रहे हैं और विविध रत्नाभूषणों की भेंट चढ़ाकर उनसे उसे स्वीकार करने की विनती कर रहे हैं। उस चित्र की याद आते

ही पोन्नन का खून खौल उठा, 'चोल देश यह अपमान कितने दिन सहता रहेगा ? युद्ध भूमि में पल्लवों की खून की नदी बहाकर क्या अपमान के इस काले धब्बे को धो नहीं डालना चाहिए ?'—पोन्नन के मन में यह विचार न जाने कितनी बार उठ चुके हैं। 'अब मौका आया है ! हम औरतों की तरह हाथ बांधे, घूंघट काढ़े घर में कैसे बैठे रहें ?'—सोचता हुआ पोन्नन जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ चला जा रहा था।

चार

पोन्नन और वल्लि जब उरैयूर के दुर्ग-द्वार पर पहुंचे थे तभी रानी अरुल्मोलि देवी राजमहल के उद्यान में प्रविष्ट हुई थीं। पल्लव-दूत को महाराज ने जो उत्तर दिया था वह सेवकों ने तुरन्त आकर महारानी को सुना दिया। महाराज के आने तक समय बिताने के लिए महारानी उद्यान में गई थीं। वे चम्पकवृक्षों के झुरमुट के बीच स्फटिक के बने एक सुन्दर चबूतरे पर जाकर बैठ गईं।

वहां से पश्चिमी दिशा में पेड़ों के बीच में से सूर्यास्त का बड़ा ही आकर्षक दृश्य दिखाई पड़ रहा था। ऊपर आसमान ऐसा चमक रहा था मानो खरे सोने से मढ़ा हुआ स्वर्ण-वितान हो। धीरे-धीरे वह सुनहली शोभा धुंधली पड़ती दीख पड़ी और थोड़ी देर बाद दूर क्षितिज में सूरज डूब गया। समस्त आकाश एकदम लाल हो उठा। इस दृश्य ने अरुल्मोलि देवी के सामने रणभूमि और उसमें बहती रक्त की नदी का चित्र उपस्थित कर दिया। डर के मारे उन्होंने आंखें बन्द कर लीं।

जब फिर उन्होंने अपनी आंखें खोलीं तो पेड़ों की शाखाओं से रजत-चांदनी की आनन्ददायिनी किरणें झांकने लगी थीं और आंखमिचौनी का उनका खेल आरम्भ हो गया था। रानी के मन में पुरानी स्मृतियां उमड़ने लगीं। बारह वर्ष पहले उन्होंने पार्थिव महाराज के गले में वरमाला पहनाई थी और इस महल में पदार्पण किया था। तब से अब तक वे इस उद्यान में कितनी ही चांदनी रातों में पार्थिव के हाथ में हाथ देकर टहली हैं। स्फटिक के इस चबूतरे पर बैठकर दोनों अपने सुख-आनन्द में इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें समय का ज्ञान ही न रहता था।

फिर जब विक्रम का जन्म हुआ तब तो मानो दोनों आनन्द के चरम शिखर पर ही पहुंच गए थे। आज इस उद्यान में इस स्फटिक के चबूतरे पर बैठकर अरुल्मोलि को एक-एक करके बहुत-सी बातें याद हो आईं—बच्चे को गोद में लेकर दुलारने की स्मृतियां और अनेक स्नेह-आनन्द की बातें। काश, वे आनन्द-भरे दिन स्थायी बने रहे होते !

लेकिन स्थायी रहते कैसे ? जब पार्थिव के मन के कोने में छिपी हुई अकथनीय वेदना उसको सता रही थी तब यह कैसे संभव था कि उनका वह सुख-भरा जीवन वैसा ही बना रहता ? पार्थिव की अन्तर्वेदना को बहुत दिनों के बाद अरुल्मोलि जान पाई थी। जानने पर उस वेदना की भी वह समभागिनी बनी और यह सोच-सोचकर मन-ही-मन बहुत दुखी हुई कि न जाने वह स्वयं कहां तक इस वेदना का कारण रही है।

हां, उसके विवाह के समय ही परेशानी के कारणों का बीज पड़ गया था। अरुल्मोलि चेर वंश के एक सामंत की पुत्री थी। वह बड़ी सौन्दर्यवती थी। इस बात की बहुत चर्चा थी कि समस्त दक्षिण में उसके मुकाबले की सुन्दरी और कोई नहीं है। इधर उसका विवाह पार्थिव से होना तय हुआ, उधर कांची के महेन्द्र वर्मा चक्रवर्ती के पास से चेर राजा के यहां दूत आये। चक्रवर्ती ने कहला भेजा था कि हम अपने उत्तराधिकारी युवराज नरसिंह वर्मा का विवाह आपकी पुत्री अरुल्मोलि से करना चाहते हैं। अरुल्मोलि के बन्धु-बान्धव तो इस प्रस्ताव से बड़े खुश हुए और उसका विवाह नरसिंह वर्मा से करने को सहमत हो गए। पर अरुल्मोलि ही एक थी जिसने अपनी सम्मति नहीं दी और इस बात पर अड़ गई कि मैंने अपने मन में पार्थिव को पति के रूप में वर लिया है। एक को वरने के बाद दूसरे का हाथ पकड़ना मैं कदापि स्वीकार न करूंगी। उदार-हृदय होने के कारण महेन्द्र चक्रवर्ती ने अपने प्रस्ताव पर और अधिक ज़ोर न दिया। युवराज नरसिंह वर्मा का विवाह पाण्ड्य राजकुमारी से कर दिया।

पार्थिव और अरुल्मोलि का शुभ विवाह सम्पन्न होने के बाद ही पार्थिव को उपर्युक्त बात का पता चला। इसलिए कभी-कभी कहा करते, "तुम्हें तो साम्राज्ञी होकर कांची के सिंहासन पर आसीन होना चाहिए था, उल्टे तुम इस छोटे-से, मुट्ठी-भर के चोल राज्य की रानी बनी हो।" पहले तो रानी अरुल्मोलि इसे हंसी-मज़ाक की बात ही समझती थी। लेकिन होते-होते उसने जान लिया कि पति के मन को यह बात ठेस पहुंचाती रही है। उनके मन से इस व्यथा को निकालने के कितने ही प्रयत्न करके वह हार गई। विक्रम के जन्म के बाद उसने देखा कि महाराज की अंतर्वेदना और भी बढ़ चली है। कभी वे कहते, "तुम्हारी कोख से जन्मे लड़के को तो एक बड़े साम्राज्य का चक्रवर्ती राजा होना चाहिए था। लेकिन मेरे कारण उसे एक तुच्छ राजा का ही पद प्राप्त हो रहा है।" और कभी कहते, "अरुल्मोलि, मैं तुम्हारे बेटे को किसी बड़े साम्राज्य का अधिपति बनाकर राज्याभिषेक तो नहीं करा सकता, पर इतना अवश्य कर सकता हूं कि वह वीर पिता का वीर पुत्र कहलाये।"

उनके उस कथन के पूरे होने का समय अब निकट आ गया था। पुराने काल की वीर पत्नियों की तरह पति के साथ प्राण होम करने का अवसर मिले तो वह

निश्चिन्त हो। पर वे तो उसे सौभाग्य प्रदान करने से इन्कार कर रहे हैं और कहते हैं कि उसे वीर माता रहकर विक्रम को वीर-पुत्र बनाना चाहिए। पर हाय, उनसे बिछुड़कर ये प्राण रहेंगे कैसे ?

इसका विचार आते ही अरुल्मोलि का दिल मानो टूक-टूक हो गया। उसे रुलाई आ गई और वह फूटकर रो पड़ी।

"अरुल्मोलि ! मैंने तो समझा था कि तुम वीर-पत्नी हो, तुम इतनी डरपोक कैसे निकलीं ?"—यह कटु वाक्य सुनकर अरुल्मोलि ने मुड़कर देखा तो पार्थिव महाराज खड़े थे। तुरन्त उसका रोना बंद हो गया और आंसू थम गए।

"आओ, महल में चलें। रोने और समझाने के लिए अब अवकाश नहीं है।" महाराज ने कहा।

हाथ में हाथ लेकर दोनों चुपचाप महल की ओर बढ़ गए।

पार्थिव और अरुल्मोलि राजमहल से होकर पूजा-गृह में प्रविष्ट हुए ही थे कि पूजा की घंटी बज उठी। पूजा-गृह में शिवलिंग का प्रतिष्ठापन हुआ था। बाईं ओर पार्वती देवी की सुन्दर प्रतिमा विराज रही थी। देवी के दोनों ओर विनायक और स्कंद विराजमान थे। एक दूसरी जगह पर श्रीदेवी-भूदेवी समेत भगवान् विष्णु दर्शन दे रहे थे। समस्त मूर्तियां चम्पक, चमेली, पारिजात आदि पुष्पों से अलंकृत थीं।

देव-गृह में युवराज विक्रम हाथ जोड़े खड़ा आराधना देख रहा था। पुरोहित दीपाराधना करके तीनों को प्रसाद बांटकर बाहर चले गए। विक्रम ने महाराज के निकट आकर पूछा, "हम चित्र-मण्डप देखने कब जायंगे, पिताजी ?"

"अभी आया विक्रम, तुम चलो !" कहकर महाराज ने उसे विदा किया।

विक्रम के चले जाने के बाद महाराज ने महाविष्णु के चरणों-तले रखे एक लम्बे-से लकड़ी के संदूक की ओर महारानी का ध्यान आकृष्ट किया और बोले, "देवी तुमने न जाने कितनी बार मुझसे पूछा है कि इस संदूक में क्या रखा है। मैं आज तक टालता रहा हूं कि समय आने पर बताऊंगा। अब बताने का समय आ गया है। चोल-वंश की प्राचीन निधि इसमें सुरक्षित है। अभी खोलकर दिखाता हूं।"

यह कहते हुए महाराज ने लकड़ी का संदूक खोला। उसके अन्दर चमचम चमकती एक तलवार और एक पुरानी पोथी दिखाई पड़ी। तलवार की मूठ सोने की बनी थी और उसमें रत्न जड़े थे। तलवार भी अत्यन्त तेज़ धार वाली थी। अतः मूठ और तलवार एक-दूसरे की होड़ लगाती चमक रही थीं। इनके विपरीत पोथी बड़ी पुरानी और धुंधली पड़ गई थी।

पार्थिव महाराज ने कहा, "देवी, यह तलवार चोल-वंश की अति पुरातन कीर्ति की निशानी है। उस काल में इसी तलवार के बल से राजा करिकाल वलवन

और नेडुमुडिकिल्लि-जैसे महान् राजाओं ने राज्य किया था। यह पोथी हमारे तमिष् प्रदेश के देव-कवि तिरुवल्लुवर की रचना 'तिरुक्कुरल' है। यह तलवार और पोथी दोनों चोल-वंश की प्राचीनतम धरोहर हैं। इन्हें तुम सावधानी से रखना और विक्रम के वयस्क होने पर उसे सौंप देना। अरुल्मोलि ! यह पुरातन तलवार मेरे पिताजी ने धारण की थी, पर मैंने धारण नहीं की। कारण यही कि करद राजा के रूप में मैं उन महान् करिकालवलवन और नेडुमुडिकिल्लि को इस अजेय पानीदार तलवार को धारण करना नहीं चाहता था। विक्रम को तुम यह भी बताना। जब वह स्वाधीन राजा बने, चाहे चप्पा-भर भूमि का ही क्यों न हो, तभी इसे धारण करे और तमिष् वेद 'तिरुक्कुरल' में लिखे मुताबिक राज करे। मैं यह उत्तरदायित्व तुम पर छोड़ रहा हूं। अरुल्मोलि ! देवता के सम्मुख मुझे वचन दो कि मैं अपने पुत्र को वीर विक्रम बनाऊंगी।"

सुनकर अरुल्मोलि देवी की आंखें भर आईं और भर्राए हुए स्वर में बोलीं, "आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर है महाराज !"

"भगवान् तुम्हें उसके योग्य मनोबल प्रदान करें।"—कहकर पार्थिव महाराज ने अरुल्मोलि को हृदय से लगा लिया और उसकी आंखों में उमड़ते आंसू पोंछ डाले।

पांच

उरैयूर की दक्षिणी राज-वीथी का चित्र-मण्डप उस ज़माने में सारे दक्षिण में प्रसिद्ध था। लोगों में इस बात की आम चर्चा थी कि कांचीपुरम् के महेन्द्र चक्रवर्ती द्वारा निर्मित सुप्रसिद्ध चित्र-मण्डप भी उरैयूर के चित्र-मण्डप के सामने फीका है।

महाराज पार्थिव और युवराज विक्रम सफ़ेद घोड़ों पर आरूढ़ होकर जब उस चित्र-मण्डप के द्वार पर पहुंचे, तभी नाविक पोन्नन भी वहां आ पहुंचा। न जाने महाराज के दर्शन होंगे कि नहीं, इसी उधेड़बुन में पड़ा पोन्नन वहां आया था। अप्रत्याशित रूप से महाराज को सामने देख उसकी समझ में न आया कि क्या कहे, क्या न कहे। "महाराज" कहते-कहते उसकी ज़बान लड़खड़ा गई। उसकी उखड़ी आवाज़ सुनकर महाराज और युवराज दोनों ने एक साथ मुड़कर देखा और महाराज ने पूछा, "पोन्नन, तुम यहां कहां ?"

पोन्नन चुप था। देखकर महाराज ने अनुमान कर लिया कि उसके आने का कारण क्या हो सकता है। वे घोड़े पर से उतरे। युवराज विक्रम भी बड़ी कुशलता से घोड़े पर से कूदकर नीचे आ गया। "पोन्नन, यह मशाल तुम ले लो।" महाराज ने आदेश दिया। निकट खड़े व्यक्ति के हाथ से पोन्नन ने मशाल ले ली। पोन्नन की समझ में न आया कि इस समय महाराज चित्र-मण्डप क्यों पधारे हैं और मुझसे

मशाल लेकर अपने साथ चलने को क्यों कह रहे हैं। फिर भी उसे इस बात से बड़ी सांत्वना हुई कि महाराज ने उससे लौट जाने को नहीं कहा, बल्कि अपने साथ चलने को कहा है। महाराज और युवराज आगे-आगे चले और पोन्नन हाथ में मशाल लिये पीछे-पीछे चलने लगा। तीनों चित्र-मण्डप में प्रविष्ट हुए।

चित्र-मण्डप के दो-तीन दालान पार करके महाराज एक बंद द्वार के सामने जा खड़े हुए। पहले एक बार पोन्नन ने इसी द्वार के सामने खड़े होकर सोचा था कि इस कमरे के अंदर जाने क्या होगा? तब द्वारपालों ने उससे कहा था कि महाराज ने इस द्वार को खोलने की सख्त मनाही की है। अब स्वयं महाराज अपने हाथ से उसी द्वार का ताला खोलने लगे तो पोन्नन के कौतूहल का कोई ठिकाना न रहा।

द्वार खोलने पर महाराज ने कहा, "पोन्नन, पहले तुम भीतर चलो। मशाल खूब ऊपर उठाकर दिखाना। पर दीवार के बहुत निकट न ले जाना। नहीं तो मशाल के धुएं से चित्र खराब हो जायेंगे।"

पोन्नन अंदर गया और मशाल ऊंची किये थामे रहा।

पोन्नन के पीछे विक्रम का हाथ पकड़े महाराज भी उस मंडप में प्रविष्ट हुए और विक्रम को संबोधित करके बोले, "बेटा, तुमने अनेक बार पूछा है कि इस बंद कमरे में क्या है? मैं चाहता था कि तुम्हारे कुछ और बड़े होने पर तुम्हें ये चित्र दिखाऊंगा। पर आज अभी दिखा देने की आवश्यकता पड़ गई है। विक्रम, इस मंडप को मैंने जान-बूझकर अंधकारमय कर रखा था। मुझे छोड़कर और कोई इसमें आज तक नहीं आया है और न इन भित्ति-चित्रों को किसी ने देखा है।··· पोन्नन, ज़रा अपनी मशाल तो ऊपर उठाओ।"

राजा की बातों में तन्मय पोन्नन ने हड़बड़ाकर मशाल ऊपर उठाई।

"बेटा, इस पहले चित्र को देखो और बताओ तो क्या दिखाई देता है?" महाराज ने कहा।

"युद्ध के लिए सेना कूच कर रही है। अरे, कितनी बड़ी सेना है! कितने हाथी, कितने रथ, कितने घोड़े, कितने प्यादे!" विक्रम आश्चर्यचकित हो रहा था। फिर झट से मुड़कर उसने पिता की ओर देखा और कहा, "पिताजी···।" आगे उसके मुंह से शब्द न निकले।

"क्या है विक्रम? संकोच मत करो, कहो!" महाराज ने साहस बंधाते हुए कहा।

"कुछ नहीं, पिताजी! सोचा कि वे चित्र किसने बनाए होंगे?"—विक्रम ने बात पूरी की।

"तुम्हारा अनुमान ठीक है बेटा, चित्र मैंने स्वयं अपने हाथों बनाये हैं। पिछले बारह वर्षों से दिन-रात, सोते-जागते, मैं जो सपने देखा करता था, उन्हींको मैंने

यहां चित्रित किया है; मूर्त्त रूप दिया है। बेटा, अच्छी तरह ध्यान लगाकर देखो और बताओ तो, ये सेनाएं किसकी हैं?"

"यह कौन-सी बड़ी बात है? आगे-आगे लहराती व्याघ्र-पताका स्वयं बता रही है कि ये चोल देश की सेनाएं हैं। लेकिन पिताजी···" विक्रम फिर ज़रा हिचका।

"जो पूछना चाहो पूछो। हिचको मत, बेटा।"

"राजसी ठाठ से चलने वाले उस हाथी के हौदे पर महावत को छोड़कर और कोई नहीं बैठा है। यह क्यों, पिताजी?"

"अच्छा प्रश्न किया तुमने, बेटा। मैंने जान-बूझकर हाथी का हौदा खाली छोड़ा है। हमारे इस चोल-वंश में जो पुरुष-पुंगव ऐसी विशाल विजय-वाहिनी के साथ दिग्विजय के लिए निकलेगा, उसीका चित्र इस हौदे पर बनाना है। बेटा, अब तो यह चोल राज अंजुलि-भर भूमि का पराधीन राज्य है। उत्तर में पल्लव, दक्षिण में पाण्ड्य, पश्चिम में चेर, इस चोल देश पर चील की तरह आंखें गड़ाये बैठे हैं। लेकिन हमारा यह देश हमेशा से ऐसा नहीं रहा है। एक ज़माना ऐसा भी था जब हमारे वंश की कीर्ति चारों दिशाओं में व्याप्त थी। विक्रम, तुम्हारे ही पुरखे हैं करिकालवलवन् इडुमुडिकिल्लि-जैसे विख्यात महावीर! चोल का नाम सुनने मात्र से शत्रु-दल दहल जाय, ऐसी वीरता के कार्य इन्होंने किये हैं। उस ज़माने में दक्षिण में पल्लवों का नाम-निशान भी न था। चोल-साम्राज्य सुदूर उत्तर तक फैला था। तब पाण्ड्य और चेर, चोल-साम्राज्य को कर देते थे। समुद्र पार करके दूर देशों के राजे-महाराजे भी चोल-साम्राज्य का सिक्का मानते थे और दूत भेजकर भेंट चढ़ाया करते थे। अब कडलमल्लै (मामल्लपुरम्) का बन्दरगाह जितना प्रसिद्ध है उतना ही उस ज़माने में कावेरी पूंपट्टिनम् का बन्दरगाह प्रसिद्ध था। कावेरी पूंपट्टिनम् से बड़े-बड़े जलयान दूर देशों को जाते थे और सोना, मानिक तथा अन्य रत्नों से चोल राजाओं के कोष भरा करते थे। बेटा, यह अभागी चोल भूमि फिर वही उन्नत दशा प्राप्त करे— मेरे मन में यही लालसा है। मेरी आंखों में यही अतृप्त स्वप्न दिन-रात मंडराता रहता है। वह देखो, वह चित्र देखो···।"

महाराज इस प्रकार आवेश में बातें करते जाते थे और एक-एक कर चित्रों को दिखाते भी जाते थे। दूसरे चित्र में चोल सेना द्वारा एक बड़ी नदी पार करने का दृश्य दिखाया गया था। आगे वह एक बड़े ऊंचे पहाड़ से होकर गुज़रती हुई दिखाई दी। उसके बाद घोर युद्ध का एक दृश्य था। युद्ध में चोल सेना विजयिनी हुई। शत्रुदल के राजे-महाराजे चोल राज्य की अधीनता स्वीकार करके भेंट चढ़ाने पंक्ति बांधकर आते हुए चित्रित थे।

इस तरह अनेक नदियों, पर्वतमालाओं आदि को पार करके अनेक राजाओं पर

विजय प्राप्त करके, आखिर चोल सेना हिमालय पर्वत पर पहुंचती है। पर्वतराज के हिम-शिखर पर चोलों की व्याघ्र-पताका फहराई जाती है। इसके बाद चोल देश की राजधानी को विजय-वाहिनी का लौटना, नागरिकों का बड़े उत्साह से उनका स्वागत करना आदि हर्ष और जयनादपूर्ण दृश्य दिखाये गए थे।

दूसरी ओर व्याघ्र-ध्वजा फहराते हुए बड़े-बड़े जलयानों का बंदरगाह से रवाना होने का दृश्य अद्‌भुत ढंग से चित्रित था। वे जहाज़ दूर-दूर के देशों में जाते हैं, उन देशों के राजे-महाराजे अपने-अपने परिवारों के साथ आकर चोल दूतों का स्वागत-सत्कार करते हैं, समुद्र में घिरे उन देशों में व्याघ्र-पताका गौरव से लहराती है। और जिन-जिन देशों में व्याघ्र पताका फहराती है, उन-उन देशों में बड़े-बड़े मन्दिर और गोपुरम् आसमान से बातें करते शोभायमान होते हैं। ऐसे ही अद्‌भुत दृश्यों से वह मंडप भरा पड़ा था।

सब चित्रों को देख चुकने के बाद विक्रम ने हिचकते हुए कहा, "पिताजी !" महाराज ने बड़े प्रेम से उसकी ओर देखा और बोले, "जो पूछना चाहो, बेटा ! जो कहना चाहो, निःसंकोच कहो ! आगे पूछने-कहने का अवसर शायद ही मिले।"

"कुछ नहीं, पिताजी ! मैं यह कह रहा था कि ये चित्र कितने सुंदर हैं ! क्यों पिताजी, ऐसे अनोखे चित्र बनाना आपने कब सीखा ? हमारे चित्र-मंडप में भी तो ऐसे सुंदर चित्र नहीं हैं।"—विक्रम ने कहा।

महाराज ने अपने पुत्र को कलेजे से लगा लिया और बोले, "मेरे लाल ! मेरे लिए यही बहुत है कि तुमने मेरी चित्रकला की प्रशंसा की। दूसरों के मुख से इसकी प्रशंसा सुनने की मेरी कभी इच्छा नहीं रही। अब तुम्हारे मुंह से ये बातें सुनकर मेरे मन का सारा संशय दूर हो गया।"

"लेकिन पिताजी, मेरी समझ में नहीं आता कि आप अपनी इस अनुपम कला को इस तरह क्यों छिपाये हुए हैं ? ऐसे अपूर्व चित्रों और उत्तम कलाकृतियों पर आपको संकोच करने की आवश्यकता ही क्यों हुई ? आहा ! ये चित्र कितने सजीव हैं ! चेहरों पर भाव कैसे प्रकट हो रहा है ! इतने सुंदर दृश्य और कौन बना सकता है ? इस अंधेरे कमरे में इन्हें बन्द रखने की क्या ज़रूरत है ? सब लोग देखें और देखकर आनंदित हों तो क्या हो जायगा ?" विक्रम जोशीले शब्दों में कहता जा रहा था।

तब पार्थिव महाराज ने कहा, "बेटा, ये चित्र कला-निपुणता अथवा हस्त-कौशल दिखाने के लिए नहीं बनाये गए हैं। मेरी मनोकामनाओं को, मेरे हृदय के अन्तर में सांस लेती अभिलाषाओं को मूर्त्त रूप देने के प्रयत्न-मात्र हैं ये चित्र ! इन चित्रों को अब कोई देखेगा तो इन पर हंसेगा और कहेगा कि पागल है यह, व्यर्थ की आशा बांधे है और हवाई किले बना रहा है। इसीलिए, मैंने इस मण्डप

को अंधकार में रख छोड़ा है। यहां चित्रित दृश्य जब सच्चे साबित होंगे, तभी इस मण्डप में प्रकाश और प्रजा का प्रवेश हो सकेगा। तब तक यह मण्डप लोगों के लिए नहीं खोला जा सकता। विक्रम, आशा नहीं कि जीते-जी मुझे ऐसा सौभाग्य मिल सकेगा। मेरी तो यही अभिलाषा है कि कम-से-कम तुम्हारे शासन-काल में मेरा यह स्वप्न साकार हो। अब तुम समझ गए होगे कि मैं तुम्हें अपने साथ रण-क्षेत्र में ले जाने से क्यों इन्कार कर रहा हूं ?"

"अब समझा, पिताजी !"

"बेटा, तुम्हें चाहिए कि मेरे स्वप्न को साकार करने के लिए तुम जियो, चोल देश की उन्नति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाओ। हर समय चोल-कुल की मान-मर्यादा का ख़याल रखो और हरदम यह बात स्मरण रखो कि चोलों की व्याघ्र-पताका किसी देश के झण्डे के आगे सिर न झुकाए, बल्कि गर्वोन्नत होकर फहराती रहे। परसों मैं युद्ध के लिए रवाना हो रहा हूं। मुझे आशा नहीं कि मैं रणक्षेत्र से जीवित लौटूंगा। विक्रम, पुराणों में कहा गया है कि रणक्षेत्र में वीर-गति प्राप्त करने वाले वीर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। लेकिन मैं स्वर्ग नहीं जाऊंगा। लौटकर इसी चोल देश में जन्म लूंगा। यही चोल देश मेरे लिए स्वर्ग है, जहां पवित्र कावेरी नदी बहती है। मेरे मरने के बाद मेरी आत्मा इसी चोल देश के बाग-बगीचों, ताल-तलैयों और नदी-नालों, खेत-क्यारियों और मन्दिर-मठों में विचरती रहेगी। मेरी आकांक्षा है कि लोगों के मुंह से सुनूं कि पार्थिव के पुत्र ने चोल-कुल के गौरव में चार चांद लगा दिए। इससे बढ़कर मेरे लिए और कोई बात आनन्द देने वाली नहीं होगी। मेरी अन्त्येष्टि के रूप में तुम यह कर सको तो वही बहुत होगा। बोलो, इतना करोगे, विक्रम ?"

युवराज विक्रम भर्राये हुए कंठ से बोला, "करूंगा पिताजी, करूंगा।" उसकी आंखों से भी आंसू मोती बनकर लुढ़क पड़े।

सारी बातें देख-सुनकर नाविक पोन्नन गद्‌गद् हो गया और उसकी आंखों से भी आंसू की अविरल धारा बहने लगी।

महाराज पोन्नन को संबोधित करके बोले, "पोन्नन, तुम भी सारी बातें सुन रहे थे न ! युवराज के सच्चे स्नेहियों और हितचिंतकों को चाहिए कि उनका साथ दें और उनके अंगरक्षक बनकर रहें। इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे साथ युद्ध में चलने का विचार छोड़कर इनके साथ ठहरो। तुम युवराज के साथ रहो तो मेरे लिए वह अपार हर्ष और परम संतोष का विषय होगा। कहो, मेरा कहना मानोगे !"

भावोद्‌वेग में पोन्नन का कंठ रुंध गया और वह खखारते हुए बोला, "मंजूर है, महाराज !"

उरैयूर में उस दिन बड़े तड़के से खूब चहल-पहल थी। लोग एक-दूसरे से कह

रहे थे कि उरैयूर के राजमार्ग न तो पार्थिव महाराज के राज्याभिषेक के अवसर पर ऐसे सुन्दर सजे थे और न महेंद्र वर्मा चक्रवर्ती के स्वागत-सत्कार में सजे थे। नारियल और आम के पत्तों से बने तोरण और वन्दनवार घर-घर की शोभा बढ़ा रहे थे।

सूर्योदय के पहले से ही राजमहल के द्वार पर वीर सैनिक दल-के-दल आकर इकट्ठे होने लगे। सेनानायकों ने उन्हें पंक्ति बनाकर खड़े होने का आदेश दिया। रथ, हाथी, घोड़े, पद-सैनिक आदि उत्तम ढंग से व्यूह बनाकर खड़े किये गए। सेनाओं के आगे चोलों की व्याघ्र-पताका आसमान से बातें करती फहरा रही थी। शंख, तुरही, ढोल, भेरी आदि बाजे बजाने वाले सेनाओं के बीच-बीच में खड़े किये गए थे। बड़ी-बड़ी भेरियां ढोने वाले बैल भी स्थान-स्थान पर खड़े थे। शाही हाथी खूब सजाकर राजमहल के द्वार पर लाकर खड़ा किया गया था।

इधर व्यूह-रचना हो रही थी और उधर वीर सैनिक 'जय शूल, जय त्रिशूल' के नारे बुलंद कर रहे थे। कुछ देर बाद राजमहल के मुख्य द्वार पर कुछ कोलाहल-सा मचा। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे कि महाराज आ रहे हैं। देखते-ही-देखते दो भाट ऊंची आवाज़ में पुकारते हुए बाहर आए, "चोल मण्डलाधिपति पार्थिव महाराज पधार रहे हैं, सावधान!" राजमार्ग पर खड़े ब्राह्मण और बूढ़े मुक्त कंठ से कह उठे, "जय, विजयी भव।"

महाराज पीतांबर धारण किये अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित बाहर आये। उनके पीछे-पीछे रानी और युवराज थे। महल के द्वार पर महारानी ने अपने हाथों से महाराज के गले में जयमाला पहनाई। फिर पास खड़ी दासी के हाथ से हरिद्राजल और दीपक से युक्त थाली अपने हाथ में ली और महाराज की आरती उतारी। उसके उपरांत हल्दी से महाराज के माथे पर तिलक लगाया। 'जय, विजयी भव,' 'जय शूल', 'जय त्रिशूल' के बुलन्द नारों से आसमान गूंज उठा। शंख, तुरही, भेरी, ढोल आदि की ध्वनियां चारों दिशाओं में गूंज उठीं।

महाराज ने राजमार्ग पर खड़ी भीड़ को एक बार अपनी आंखों में उतारना चाहा। उसी समय एक सेवक बड़ी तेज़ी से दौड़ा हुआ आया, महाराज के पैरों पड़ा और हाथ बांधकर एक ओर विनयावनत होकर खड़ा हो गया।

"क्या बात है?" महाराज ने पूछा।

उसने उत्तर दिया, "मारप्प भूपति आज सवेरे घर से चलते समय घोड़े पर से गिर पड़े और मूर्छित हो गए। हमने उन्हें महल में ले जाकर लिटा दिया है। अभी तक उनकी बेहोशी दूर नहीं हुई है।"

यह सुनकर महाराज के होंठों पर हल्की-सी मुस्कराहट खेल गई। उन्होंने सेवक से कहा, "अच्छा, जाओ और बेहोशी दूर होने पर भूपति से कहना कि वह अपने स्वास्थ्य की देख-भाल ठीक से करें।"

यह वार्तालाप महाराज के निकट खड़े कुछ ही लोगों के कानों में पड़ा था। फिर भी एकत्रित लोगों में दावानल से भी अधिक तेज़ी से यह खबर फैल गई कि मारप्प भूपति को कोई बड़ा कष्ट हो गया है, इसलिए वे लड़ाई में सम्मिलित नहीं होंगे।

महाराज ने पास खड़े विक्रम को बांहों में भर लिया। छाती से लगाकर पुचकारा और पूछा, "बेटा, मैंने जो कुछ बताया सब याद है न? भूल तो नहीं जाओगे?"

"सब याद है, पिताजी! कभी नहीं भूलूंगा।" विक्रम ने कहा।

इसके बाद महाराज ने बेटे का हाथ अरुल्मोलि के हाथों में थमाकर कहा, "देवी! तुम्हें धैर्य से काम लेना चाहिए। चोल-कुल की संपत्ति और कीर्ति तुम्हारे हाथों सौंप रहा हूं। वीर पत्नी बनकर तुम्हें चाहिए कि मेरे सारे मनोरथ पूरे करो। प्रसन्न-वदन होकर अब मुझे विदा दो।"

अरुल्मोलि आंखों में आंसू भरकर रुंधे हुए गले से बोली, "भगवान् की कृपा से आपके मनोरथ पूरे होंगे। जाइये, विजयी होकर वापस लौटिए।"

महाराज जंगी हाथी पर सवार हुए। फिर ढोल, तुरही, दुंदभी, भेरी, शंख आदि एक साथ बज उठे। चोल देश की वीर सेना ने उत्साह से समरयात्रा शुरू कर दी।

छः

भादों की पूनम की रात में वेण्णारु नदी का सौम्य तट दिल दहलाने वाला भयंकर दृश्य उपस्थित कर रहा था। नदी के पश्चिमी तट पर जहां तक दृष्टि जाती, घमासान युद्ध का भयावह दृश्य ही दिखाई देता था। वीरगति को प्राप्त हजारों सैनिकों की लाशों से रणभूमि पटी हुई थी। कहीं-कहीं तो लाशों के ढेर-के-ढेर पड़े थे। उनमें न जाने कितनों के हाथ-पैर और कितनों के धड़ कटे पड़े थे। सिपाहियों की तरह युद्ध में जान देने वाले घोड़ों की लाशें भी जहां-तहां दिखाई देती थीं। बहुत दूर पर छोटे टीलों की तरह लगने वाली काली आकृतियां भी दिखाई पड़ रही थीं। वे शायद जंगी हाथियों के शरीर थे, जो सांस तोड़ रहे थे।

रणक्षेत्र में अपनी भूख अच्छी तरह तृप्त करने की लालच से सैकड़ों चील और बाज़ चारों तरफ मंडरा रहे थे। उनके खुले पंखों की परछाईं रणक्षेत्र की भयंकरता को और भी भीषण बना रही थी।

नदी की मधुर कलकल को चील और बाज़ों की कटु चीत्कार बार-बार भंग कर देती थी। उस घोर रणक्षेत्र में, काल-रात्रि के अंधकार में बादलों के झीने परदे और उड़ते हुए पक्षियों की परछाईं के कारण चांदनी फीकी पड़ गई थी।

चांदनी के धुंधले प्रकाश में कोई मानव-आकृति दबे पांव धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी और चारों ओर दृष्टि गड़ा-गड़ाकर देखती जाती थी। ज़रा निकट से देखने पर लगता था कि वह कोई शिवयोगी है। सिर पर जटाजूट, माथे पर भभूत, पकती लम्बी दाढ़ी, कंठ में रुद्राक्ष माला, कमर पर गेरुआ वस्त्र और ऊपर व्याघ्रचर्म—इस वेश में शिवयोगी दृष्टिगोचर हो रहे थे। उनके हाथों में कमण्डलु था, उनके मुख पर अपूर्व तेज था, विशाल नेत्रों में ज्ञान का प्रकाश था और आकृति बड़ी गम्भीर थी। उनकी चाल में भी एक विलक्षणता थी। उनकी सूरत देखने वाले के दिल में यह शंका पैदा कर देती थी कि ये महात्मा कोई शिवयोगी हैं या स्वयं भगवान् शिवजी यह रूप धारण करके यहां विरचने आये हैं।

इस भयंकर रणक्षेत्र में इस शिवयोगी को ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा? ये किसकी खोज में चारों ओर दृष्टि दौड़ाते बढ़ रहे हैं?

शिवयोगी जिस दिशा को लक्ष्य करके आगे बढ़ रहे थे, उसकी उल्टी दिशा से कुछ दूर पर हिलते-डुलते काले टीले के समान एक बृहदाकार प्राणी आता हुआ दिखाई दिया। वह चोल राजाओं का प्रधान जंगी हाथी था। उसे देखकर शिवयोगी थोड़ी देर के लिए निश्चल खड़े हो गए। हाथी के शरीर पर कई जगहों में गहरे घाव लगे थे और उनसे खून बह रहा था। उसमें कदम उठाने की भी शक्ति न थी। फिर भी वह लड़खड़ाता हुआ बढ़ा आ रहा था—दूर से देखने पर भी उसकी दशा का हाल स्पष्ट मालूम हो जाता था। नीचे पड़ी सिपाहियों की लाशों पर पैर न पड़ जाय, इस विचार से वह बड़ी सावधानी से कदम रख रहा था। पर साथ ही इधर-उधर सूंड बढ़ाकर नीचे पड़ी लाशों को टटोलता भी जाता था। ऐसा मालूम होता था कि वह किसी की खोज में चल रहा है। कुछ देर में वह हाथी वहां आ खड़ा हुआ जहां निर्जीव शरीरों के ढेर पड़े थे। और उसको एक-एक करके उठा-उठाकर अलग रखने लगा। यह देखकर शिवयोगी उसके कुछ और निकट आये। पास ही बबूल का एक पेड़ था, जिसकी आड़ में वह जा खड़े हुए और हाथी की क्रिया को गौर से देखने लगे। हाथी ने उन बेजान शरीरों को एक-एक करके उठाकर दूर रख दिया। सबसे नीचे जो शरीर था, उसे ग़ौर से देखा और अपनी सूंड से तीन बार उसे सहलाया। फिर वह वहां से हटकर कुछ दूर गया और एक निर्जन स्थान में जा खड़ा हुआ और अपनी सूंड ऊपर उठाई। उसके कंठ से अकथनीय शोक और करुणा से भरा लम्बा प्रलाप निकला जो रणभूमि को पार करता हुआ, नदी को पार करता हुआ, लम्बे उगे धान के खेतों को पार करता हुआ चारों ओर असीम आकाश तक गूंज उठा और फिर हवा में विलीन हो गया। प्रलाप करने के बाद हाथी का शरीर लुढ़क पड़ा, मानो कोई बृहदाकार चट्टान हो। दो बार उसकी काया ऐसे हिली जैसे भूचाल में पर्वत हिल रहा हो। फिर सब समाप्त हो गया और असीम शान्ति का साम्राज्य

छा गया।

शिवयोगी बबूल के पेड़ की आड़ से बाहर आये। हाथी ने जिस देह को बड़े प्रयत्न से ढूंढ निकाला था, उसके निकट जाकर उन्होंने उसे ग़ौर से देखा और उन्हें निश्चय हो गया कि वह पार्थिव महाराज ही हैं। शिवयोगी तुरत वहीं बैठ गए और उस देह के माथे और छाती पर हाथ रखकर देखा। फिर उसका सिर उठाकर उन्होंने अपनी गोद में रख लिया और कमण्डलु से थोड़ा-सा जल लेकर क्षत-विक्षत चेहरे पर छिड़का। निर्जीव दीखने वाले उस चेहरे पर थोड़ी देर बाद जीवन के लक्षण दिखाई देने लगे, निष्प्राण शरीर में प्राणों का संचार हुआ। धीरे-धीरे आंखें खुलीं। अधखुली-सी आंखों से पार्थिव ने शिवयोगी को देखा और क्षीण स्वर में पूछा, 'स्वामी, कौन हैं आप?"

"चिदम्बर में नर्तन करते हुए सारे संसार को नचाने वाले सच्चिदानंद भगवान् के दासों का दास हूं मैं! आज के युद्ध में सुना कि तुमने आश्चर्यजनक शौर्य दिखाया। तुम जैसे महावीर को देखने की लालसा हुई तो चला आया। पार्थिव, तुम्हारी निष्कलंक वीरता की कीर्ति काया इस संसार से कभी नहीं मिटेगी।" शिवयोगी ने कहा।

"युद्ध का क्या परिणाम हुआ, स्वामी?" पार्थिव ने धीमे स्वर में पूछा। उनकी कांतिहीन आंखों में असीम उत्सुकता छलक उठी।

"युद्ध का परिणाम? उस पर भी तुम्हें कुछ सन्देह है, पार्थिव? वह सुनो, पल्लव सेना का जय-जयकार।"

पार्थिव का मुंह सिकुड़ा। बोले, "मैं यह नहीं पूछता, महाराज! चोल सेना में कोई···।" आगे की बात कहने में संकोच अनुभव करने लगे।

"नहीं, नहीं। चोल सेना में कोई भी वीर जान लेकर वापस नहीं लौटा और न किसी ने शत्रु के शरण में जाकर दुहाई की। सभी वीर जान लगाकर लड़े और वीरगति को प्राप्त हुए।" शिवयोगा के मुंह से यह सुनकर पार्थिव महाराज की आंखें संतोष से खिल उठीं।

"अहा, चोल देश का भाग्य जग गया, महाराज! आपने यह शुभ संवाद सुनाकर मुझ पर जो कृपा की है, उसका बदला मैं कैसे चुकाऊं?" पार्थिव के मुंह से निकला।

"तुम्हें किसी प्रकार का बदला चुकाने की आवश्यकता नहीं है, पार्थिव! तुम जैसे पुण्यात्मा वीरों की सेवा करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूं। तुम्हारे मन में कोई अभिलाषा रह गई हो या कोई कमी अनुभव कर रहे हो तो कहो। मैं उसे पूरा करने का प्रयत्न करूंगा।"

शिवयोगी की बात सुनकर महाराज पार्थिव ने कहा, "सच? मेरा अहोभाग्य है! स्वामी, सच पूछिए तो मेरे मन में एक बड़ी अभिलाषा जाग उठी है! मैं

एक बड़ी कमी अनुभव कर रहा हूं और वह यही कि चोल देश अपने प्राचीन गौरव को गंवाकर पराधीन बन बैठा है। मैं यह स्वप्न देखता रहूं कि चोल देश पहले की तरह स्वतंत्र राज्य हो जाय, अपना खोया स्वातंत्र्य वापस पाकर उन्नत बने, दूर-दूर के देशों तक उनकी व्याघ्र-पताका फहराय। मेरे जीवन-काल में वह स्वप्न ही बना रहा। अब मेरी यही अभिलाषा है कि मेरे पुत्र के काल में यह सपना साकार बने। मेरा विक्रम वीर पुत्र हो और चोल-वंश की उन्नति को अपना जीवन-लक्ष्य बनाए। उसे यह उपदेश मिले कि प्राण प्यारे नहीं, सुख-चैन कोई बड़ी बात नहीं, मान-रक्षा और शौर्य ही अमूल्य निधि है। दूसरों के अधीन होकर जीने को वह घृणा की दृष्टि से देखे। महाराज, मैं यही वर आपसे मांगता हूं, प्रदान करेंगे ?"

न जाने उनके शक्तिहीन शरीर में ऐसी जोशीली बातें करने की शक्ति कहां से और कैसे आ गई ! शिवयोगी ने शांत स्वर में कहा, "पार्थिव, यदि मैं जीवित रहा तो अवश्य तुम्हारी कामना पूरी करने की चेष्टा करूंगा।"

"महाराज, यह मेरा अहोभाग्य है। अब मेरे मन में किसी बात की कामना या कमी नहीं। मैं कोई शिकायत लेकर नहीं जा रहा हूं। लेकिन, लेकिन···आप हैं कौन, महाराज ? मैं दिन-रात शिवजी की वंदना-उपासना करता आया हूं। आप वही तो नहीं हैं ? ओह, आपके चंद्र-वदन पर ऐसी तेजोमय ज्योति फूट रही है···!"

पार्थिव अपना वाक्य पूरा भी न कर पाए थे कि शिवयोगी ने बीच में ही टोक दिया। "नहीं पार्थिव, नहीं। ऐसी देव-निन्दा नहीं करनी चाहिए।—मैं भी तुम्हीं-जैसा पार्थिव प्राणी हूं। क्या तुम जानना ही चाहते हो कि मैं कौन हूं ? तो देखो···" कहकर जटा-मुकुट और नकली दाढ़ी-मूंछ हटाकर शिवयोगी ने अपना असली रूप दिखाया।

आंखें चौंधिया देने वाले तेज से भरे उनके दिव्य मुख को पार्थिव ने निर्निमेष दृष्टि से देखा।

"अहा ! आप हैं !" उसके मुख से लड़खड़ाते हुए शब्द निकले। अपार अथाह विस्मय में पार्थिव की कांतिहीन आंखें तो खिली की खिली ही रह गईं। और पार्थिव की आत्मा इस भौतिक देह-कारा से मुक्ति पाकर अनादि-अनंत परब्रह्म से मिलने उड़ गई।

सात

पौ फटने में अभी आधा पहर शेष था। पूर्वाकाश में सुबह का चांद और शुक्र तारा पास-पास चमक रहे थे। मध्याकाश में नक्षत्र-राशि ऐसी चमक रही थी मानो हीरक-कणिकाएं बिखरी पड़ी हों। उत्तर दिशा में सप्तर्षि-मंडल

शोभायमान था, जैसे सुन्दर चौक पुरे हों। दक्षिणी कोने में स्वाति नक्षत्र विशेष मनोरम रूप से अपना अलग शासन कर रहा था। उस मनोहारिणी प्रत्यूष वेला में कावेरी के प्रवाह की कलकल ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ न सुनाई देता था। सहसा उस शांति को भंग करती हुई घोड़े की टाप सुनाई दी। हां अच्छी जाति का एक हृष्ट-पुष्ट घोड़ा कावेरी नदी के किनारे की सड़क से पूरब से पश्चिम की ओर आ रहा था। घोड़ा दौड़ नहीं रहा था, बल्कि धीमे-धीमे साधारण चाल से चला आ रहा था। घोड़े पर रुक अजानुबाहु सैनिक बैठा था।

सैनिक के दाहिनी ओर कावेरी का प्रवाह था, बाईं तरफ घने वृक्षों और झाड़-झंखाड़ों से भरा वन प्रदेश था। वीर सैनिक बाईं ओर बड़े ध्यान से देखता हुआ आगे बढ़ रहा था। एक जगह पहुंचते ही सैनिक ने घोड़े को बाईं तरफ घुमाया। घोड़ा भी वहां पहुंचने पर ऐसे मुड़ा मानो उस मार्ग से उनका दीर्घ परिचय हो और वह बिना कोई प्रयास किए ही पेड़-पौधों के झुरमुटों के बीच से चलने लगा। ग़ौर से देखने पर पता चलता था कि एक तंग पगडंडी वहां से बल खाती हुई जाती है।

चलने में घोड़े को कुछ कठिनाई हो रही थी। कुछ दूर जाने पर एक खाली मैदान और एक छोटा-सा मंदिर दृष्टिगोचर हुए। मंदिर के सामने बड़े-बड़े हाथियों और घोड़ों की मूर्तियां खड़ी थीं जिनसे आसानी से अनुमान लगाया जा सकता था कि वह मंदिर 'ऐयनार' (शास्त्रा) का मंदिर है। मानता के रूप में भक्तों द्वारा चढ़ाए गये उन मिट्टी के हाथी-घोड़ों में कुछ बहुत ही पुराने थे और कुछ बहुत नए। उन पर लगा रंग ज़रा भी न धुला था। बलिपीठिका और ध्वज-स्तंभ भी वहां दिखाई दिए।

प्राची दिशा में भोर के लक्षण दिखलाई देते-न-देते घुड़सवार वहां आ पहुंचा। सैनिक घोड़े पर से कूदकर कुछ बहुत ही विचित्र काम करने लगा। मिट्टी के हाथियों और घोड़ों के बीच उसने अपना घोड़ा ले जाकर खड़ा कर दिया। उसने घोड़े की पीठ पर से एक गठरी उतारकर खोली और उसमें से व्याघ्र-चर्म, रुद्राक्ष माला, नकली जटा-जूट और दाढ़ी-मूछ निकालकर धारण की। थोड़ी ही देर में सिपाही का पुराना रूप एकदम बदल गया और वह दिव्य तेजस्वी शिवयोगी के रूप में दीखने लगा।

हां, वेण्णारु के तट पर पार्थिव महाराज को वरदान देने वाले शिवयोगी ही थे वे! अपनी पुरानी वेश-भूषा के सामान की गठरी बनाकर शिवयोगी ने एक टूटे मिट्टी के हाथी के पीछे छिपाकर रख दी। फिर घोड़े के पास जाकर बड़े प्रेम से उसकी पीठ सहलाई। घोड़े ने धीमे से हिनहिनाकर बताया कि उसने उनका इशारा समझ लिया है।

वहां से शिवयोगी उसी पगडण्डी के रास्ते चले और कावेरी के किनारे जा

पहुंचे। किनारे पर पहुंचकर शिवयोगी ने पश्चिम की दिशा पकड़ी। एक घड़ी का रास्ता तय करके सूर्योदय के समय शिवयोगी उस नौका-घाट पर पहुचे, जहां पोन्नन की कुटिया थी। द्वार पर जाकर उन्होंने आवाज़ दी, 'पोन्नन !"

"साधु महाराज आए हैं, वल्लि"—पोन्नन के पहले पोन्नन की आवाज़ उन्हें प्रणाम करने चली आई। दूसरे ही क्षण पोन्नन भी कुटिया से बाहर आया और शिवयोगी के चरण स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया। पीछे-पीछे वल्लि ने भी आकर सिर नवाया। फिर तीनों कुटिया के अंदर चले गए। वल्लि ने बड़े आदर और भक्ति के साथ साधु के लिए पीढ़ा बिछाया। शिवयोगी ने उस पर बैठते हुए पूछा, "पोन्नन, महारानी और युवराज बसंत महल ही में हैं न ?"

"हां महाराज···क्यों महाराज ! और कुछ दिनों में हमारे युवराज को लोग महाराज कहकर पुकारने लगेंगे न ?"

"हां, सभी काम यदि निर्विघ्न होते चले तो !···तुम अभी जाकर उन्हें लिवा लाओ।" शिवयोगी ने कहा।

"अभी जाता हूं, महाराज ! वल्लि, साधु महाराज का सत्कार अच्छी तरह करना।" कहकर पोन्नन बाहर चल पड़ा। थोड़ी देर बाद पानी में नाव के चलने की छप-छप आवाज़ सुनाई दी।

पोन्नन के जाने के बाद वल्लि ने शिवयोगी की बड़ी श्रद्धा के साथ सेवा-टहल की। प्रातःकाल के नित्यकर्म पूरे हो जाने पर वल्लि ने ज्वार की गरम-गरम अड़ै लाकर शिवयोगी के सामने परोसी। योगी बड़े चाव से अड़ै खाते हुए वल्लि से वार्तालाप करने लगे।

"वल्लि, महारानी कैसी है, तुम्हें मालूम है ?" शिवयोगी ने पूछा।

"युवराज के समीप होने पर तो देवी ठीक रहती हैं, धैर्य धारण किये रहती हैं। पर वे कहीं दूर चले गए तो बस, आंसू बहाने लगती हैं।" कहकर वल्लि ने पूछा—"स्वामी, आखिर होगा क्या ? युवराज क्या सचमुच महाराज होंगे ? उन्हें कुछ हो गया तो महारानी सहन न कर पायंगी, प्राण छोड़ देंगी।"

"मैं क्या जानूं, वल्लि ! पर इतना जानता हूं कि भगवान् की जो इच्छा होगी, वही होगा। तुम्हें जहां तक मालूम हो, बता सकती हो कि लोग क्या कह रहे हैं ?"

"लोग तो युवराज के ही पक्ष में हैं। चाहते हैं कि पल्लव शासन का अन्त हो जाय। ऐसा कोई बच्चा नहीं, जो पार्थिव महाराज की वीर मृत्यु के बारे में न जानता हो। स्वामी, छः साल पहले आप ही ने आकर हमें समाचार सुनाया था। अब तक मैंने और मेरे पति ने वह बात, जो आपके मुंह से सुनी थी, लाखों लोगों को बताई होगी।"

"मैंने भी तो कितने ही लोगों को सुनाई है। हां, यह तो बताओ, मारप्प भूपति अब कैसा है ? अब भी क्या वह तुम्हारे दादाजी से अपना भविष्य पूछने

आया करता है ?" शिवयोगी ने पूछा।

"हां, बराबर आता-जाता है।" वल्लि ने उत्तर दिया। फिर न जाने क्या सोचकर वह ठहाका मारकर हंस पड़ी।

शिवयोगी ने पूछा, "क्या देखकर हंस रही हो, बिटिया ? मेरा चेहरा-मोहरा देखकर तो नहीं ?"

"नहीं स्वामी, आपको तो पता है कि मारप्प भूपति की मनोकामना क्या है ? वह चाहता है कि कांची के चक्रवर्ती की पुत्री से ब्याह करे। उसके खयाल में अब विवाह का मुहूर्त्त शोधना ही बाक़ी रह गया है !" वल्लि ने कहा।

शिवयोगी के चन्द्र-जैसे उज्ज्वल चेहरे पर एक क्षण के लिए काले बादल छा गए। पर वे झट संभल गए और होंठों पर मुस्कान लाकर बोले, "तो तुम इस पर इतना हंस क्यों रही हो ?"

"कहां चक्रवर्ती की पुत्री और कहां बेचारा बुद्धू मारप्प ! दुनिया में मर्दों का कौन-सा अकाल पड़ गया है कि नरसिंह पल्लव अपनी कन्या इस कापुरुष को दें ? हां, सुना है कि चक्रवर्ती की कुमारी बहुत ही सुन्दर है, क्या यह सच है ? आपने अपनी आंखों से देखा है ?" वल्लि ने उत्सुकता से पूछा।

शिवयोगी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "देखा तो है, लेकिन सुन्दरता की बात मैं क्या जानूं ! संन्यासी जो हूं।"

"यह बताइए, हमारी रानी से बढ़कर सुन्दरी होगी ?"

"तो क्या तुम्हारी रानी बड़ी सुन्दरी है ?"

"हमारी रानी ? जी नहीं, सुन्दर नहीं, बिलकुल बदसूरत हैं ! आपके चक्रवर्ती की पुत्री रति है, रति से भी बढ़कर हैं !"

"अरे वल्लि, इतना गुस्सा क्यों होती हो ?"

"और क्या ? हमारी रानी को एक बार देखने के बाद भी आप ऐसा प्रश्न करते हैं ! अरुल्मोलि देवी के समान दिव्य सुन्दरी चौदहों भुवनों में भी ढूंढ़े न मिलेगी !"

"मैंने तो पहले ही कह दिया कि मैं साधु-संन्यासी सुन्दरता-असुन्दरता की बात क्या जानूं !"

"अब तो यह अच्छी तरह से मालूम हो गया कि आप कुछ नहीं जानते। लेकिन कभी कांची के चक्रवर्ती से मिलने का मौका मिले तो पूछकर देखिए, वे क्या बताते हैं। अरुल्मोलि देवी और पार्थिव महाराज के विवाह के पहले की बात जानते हैं आप ? अरुल्मोलि देवी के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर नरसिंह वर्मा ने हठ ठानी थी कि ब्याह करूंगा तो अरुल्मोलि देवी से ही करूंगा, नहीं तो सिर मुंडवाकर बौद्ध-भिक्षुक बन जाऊंगा। लेकिन अरुल्मोलि देवी की सगाई उससे पहले ही पार्थिव महाराज से हो चुकी थी। इसलिए अरुल्मोलि देवी ने भी हठ

पकड़ा कि मैं अन्य पुरुष का विचार अपने मन में कभी नहीं ला सकती। और अपनी बात पर डटी रहकर उसने पार्थिव महाराज से विवाह कर ही लिया।"

शिवयोगी के मुंह पर मन्द हास फैल गया। बोले, "क्यों बिटिया, फिर क्या हुआ? नरसिंह वर्मा ने क्या किया? सिर मुंडवाकर बौद्ध भिक्षुक तो नहीं बन गए?"

"मरदों की बात का क्या भरोसा? तिस पर राजे-महाराजे! उनके मन की कोई क्या कहे? क्षण-क्षण गिरगिट की तरह रंग बदलें तो आश्चर्य ही क्या? बाद को सुना कि उन्होंने पाण्डय राजकुमारी से विवाह कर लिया। और न जाने उनके अन्तःपुर में कितनी औरतें हैं! अगर मैं राजघराने में पैदा हुई होती तो कभी किसी राजकुमार से शादी न करती। राजमहलों में दस सौतों के बीच रहने से हज़ार गुना अच्छा है कि किसी झोंपड़ी में स्वामिनी बनकर रहना।"

शिवयोगी खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले, "तुम सच-सच कहती हो, बिटिया! लेकिन जैसा तुम सोचती हो नरसिंह वर्मा वैसा बुरा तो नहीं मालूम पड़ता। मैंने उसे निकट से देखा है।"

"बुरे न हों तो भले ही बने रहें! मालूम होता है कि वे आपके परिचित हैं और आपको मानते भी बहुत हैं। आप एक काम करें तो कैसा हो? चक्रवर्ती की पुत्री का विवाह हमारे युवराज से करा दीजिए तो सारा झगड़ा ही खत्म हो जाय और अमन छा जाय।"

"तुम्हारा विचार तो बहुत उत्तम है वल्लि, लेकिन यह काम मुझसे नहीं होने का। चाहो तो तुम चक्रवर्ती से मिलकर खुद बात कर लो!"

"मुझे चक्रवर्ती से मिलने का कभी मौका मिले तो ज़रूर बात करूंगी, मुझे डर किस बात का?"

वल्लि यह कह ही रही थी कि नौका के घाट पर लगने का शब्द सुनाई दिया। "नाव आ गई," कहती हुई वल्लि कुटिया से बाहर आई।

कुछ देर बाद अरुल्मोलि देवी और युवराज विक्रम कुटिया के अन्दर आये। "महाराज" कहते हुए शिवयोगी के चरणों में झुके। शिवयोगी ने विक्रम को उठाकर कलेजे से लगाते हुए आशीर्वाद दिया।

छः वर्ष पहले जो विक्रम अबोध बालक था, वह अब युवावस्था में प्रवेश कर चुका था और एक सुन्दर बलवान नवयुवक बन गया था। उसके मुख पर वीरता का तेज फूटा पड़ रहा था। हृदय में उठती उत्साह की उत्ताल तरंगे आंखों में लहरा रही थीं। जोश में वह जल्दी-जल्दी बताने लगा, "स्वामी, कल रात पिताजी सपने में आये थे, मुझे लेकर त्रिचिरापल्ली के पहाड़ पर गये। पल्लवों का झंडा चोटी पर फहरा रहा था। उसकी ओर उंगली उठाकर उन्होंने इशारा किया।...स्वामी, मैं आगे बर्दाश्त नहीं कर सकता! आप मुझे आशीर्वाद दीजिए।"

"मेरा आशीर्वाद तो तुम्हें सदैव प्राप्त है, विक्रम ! मैंने तो इतना ही कहा था कि उचित समय तक प्रतीक्षा करो। अब वह समय आ गया है। कहो, क्या करने का विचार है ?"

"मैंने आगामी भाद्रपद की पूर्णिमा को त्रिचिरापल्ली के पहाड़ पर फहराने वाले पल्लवों के झंडे को उतारकर दूर फेंक देने और उसके स्थान पर अपनी व्याघ्र-पताका फहराने का निश्चय किया है। कोई कुछ भी कहे, मैं अपना निश्चय बदलूंगा नहीं।"

"यह तो बड़े हर्ष का विषय है, विक्रम ! मैं कदापि यह ज़ोर देने वाला नहीं हूं कि तुम अपना निश्चय बदलो। मैं भी आज तक इस शुभ दिन की प्रतीक्षा कर रहा था. अब वह दिन आ गया है। लेकिन मैं इतना अवश्य जानना चाहता हूं कि अपने विचारों को कार्य-रूप देने के लिए तुमने क्या-क्या प्रबंध किये हैं ? क्या केवल व्याघ्र-पताका फहरा देना-मात्र पर्याप्त होगा ? क्या उसकी रक्षा करने के लिए सेना की आवश्यकता नहीं है ? और क्या पल्लव-सेनापति अच्युत वर्मा चुपचाप हाथ बांधे तुम्हारे इन कार्यों को देखता रहेगा ?"

"स्वामी, उसकी चिन्ता आप छोड़ दीजिए। चोल देश की समस्त प्रजा मेरा साथ देने के लिए प्रस्तुत है। पोन्नन से पूछिये तो वह बतायगा। भादों की पूर्णिमा को अनेक वीर उरैयूर आकर एकत्र होंगे। व्याघ्र-पताका ज्यों ही हवा में फड़फड़ाने लगेगी त्यों ही वे प्रकट रूप से मेरी सेना में सम्मिलित हो जायंगे। उरैयूर में जो पल्लव-सेना है, उसका विनाश करके हम अच्युत वर्मा को भी कैद कर लेंगे।"

"इस खतरनाक प्रयास में कौन-कौन तुम्हारा साथ दे रहे हैं ? तुम्हारे लिए सेना कौन इकट्ठी कर रहा है ? तुम तो बसंत महल से बाहर निकलते नहीं।"

"मेरे चाचा मारप्प भूपति ही सारा प्रबन्ध कर रहे हैं। उन्होंने गुप्त रूप से एक बड़ी सेना इकट्ठी कर ली है।"

मारप्प भूपति का नाम सुनते ही शिवयोगी का मुंह एक क्षण के लिए काला पड़ गया। उन्होंने बीच में ही विक्रम को टोककर पूछा, "कौन ? मारप्प भूपति सारा प्रबन्ध कर रहा है ? उसको तुमने अपना उद्देश्य कब बताया ?"

"चाचाजी अब पहले-जैसे नहीं हैं, आप चिन्ता न करें। वे बिलकुल बदल गए हैं। अब तो वे अपनी करनी के लिए बहुत पछताते हैं और प्रायश्चित के रूप में चोल देश के मुक्ति-प्रयास में अपने प्राण तक होम करने को प्रस्तुत हैं।" विक्रम ने कहा।

शिवयोगी ने अरुल्मोलि की ओर देखकर पूछा, "देवी, क्या यह सच है ?"

"हां, स्वामी ! मारप्प भूपति का मन अब बदला हुआ ही मालूम होता है।" अरुल्मोलि ने उत्तर दिया।

"यह सुनकर तो मुझे बहुत हर्ष हो रहा है, विक्रम ! तुम्हारा प्रयत्न सफल हो। देव सेनापति भगवान् कार्तिकेय तुम्हारी रक्षा करें। तुम्हारे बाहुओं और खड्ग में मां पराशक्ति बल भरें। आवश्यकता पड़ने पर मैं अवश्य आऊंगा। अब विदा लेता हूं।" कहकर शिवयोगी उठ पड़े।

"स्वामी, मेरे चाचा ने कहला भेजा है कि वे भी अभी आ रहे हैं। वे आपके दर्शन करने को बहुत उत्सुक हैं। आप थोड़ी देर के लिए ठहर जायं तो बड़ा अच्छा हो !" विक्रम ने कहा।

"नहीं, विक्रम ! इस समय मुझे अवकाश नहीं है। अच्छा, जो हो, अपनी बात पर दृढ़ रहना, अपने पिता के वचन न भूलना।"

शिवयोगी अपनी बात पूरी ही कर पाए थे कि अरुल्मोलि देवी पोन्नन से बोल उठीं, "पोन्नन, युवराज को तुम नाव पर ले चलो। मैं अभी आई।"

पोन्नन और विक्रम कुटिया से बाहर चले गए।

अरुल्मोलि देवी शिवयोगी के चरणों में सिर रखकर बोलीं, "स्वामी, मैं नहीं जानती कि आप कौन हैं, न जाने क्या-क्या सोचते हुए मैंने आप पर सन्देह किया था। लेकिन आप तो हमारे हितचिंतक हैं। इस पर मैंने कभी शंका नहीं की। इसीलिए आपके बारे में कुछ जानने-पूछने की चेष्टा भी नहीं की। आप कोई भी क्यों न हों, इस दासी को एक वरदान दीजिए। आप ही मुझ असहाय की शरण हैं। आपको छोड़कर मेरा अब दूसरा कोई आसरा नहीं है।"

शिवयोगी की आंखों में आंसू भर आए। बोले, "बोलो, क्या बात है ? अपनी शक्ति की बात हुई तो अवश्य करूंगा।"

"आप तो महान् आत्मा हैं। ऐसा कोई काम नहीं, जो आप न कर सकें। आप चाहें तो सब-कुछ कर सकते हैं। मैं और क्या चाहूंगी, बस यही कि मेरे पुत्र की प्राण-रक्षा हो। स्वामी, आपको इस बात का जिम्मा लेना होना। अब वह जो काम करने चला है, उसमें उसे सफलता प्राप्त होगी—इसकी मुझे बिलकुल आशा नहीं है। महाशक्तिशाली पल्लव-चक्रवर्ती का विरोध मोल लेकर यह अबोध बालक क्या प्राप्त कर सकेगा ? आपने भी सब-कुछ जानते हुए इस काम में उसे प्रोत्साहित किया है। स्वामी, आपके मन में क्या है ? मैं नहीं जानती। जो भी हो, उसकी प्राण-रक्षा का सारा भार आप ही पर है।" रानी का दिल भर आया और कंठ रुंध गया।

"प्राणों की रक्षा करने की शक्ति तो केवल भगवान् में है, देवी ! लेकिन फिर भी मैं तुम्हें इतना आश्वासन दे सकता हूं कि विक्रम के वीर पिता की आत्मा उसका कवच बनकर उसकी रक्षा अवश्य करेगी। चिन्ता छोड़ो, उठो।" शिवयोगी यह कह ही रहे थे कि पश्चिम की ओर से घोड़े की टाप सुनाई दी। जल्दी से विदा लेकर शिवयोगी पूर्व की ओर चल पड़े।

शिवयोगी के जाने के कुछ देर बाद मारप्प भूपति घोड़े पर आ पहुंचा। उतरते ही उसने पहला प्रश्न यह किया, "विक्रम, तुमने कहा था कि शिवयोगी आने वाले हैं, क्या वे आ गए ?"

"अभी-अभी विदा हुए हैं, चाचाजी ! उन्हें गए कुछ क्षण भी नहीं बीत पाए हैं। थोड़ी देर पहले आप आए होते तो—"कहते हुए विक्रम की आंखें उस ओर गयीं, जिस ओर से शिवयोगी विदा हुए थे।

मारप्प भूपति ने पूछा, "इसी मार्ग से गए हैं न ? अभी जाता हूं। उनका दर्शन-मात्र ही सही, वही करके अभी आया !"

अगले क्षण घोड़े पर सवार होकर मारप्प भूपति शिवयोगी की तलाश में चल पड़ा।

लेकिन नदी-किनारे के मार्ग पर बहुत दूर तक घोड़ा दौड़ाने पर भी उसे शिवयोगी के दर्शन न हो पाए। न जाने वे कौन-सी माया रचकर अन्तर्धान हो गए थे !

आठ

समुद्र-तटवर्ती मामल्लपुरम नगरी में उस दिन बड़ी चहल-पहल थी। घर-घर में आम और नारियल के तोरण बंधे थे। सिंह-पताका जगह-जगह फहरा रही थी और रंग-बिरंगे बंदनवार नगर की शोभा बढ़ा रहे थे। गलियों और सड़कों पर तरह-तरह के चौक पूरे गए थे। उनमें रथ, हाथी, घोड़े, गोपुरम, पेड़-पौधे और लताएं चित्रित थीं, जो आनन्द पहुंचा रही थीं। सुबह से ही स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएं सुन्दर रेशमी वस्त्रों और आभूषणों से अपना शृंगार करके घर के दरवाज़ों, चबूतरों, और गलियों पर छोटी-छोटी टोलियों में खड़े थे। जहां देखो, वहीं दुन्दुभी बज रही थी। और भी अनेक मंगल-वाद्यों से वातावरण गूंज रहा था। वाद्यों की ध्वनि के कौतूहल-भरे स्वरों में लोगों का आपस का वार्तालाप भी सुनाई पड़ रहा था : "कांची से चक्रवर्ती रवाना हो गए हैं। आधा रास्ता तै कर चुके हैं। चक्रवर्ती के साथ राजकुमारी कुन्दविदेवी भी पधार रही हैं।"

मामल्लपुरम के निवासियों ने उस दिन इसलिए उत्साह और उमंग से आनन्दोत्सव मनाया था कि मामल्ल नरसिंह वर्मा चक्रवर्ती अपनी इस नगरी में पधारने की कृपा कर रहे थे। इस बात की भी सूचना प्रकाशित की गई थी कि आठ वर्ष पहले जो शिल्प-कार्य रुक गया था, उसका पुनः श्रीगणेश होगा। चक्रवर्ती के साथ उनकी प्राण-प्रिय कन्या कुन्दविदेवी भी आ रही है, इस बात का पता लगते ही मामल्लपुरम के निवासियों के आनन्द का कोई ठिकाना न रहा। बड़े पैमाने पर उत्सव का आयोजन करने का एक कारण यह भी था।

"पिताजी, इस नगरी का नामकरण आपके नाम पर क्यों हुआ ?" राजकुमारी ने अपने पिता से प्रश्न किया। उस समय दोनों पल्लव-साम्राज्य के प्रधान हाथी पर आसीन थे। शाही हाथी के आगे-पीछे अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक चल रहे थे। उनके साथ अनेक राज-चिह्न और वाद्य भी थे। "पिताजी, इस नगरी का नाम आपकी विरुदावलियों में से एक को चुनकर क्यों रखा गया है ? आप तो यह कहकर टाल देते हैं कि फिर कभी बताऊंगा। आज आपको बताना ही पड़ेगा। आज मैं यों ही न छोड़ूंगी।" राजकुमारी अपनी बात पर अड़ गई।

"तो हमें इस हाथी पर से उतरना होगा," चक्रवर्ती ने कहा।

"कहिये तो अभी जमीन पर कूद पड़ूं !" कुन्दवि बोली।

"तुम साधारण स्त्री होतीं तो कूद सकती थीं। कूदकर पैर भी तोड़ सकती थीं। लेकिन तुम तो बिटिया, चक्रवर्ती की पुत्री हो, इसलिए ऐसा न कर पाओगी।" चक्रवर्ती ने कहा।

"क्यों पिताजी ? चक्रवर्ती की पुत्री को क्या यह अधिकार भी नहीं है कि हाथी पर से कूदकर अपना पैर तोड़ ले !" मन्द-मन्द हंसते हुए कुन्दवि ने पूछा।

"हां, नहीं है। तुम ऐसा करोगी तो पलक मारते ही यह बात संसार में फैल जायगी कि चक्रवर्ती की सुपुत्री कुन्दवि हाथी पर से कूद पड़ी। फिर अंग, बंग, कलिंग आदि छप्पन देशों के राजकुमारों में से कोई भी तुमसे विवाह करने को प्रस्तुत नहीं होगा।"

"नेकी और पूछ-पूछ ! ब्याह हो जाने पर तो मुझे आपसे अलग होना पड़ेगा और आपको कभी अकेला छोड़कर जाने का मेरा विचार नहीं है। मैं तो यही चाहती हूं कि सदा आप ही के साथ रहूं।"

"अच्छा, यह बात है ! कुन्दवि, एक बार अपनी बात को दोहराओ तो, कान भरकर सुन लूं।" चक्रवर्ती ने उत्सुकता दिखाई।

"न, फिर नहीं दोहराऊंगी। सुना तो है कि आप एक संघग्राही प्रसिद्ध हैं। फिर बात को दुबारा क्यों सुनना चाहते हैं ?"

"हे आपत्बांधव ! अनाथरक्षक ! न जाने कौन राजकुमार इस मुंहजोर लड़की से ब्याह करके यातना भोगेगा ! जिसके भाग्य में यह लड़की लिखी हो, हे कृपालु, उसकी तुम्हीं रक्षा करो !" चक्रवर्ती आकाश की ओर मुंह करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे।

"हंसी-मज़ाक रहने दीजिए। बोलिए, हाथी रुकवायंगे कि नहीं ? नहीं तो मैं अभी नीचे कूद पड़ूंगी। फिर मुझसे कोई राजकुमार ब्याह रचाने नहीं आयगा। जन्म-भर आपके प्राण खाती रहूंगी।" कुन्दवि जल्दी से उठी, मानो अभी नीचे कूद पड़ेगी।

"नहीं, नहीं बेटी ! ऐसा उल्टा काम न करो !" पल्लव-चक्रवर्ती ने महावत

को आदेश दिया कि हाथी रोके। हाथी रुका तो पिता और पुत्री नीचे उतरे। घोड़ा और पालकी लाने का संकेत करके परिवार-नायक को बुलाकर चक्रवर्ती ने कहा, "तुम सबको सीधे नगर-द्वार पर ले चलो। हम वहीं मिलेंगे।"

तब तक घोड़ा और पालकी आ गए थे। चक्रवर्ती घोड़े पर चढ़कर राजमार्ग से हटकर जो दूसरा मार्ग जाता था उस पर चलने लगे। राजकुमारी की शिविका उनके पीछे-पीछे चलने लगी। चक्रवर्ती अक्सर ऐसे अप्रत्याशित कार्य करने के आदी थे। उनके लिए यह कोई नई बात न थी। उनकी प्रकृति से परिचित पारिवारिक जनों को इससे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। वे उनके आदेशानुसार राजमार्ग से होकर आगे बढ़ने लगे।

चक्रवर्ती और कुन्दवि एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां के प्राकृतिक पर्वत-खंडों को शिल्प-विद्या-विशारदों के कुशल हाथों ने सुन्दर रथों और विमानों के रूप में संवारा था। इन विमान-मन्दिरों के निकट ही पत्थर का एक हाथी और सिंह भी दिखाई दिए। ये भी शिला-खंडों को काट-छांटकर बनाए गए शिल्प-कला के उत्तम नमूने थे।

चक्रवर्ती पत्थर के हाथी के निकट गए और उस पर हाथ फेरते हुए बोले, "कुन्दवि, यह हाथी देखा ? देखने में सजीव लगता है न ? तीस वर्ष पहले यहां यह हाथी न था, एक नंगी चट्टान खड़ी थी।"

"ये सारे मन्दिर भी क्या केवल शिला-खंडों के रूप में ही खड़े थे ?" कुन्दवि ने पूछा।

"हां, बेटी ! आज जैसे हम-तुम आए हैं, वैसे ही तीस वर्ष पहले मैं अपने पिताजी के साथ यहां आया था। तुम तो अपने दादा के बारे में भली-भांति जानती ही हो, शिल्प और चित्र-कला के पीछे वे कितने पागल रहते थे !"

"आप भी तो उनसे कम पागल नहीं !" कुन्दवि ने बीच में टोका।

चक्रवर्ती मुस्कराते हुए बोले, "मुझसे भी ज़्यादा पागल थे वे। ईंटों और लकड़ियों के हज़ारों मन्दिर बनवाए हैं उन्होंने। फिर भी उनका मन नहीं भरा था। वे चाहते थे कि अविनाशी परब्रह्म के अनश्वर मंदिर बनवायें। पहाड़ खोदकर मंदिर गढ़वाने की उनकी बड़ी अभिलाषा थी। उन्हीं दिनों हम घूमते-घामते यहां आ पहुंचे। तब मेरी आयु तुम्हारी जितनी ही रही होगी। अकस्मात् हमारी दृष्टि आकाश की ओर गई। मेघों के सफेद टुकड़े आकाश में इधर-उधर उड़ रहे थे और पल-पल में रूप बदलकर आश्चर्य में डाल देते थे। उनमें एक छोटा बादल हाथी का रूप धारण किये दृष्टिगोचर हुआ। उसे देखकर मेरे मन में एक विचार आया। मैं इस शिला खंड के निकट आया। हाथ में एक खड़िया थी। उससे इस शिला-खंड पर हाथी का चित्र बनाया। पिताजी देखते रहे और जब मैंने हाथी का चित्र पूरा कर लिया तो उन्होंने मुझे बांहों में भर लिया और आनन्द

से नाचने लगे, 'बेटा नरसिंह, कितना बढ़िया विचार है तुम्हारा ! यहां के बड़े-बड़े शिला-खंडों के मंदिर बनवा दिए जायं और छोटी चट्टानों के हाथी, सिंह-जैसे वाहन। जब तक यह संसार रहेगा तब तक ये शिल्प-कला के नमूने भी अजर-अमर रहेंगे। ऐसे अनुपम होंगे ये !' उत्साह में वे न जाने क्या-क्या कहते गये। पर उन्होंने जो कहा सो करके दिखा दिया। शीघ्र ही यहां शिल्प-कार्य शुरू हो गया। तब से बीस वर्ष तक इस प्रदेश में हज़ारों छेनी-टांकियों की ध्वनि निरन्तर सुनाई देती रही। पर जब मैं उत्तर पर आक्रमण करने चला, तब इनकी ध्वनि रुक गई।" इतना कहकर चक्रवर्ती कुछ रुके और न जाने किस विचार में पड़ गए।

कुन्दवि से चुप नहीं रहा गया। वह व्यंग्य से हंसती हुई बोली, "अब समझी कि नगरी का नाम आपके नाम पर क्यों पड़ा ! बीस वर्षों से जो शिल्प-कार्य हो रहा था उसे रुकवा देने का श्रेय आप ही ने पाया था। और उसी खुशी में···"

कुन्दवि बात पूरी भी न कर पाई थी कि चक्रवर्ती ठहाका मारकर हंस पड़े और बोले, "नहीं, बेटी ! इस शिल्प-पुरी के निर्माण का कार्य मेरे ही कारण पिताजी के मन में आया था, इसीलिए उन्होंने मेरे ही नाम पर इस नगरी का नामकरण कर दिया। नरसिंह नाम से तो कितने ही राजा हो सकते थे। पर वे सभी मामल्ल (महामल्ल) की उपाधि प्राप्त करें, यह शायद संभव नहीं—यही सोचकर उन्होंने इसका नाम मामल्लपुरम रखा। पिताजी का मुझपर कितना अपार प्रेम था···" कहते-कहते वे फिर सोच में पड़ गए। कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर चक्रवर्ती ने कहा, "चलो, बेटी ! फिर कभी आयेंगे और अच्छी तरह से देखेंगे। नगर में लोग हमारी राह देखते होंगे।"

कुन्दवि मूर्तियों को देखना छोड़कर उनके पास आई और बोली, "पिताजी, ये मन्दिर तो अभी अधूरे हैं। आप जो शिल्प-कार्य शुरू करने वाले हैं, वह यहां भी होगा न ? इन मन्दिरों में भगवान् की किन-किन मूर्तियों को प्रतिष्ठापित करेंगे ?"

थोड़ी दूर पर एक वृक्ष के नीचे पालकी और घोड़ा उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। दोनों उसी ओर बढ़ने लगे। कुन्दवि के प्रश्न के उत्तर में चक्रवर्ती ने कहा, "नहीं, बेटी ! ये मन्दिर ऐसे ही अधूरे बने रहेंगे। शिल्प-कार्य अन्य स्थानों में शुरू होगा। कुन्दवि, आयनर नाम के एक महाशिल्पी इस नगर में रहते थे, उन्हीं के नेतृत्व में इन मन्दिरों का निर्माण-कार्य आरम्भ हुआ था। इतना सब काम उन्हीं का किया हुआ है। वे कुछ दुर्भाग्यों के शिकार हुए और अभी कुछ दिन पहले स्वर्ग सिधार गए। उनके द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य को पूरा करने की शक्ति रखने वाला कलाविद् अब कोई नहीं है। आगे भी कोई होगा—इसका भी भरोसा नहीं।"

"आयनर के बारे में सुना है, पिताजी। उनकी पुत्री···" कुन्दवि की बात पूरी होने के पहले ही मामल्ल चक्रवर्ती ने कहा, "वह देखो, घोड़े पर कोई आ रहा है,

न जाने कौन होगा ?"

बात बदलने के विचार से ही उन्होंने सवार की ओर लक्ष्य किया था। थोड़ी दूर पर सचमुच कोई घोड़ा आ रहा था। चक्रवर्ती और कुन्दवि वृक्ष के नीचे जा खड़े हुए। इतने में ही घुड़सवार भी आकर रुका।

चक्रवर्ती को देखते ही वह झटपट घोड़े पर से उतरा और उसने बड़े आदर के साथ चक्रवर्ती के निकट जाकर एक पत्र बढ़ाया। फिर विनयपूर्वक निवेदन किया, "दास का प्रणाम स्वीकार हो। उरैयूर से आ रहा हूं। अच्युत पल्लवराय ने भेजा है। एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना चक्रवर्ती के हाथ यह पत्र देने का आदेश मिला है।"

चक्रवर्ती ने पत्र हाथ में लिया और उसमें क्या लिखा है—यह देखे बिना ही दूत से कहा, "तुम जा सकते हो। इस पत्र के सम्बन्ध में हमारा आदेश कल ही चला गया है।"

दूत प्रणाम करके वहां से चला गया।

"वाह पिताजी, वाह ! आपके शासन का ढंग भी उत्तम है ! पत्र आता है तो उसे पढ़ा भी नहीं जाता !" राजकुमारी ने हंसी उड़ाई !

"मालूम होता है कि तुम्हें मेरी ज्ञान-दृष्टि पर विश्वास नहीं। बिना पढ़े ही बतलाऊं कि इस पत्र में क्या लिखा है ? चोल राजकुमार विक्रम भाद्रपद की पूर्णिमा के दिन चोल देश की स्वातंत्र्य-पताका फहराने की सोच रहा है। इस पर क्या कार्यवाही की जाय ? अच्युत पल्लवराय ने मेरी सलाह मांगी है। चाहो तो तुम पढ़ लो।" कहकर चक्रवर्ती ने वह पत्र कुन्दवि के हाथ में दे दिया।

कुन्दवि ने पत्र पढ़ा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। चकित नेत्रों से चक्रवर्ती को देखकर बोली, "पिताजी, मालूम होता है कि आपने कोई मंत्र-सिद्धि प्राप्त कर ली है। मुझे भी अपनी यह मंत्र-शक्ति सिखा दीजिए न ?"

चक्रवर्ती घोड़े पर सवार हुए और कुन्दवि पालकी पर जा बैठी। थोड़ी दूर जाने पर कुन्दवि ने पालकी का परदा हटाकर चक्रवर्ती से कहा, "पिताजी, वह राजकुमार तो बड़ा ही घमण्डी मालूम होता है। मामल्ल चक्रवर्ती के अधीन करद राजा होकर रहने का भी तो भाग्य चाहिए। उस अभागे ने ऐसा सौभाग्य कहां पाया है ! उसे यों ही न छोड़ दीजिए, पिताजी ! उचित दण्ड देकर उसका घमण्ड दूर कर डालिए।"

"बेटी, यह भी कोई कहने की बात है ? मैं उसे यों ही छोड़ दूंगा क्या ?" कांची लाकर उसे अपने हाथों दण्ड देने की सोच रहा हूं।"

कहकर चक्रवर्ती आगे बढ़ गए।

नौ

मामल्लपुरम में चक्रवर्ती पूरे तीन दिन ठहरे। उन तीनों दिनों सारा नगर आनन्दमय कोलाहल में डूबा रहा। विजयादशमी के दिन तो लोगों के आनन्द का कोई पार ही न रहा।

मामल्लपुरम के दक्षिण की ओर बड़ी-बड़ी चट्टानों और शिला-खण्डों से भरी पर्वतीय भूमि दूर तक फैली थी और अत्यन्त आकर्षक और अद्‌भुत दृश्य उपस्थित करती थी। चट्टानों की भित्तियों पर विविध वर्णों में पुराणों की कथाएं अति उत्तम ढंग से चित्रित थीं और प्राकृतिक सुषमा में चार चांद लगा रही थीं। गोकुल में बाल-गोपाल ने जो-जो लीलाएं की थीं—पूतना के वध से लेकर कालिया मर्दन तक—वे एक विशाल चट्टान पर अंकित थीं। एक चित्र में माखन-चोर कन्हैया दही मथती हुई यशोदा के कंधों पर हाथ रखकर मक्खन के लिए हाथ पसारे हुए थे। इस चित्र को देखकर तो सारा जीवन यहीं व्यतीत करने को जी चाहता था।

दो भागों में बंटी एक दूसरी चट्टान पर स्वर्ग की गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए कठोर तपस्या करने वाले भगीरथ का चित्र अंकित था। चित्र में भगीरथ की तपोमहिमा से आकृष्ट होकर सुर-नर-मुनि सब तरफ से आकर खड़े हुए अंकित किये गए थे। उनके चेहरों पर विस्मय और भक्ति के भाव चित्रित थे। इस अनुपम चित्र को बनाने वाला शिल्पकार, लगता था कि रससिद्ध हास्य कलाकार भी रहा होगा। क्योंकि उसने एक कोने में एक ऐसे बिलाव का बड़ा ही सजीव और सुन्दर चित्र बनाया था जो भगीरथ की देखा-देखी आंखें बंद किये तपस्या करने की झूठी चेष्टा-सी कर रहा था।

इसी प्रकार की अनेक अद्‌भुत कला-कृतियों से वहां की चट्टानें सुशोभित थीं। इन कृतियों को आश्चर्यचकित होकर देखते हुए नर-नारी, बालक-बालिकाएं इधर-उधर घूम रहे थे। वे सब रेशमी वस्त्रों और तरह-तरह के आभूषणों से सुसज्जित थे। स्त्रियां अपनी वेणियों में फूल सजाए हुए थीं, पुरुष गले में पुष्प-मालाएं पहने हुए थे। आमोद-प्रमोद का कोलाहल समूचे वातावरण में व्याप्त था। जहां तक दृष्टि जाती वहां तक जन-समुदाय ही जन-समुदाय दीख रहा था। बीच में एक स्थान पर लोगों की भीड़ और भी घनी हो चली थी। किन्तु वह भीड़ स्थिर नहीं थी, धीमी चाल से आगे बढ़ती जा रही थी। ऐसा लगता था कि समुद्र में उठती-गिरती छोटी-छोटी लहरों के बीच एक बड़ी लहर उठकर बिना टूटे लगातार बढ़ती जा रही हो। उस जन-समुद्र में इतनी बड़ी लहर के उठने का क्या कारण था? जरा निकट जाकर देखें तो पता चलेगा कि चक्रवर्ती और उनकी लाड़ली पुत्री ही इसका कारण हैं। चक्रवर्ती नरसिंह वर्मा बढ़िया किस्म

के एक घोड़े पर बैठे थे और कुन्दवि पालकी पर। उनके आगे-पीछे भीड़ हटाते और रास्ता बनाते सैनिक चल रहे थे। कुछ दूर एक बड़े बैल पर लदे हुए ढोल चक्रवर्ती के आगमन की सूचना देते हुए बजते जा रहे थे।

चक्रवर्ती प्रत्येक कला-कृति को बड़े ध्यान और श्रद्धा के साथ देखते चल रहे थे और जगह-जगह आदर सहित खड़े चित्रकारों और शिल्पकारों को देखकर प्रशंसा के कुछ शब्द भी बोलते जाते थे। जुलूस घूमता-घामता अन्त में दुर्गा मन्दिर के पास पहुंचा। दुर्गा का वह मन्दिर महेन्द्र वर्मा के काल में पर्वत को काट-छांटकर बनाया गया था। शिल्प-कार्य बीच में रुक जाने से मन्दिर अधूरा रह गया था। उस दिन के आनन्दमय उत्सव में दुर्गा के इस मन्दिर को विशिष्ट स्थान प्राप्त था। गिरिगुहा के इस मन्दिर के सामने एक बहुत विशाल पंडाल का निर्माण किया गया था। पंडाल के अन्दर जाकर ऊपर सिर उठाकर देखने पर ऐसा भ्रम होता था, मानो अमावस्या की आधी रात में शुभ्र स्वच्छ आकाश को निहार रहे हों। मण्डप का वितान नीले रेशम के वस्त्र का था। उसमें जहां-तहां अष्टकोण बिन्दु ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो नीलाकाश में जड़े जगमगाते हीरक-तारे हों। पंडाल के स्तंभों को रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्रों से लपेटकर सजाया गया था। पंडाल के ऊपरी भाग पर सिंह-ध्वज की कतारें बंधी थीं जो हवा में झूम रही थीं। पंडाल के चारों ओर नारियल के सुन्दर तोरण बंधे आनन्द से नृत्य कर रहे थे। पंडाल के बीचों-बीच देवी दुर्गा की मूर्ति के सामने चक्रवर्ती और उनकी पुत्री के लिए दो सुन्दर सिंहासन बिछे थे। उनके चारों ओर कई पंक्तियों में और भी बहुत से आसन बिछाए गए थे। जब चक्रवर्ती पुलिकेशी पर आक्रमण करने चले थे तो शिल्प और मूर्तिकला का काम एक प्रकार से रुक-सा गया। निश्चय हुआ था कि विजयादशमी के दिन दुर्गा के मन्दिर के सामने चक्रवर्ती के करकमलों द्वारा वह कार्य पुनः प्रारम्भ किया जाय। आज इसी समारोह का आयोजन था। चक्रवर्ती के आने के बहुत पहले ही मंत्री-गण तथा अन्य अधिकारी-गण आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गए थे। चक्रवर्ती और कुन्दवि के पंडाल में पदार्पण करते ही सब लोग उठ खड़े हुए और उत्साह से उनका जय-जयकार किया। स्वागत और बधाई की ध्वनियों से आकाश गूंज उठा।

चक्रवर्ती और कुन्दवि पहले मन्दिर में गए और देवी दुर्गा के दर्शन करके अपने आसनों पर लौटे। उनके बैठने के बाद अन्य लोग भी अपने-अपने आसनों पर बैठ गए। मन्दिर के पुजारी भी चक्रवर्ती के पीछे-पीछे बाहर आए और सबको भभूत-कुंकुम आदि का प्रसाद बांटा। चक्रवर्ती और उनकी बेटी को पुष्पमालाएं पहनाईं और अनेक प्रकार से सत्कार किया। इसके बाद मंगल-वाद्यों की मंगल-ध्वनि के बीच चक्रवर्ती ने अपने हाथों प्रधान शिल्पाचार्य के सिर पर रेशमी वस्त्र का परिवेष्टन किया और उत्तम रेशमी वस्त्रों, स्वर्ण-मुद्राओं तथा फल-फूल-तांबूल

आदि से भरी थाली प्रदान की। आचार्य स्थपति ने थाली हाथ में लेकर सिर-आंखों से लगाई। इसी प्रकार मंत्रियों और अधिकारियों ने भी वहां पर आए सैकड़ों शिल्पियों को उपहार भेंट किये और उन्हें प्रोत्साहित किया।

इसके उपरान्त प्रधान सचिव ने कहा, "सज्जनो, कांची और मामल्लपुरम पल्लव-साम्राज्य के दो नेत्र हैं। हमारे साम्राज्य के लिए राजधानी कांची जितनी महत्त्वपूर्ण है, उतनी ही यह समुद्र-तटवर्ती मामल्लपुरम नगरी रही है। लेकिन स्वर्गीय महेन्द्र चक्रवर्ती ने शिल्प-कला को प्रोत्साहन देने के लिए यहां कार्य आरंभ किया तो कांची का महत्त्व कुछ घट-सा गया और मामल्लपुरम का कुछ बढ़ गया। आठ वर्ष पहले हमारे चक्रवर्ती जब उत्तर पर धावा बोलने चल पड़े तो यहां हो रहे शिल्प-कार्य को स्थगित करना पड़ गया था। पापी पुलिकेशी का संहार करके और वातापि को अग्नि का आहार बनाकर जब चक्रवर्ती वापस स्वदेश लौटे, तो आप लोग जानते ही हैं कि अकाल और रोग से देश को मुक्त करने और राज्य में फैले छोटे-मोटे वैर विरोधों को मिटाने के प्रयत्न में उन्हें जुट जाना पड़ा था। पराशक्ति की कृपा तथा पल्लव-कुल-परम्परागत धर्म-बल की शक्ति से चक्रवर्ती के वे कार्य निर्विघ्न संपन्न हुए। चक्रवर्ती की महिमा का जाप करने वाली इस नगरी में आज फिर वे अधूरे शिल्प-कार्य प्रारम्भ हो रहे हैं। चक्रवर्ती ने कृपापूर्वक अपनी सहमति प्रकट की है कि अब से वे समय-समय पर इस नगरी में पधारेंगे और शिल्प-कला की प्रगति का निरीक्षण करेंगे।"

प्रधान सचिव की बातें सुनकर जनता आनंद-विभोर हो उठी। इसी समय चम्पक द्वीप के दूत चक्रवर्ती के सामने उपस्थित किये गए। दूत-प्रधान ने चक्रवर्ती से जो कहा, उसका सारांश यह था—चंपक द्वीप के निवासी करीब पांच सौ साल पहले करिकालचोल के ज़माने में चोल देश से प्रवास पर गए हुए तमिष्-कुल के ही वंशज हैं। उस द्वीप पर जो राजवंश शासन करता था, वह कुछ वर्ष पहले वंशहीन हो गया। अतः अब चंपक द्वीप शासकविहीन बन गया है। इस बात का पता पाकर पड़ोसी देश के लोग, खासतौर से चपटी नाक वाली जाति के लोग चंपक द्वीप पर आ धमकते हैं, लूट-मार करते हैं और तरह-तरह के उत्पात मचाते हैं। इन उपद्रवों से तंग आकर चंपक द्वीप के निवासियों ने एक बड़ी सभा का आयोजन किया और एकमत होकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मातृभूमि के यशस्वी शासक नरसिंह पल्लवेंद्र के पास दूत भेजें और प्रार्थना करें कि चंपक द्वीप को अपने पल्लव साम्राज्य में मिला लें तथा अपनी ओर से द्वीप का शासन-भार वहन करने के लिए राजवंश के किसी वीर को भी भेजने की कृपा करें।

दूतों की इस प्रार्थना का चक्रवर्ती ने तुरंत कोई उत्तर नहीं दिया। इतना ही कहा कि इस बात का उत्तर सोच-समझकर ही दिया जा सकता है। किसी निर्णय पर पहुंचने में कुछ दिन लग सकते हैं। अतः चंपक द्वीप के दूत चाहें तो तब तक

पल्लव-साम्राज्य की कांची जैसी सुन्दर नगरियों का पर्यटन करें। एक सप्ताह के अंदर हम अपना निर्णय सुनाने का प्रयत्न करेंगे।

इसके बाद चक्रवर्ती नरसिंह वर्मा अपनी पुत्री कुन्दविदेवी, मंत्री-गण, स्थपति-गण आदि के साथ फिर एक बार मन्दिर के अंदर गए। मन्दिर के बाहरी मंडप के दोनों ओर की भित्तियां सूनी थीं। चक्रवर्ती एक ओर गए ओर कुन्दवि के हाथ से गेरुए रंग की खड़िया लेकर चित्र बनाने लगे। पास खड़े लोग आश्चर्य-चकित देखते रह गए। देखते-देखते सिंह पर आरूढ़ युद्ध-सन्नद्ध देवी दुर्गा का दिव्य रूप सुन्दर भित्ति-चित्र के रूप में उभर आया। उसे देखकर कुन्दवि भय-मिश्रित स्वर में बोली, "पिताजी, देवी का उग्रस्वरूप नहीं देखा जाता। आप उस असुर का भी चित्र बना दीजिए, जिससे देवी ने युद्ध किया था।"

तुरन्त चक्रवर्ती ने देवी के सामने हाथ में गदा लिए हुए महिषासुर का चित्र बना दिया। तब कुन्दवि बोली, "अब निश्शंक होकर देवी का मुख देखा जा सकता है।"

चक्रवर्ती ने पास खड़े आचार्य स्थपति की ओर मुंह करके पूछा, "स्थपतिजी, विजयादशमी के दिन ही तो देवी दुर्गा ने महिषासुर का मर्दन किया था? इसलिए उसी दृश्य से हम अपने शिल्प-कार्य का श्रीगणेश करें तो कैसा हो?" आचार्य स्थपति ने अत्यन्त विनम्र होकर चक्रवर्ती की बात का अनुमोदन किया और अपने हाथ की टांकी चक्रवर्ती के आगे बढ़ा दी। चक्रवर्ती ने टांकी हाथ में लेकर अपने बनाए चित्र पर दो-तीन बार चलाई और फिर स्थपति को लौटा दी। स्थपति ने बड़ी श्रद्धा से उसे हाथ में लिया और देवी दुर्गा तथा चक्रवर्ती को प्रणाम करके शिल्प-कार्य आरम्भ किया।

तब से अनेक वर्ष तक मामल्लपुरम में हज़ारों टांकियों की शिल्पकारिता की सुमधुर ध्वनि सुनाई देती रही।

दस

"पुष्पेषु जाति पुरुषेषु विष्णुः नारीषु रम्भा नगरीषु कांचः।"

इस प्रकार संस्कृत के महाकवियों द्वारा कांची नगरी की कीर्ति का वर्णन किया गया था। उसी नगरी की एक गली से होकर कुन्दवि देवी की पालकी जा रही थी। वह मन्दिरों में जाकर भगवान् की पूजा देखने के विचार से चली थी। पर उसका मन मन्दिर की ओर जाने के बदले मामल्लपुरम की ओर चल पड़ा था और एक सप्ताह पूर्व हुए विजयादशमी के आयोजन की स्मृतियों में खो गया था। वह सोच रही थी कि उस दिन शुरू हुए शिल्प-कार्य से उसके पिता की कीर्ति ऐसे फैलेगी कि संसार के कायम रहने तक उस पर कोई चोट न पहुंचेगी। वह इस पर गर्व करने लगी कि वह बड़े भाग्य से ऐसे यशस्वी पिता की पुत्री हुई।

वह यह भी सोच रही थी कि उस प्रजा का भी भाग्य कुछ कम नहीं है जिसने ऐसे कीर्तिवंत चक्रवर्ती के शासन-काल में रहने का अवसर पाया। वह इन्हीं विचारों में तल्लीन होने जा रही थी कि उसे गली के एक मोड़ पर एक अद्‌भुत दृश्य दीखा। सब तरह के राज-लक्षणों से युक्त एक तेजस्वी युवक घोड़े पर सवार था। उसके शरीर और हाथों को लोहे की जंज़ीरों के जाल ने जकड़ रखा था। वह युवक घोड़े की ज़ीन से कसकर बांध दिया गया था और घोड़े के दाएं-बाएं, आगे-पीछे जंज़ीर का छोर हाथ में लिए पल्लव-सैनिक तेज़ कदम बढ़ाते आ रहे थे।

यद्यपि वह युवक थका-मांदा दीखता था, फिर भी उसके मुंह पर परेशानी की कोई लकीर तक न थी। निर्भीक, धैर्यवान, वीर पुरुष दीखता था वह। उसके मुंह पर कुछ इस प्रकार के भाव थे कि केवल मेरे शरीर को ही लोहे की जंज़ीरों से जकड़ा जा सकता है, मेरे मन को कौन बंदी बना सकता है ?"

इस दृश्य को देखकर कुन्दविदेवी के विशाल नेत्र विस्फारित होकर और भी विशाल बन गए। ठीक उसी समय उस युवक ने राजकुमारी की ओर देखा। कुन्दवि के अवर्णनीय, अनुपम सौन्दर्य ने उसे चकित कर दिया। दूसरे ही क्षण पालकी और घोड़ा एक-दूसरे के पास से गुज़रकर आगे बढ़ गये। कुन्दवि ने पालकी से कई बार मुड़-मुड़कर देखा। न जाने उसने क्या सोचकर ऐसा किया ? हो सकता है कि उसने यह सोचा हो कि जंज़ीरों से जकड़ा वह युवक भी उत्सुकता से मुड़-मुड़कर उसे देखता होगा। लेकिन उस युवक ने सिर न उठाया। हम नहीं जानते कि उसके शरीर में जकड़े जंज़ीरों के जाल ने उसे मुड़ने से रोक दिया अथवा उसके मन के दृढ़ संकल्प ने उसे सिर तक न घुमाने दिया !

कुन्दवि के दिव्य सौन्दर्य की तरह उसकी भगवद्-भक्ति भी उन दिनों बहुत प्रसिद्ध थी। चाहे वह शिव मंदिर में जाए या विष्णु मंदिर में अथवा पराशक्ति की सन्निधि में, वह इन देवी-देवताओं के ध्यान में ऐसा तन्मय हो जाती कि अपना आपा भूल जाती थी। किंतु आज कुन्दवि का मन ध्यान में निश्चल नहीं रह पाया। देवता की सन्निधि में खड़े होने पर भी उसके मनःचक्षु के सामने जंज़ीरों में जकड़े, घोड़े की ज़ीन पर कसे युवक का चेहरा ही आ जाता था। अनेक प्रयत्न करने पर भी वह उस चेहरे को न भूल सकी, उस चित्र और उस दृश्य को अपने मनःपटल से न हटा सकी और न मिटा सकी। इस प्रकार का अनुभव उसे पहले कभी नहीं हुआ था, उसके लिए यह एकदम नया अनुभव था। एक ओर तो वह उसे नई और आनन्दमयी स्फूर्ति प्रदान कर रहा था और दूसरी ओर भयमिश्रित भावों से आशंकित कर रहा था।

किसी तरह भगवान् के दर्शन-पूजन आदि से निवृत्त होकर कुन्दवि अपने महल को लौटी। अब उसने उस नवयुवक के ध्यान से अपना मन हटाकर दूसरे कामों में लगाने का वृथा प्रयत्न करना छोड़ दिया। राज-लक्षणों से युक्त वह

तेजस्वी युवक कौन होगा ? उसे जंज़ीरों में क्यों बांध रखा गया है ? उसे कहां लिये जा रहे हैं ? उसने ऐसा कौन-सा अपराध किया होगा कि इतना कड़ा दण्ड मिले ? इसी प्रकार अनेक प्रश्न कुन्दवि के मस्तिष्क में मंडराने लगे। सहसा उसे एक बात स्मरण हो आयी। उरैयूर का राजकुमार चक्रवर्ती के विरुद्ध कोई कलह ठानने वाला है—इस आशय का पत्र मामल्लपुरम में चक्रवर्ती के नाम आया था न ? चक्रवर्ती ने भी उसका उत्तर देते हुए कहा था कि इस संबंध में सारा प्रबन्ध पहले ही कर लिया गया है। कहीं यह वही चोल राजकुमार तो नहीं ? इस विचार का उठना था कि कुन्दवि को राजकुमार पर बड़ा क्रोध आया। कितना घमंड है उसे ! कैसा अहंकार भरा है उसमें ! कितना बड़ा विद्रोह करके कैसा अकड़कर बैठा था, जैसे लाज-शर्म और भय नाम की कोई चीज़ है ही नहीं ! नरसिंह पल्लवेन्द्र के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस उसमें कहां से आया ? दूर-दूर देशों के बड़े-बड़े राजा तक नरसिंह चक्रवर्ती की छत्र-छाया में आश्रय पाने के लिए तपस्या करते हैं ! चम्पक द्वीप के निवासियों ने तो आश्रय की प्रार्थना करते हुए दूत तक भेजे थे ! इस अदना-से चोल राजकुमार को क्या हो गया कि विद्रोह करने पर उतारू हो गया ! यदि यह वही विद्रोही राजकुमार है तो पिताजी से कहकर इसे कड़े-से-कड़ा दंड दिलवाना चाहिए, तभी इसकी अक्ल ठिकाने लगेगी !

किन्तु इस विचार के आते ही कुन्दवि का मन फिर डांवाडोल हो उठा। चेहरा देखने से तो ऐसा बुरा नहीं मालूम होता। इसने स्वयं कुछ न किया होगा। शायद किसी दुष्ट ने इसे बहकाकर ऐसा काम करने को प्रोत्साहित किया हो। उन दुष्टों को पकड़वाकर दंड देना चाहिए; न कि इसे। इस सुकुमार युवक को कड़ा दंड देने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होने का। उसके सीने, कंधों और बांहों को जकड़ी लोहे की जंज़ीरें न जाने उसकी फूल-सी देह को कैसी घोर यातना दे रही होंगी। अच्छी सीख और कड़ी चेतावनी देकर उसे छोड़ दें तो कैसा हो ? आज रात को पिताजी से इसके सम्बन्ध में कुछ कहना चाहिए। लेकिन ऐसी कोई बात भी हो सकती है जो उन्हें मालूम न हो ? धर्मराजाधिराज नाम से विख्यात जो हैं वे। न्याय और धर्म से परे जाकर वे कोई काम करेंगे ही नहीं। इस नवयुवक को वे अवश्य क्षमा कर देंगे। इस तरह की विचार-लहरियों में डूबती-उतराती कुन्दवि राजमहल पहुंची। सूरज कब डूबेगा ? पिताजी राज-दरबार से राजमहल को कब लौटेंगे ? इसकी प्रतीक्षा में उसका एक-एक पल एक-एक युग के समान बीत रहा था।

कुन्दवि महल के चौक में बैठी हुई पिता की प्रतीक्षा कर रही थी। शायद उस दिन पूनम के बाद की तीज थी। पूर्व क्षितिज पर पंक्ति बांधे खड़े ताड़ के वृक्षों के बीच कृष्ण पक्ष का थोड़ा घटा हुआ चांद रक्तिम प्रकाश फैलाता हुआ उग रहा था। और कोई दिन होता तो कुन्दवि आकाश के इस सुन्दर सलोने दृश्य पर

मन अर्पित कर देती और सुध-बुध खोकर प्रकृति की शोभा का रस लेने में लीन हो जाती। लेकिन आज उसका मन किसी बात में नहीं लगा। उसके सारे मन में वही राजकुमार व्याप्त था जिसे पल्लव-सैनिक जंजीरों से जकड़े गली में लिये जा रहे थे। उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए वह रोज़ की अपेक्षा अधिक उत्सुकता से अपने पिता की बाट जोहने लगी।

आखिर नरसिंह वर्मा भी आ गए। कुन्दवि उनका स्वागत करने दौड़ी हुई गई और उनके चौड़े लौह-स्कन्धों को अपने नन्हें कोमल-करों से पकड़कर झूलने लगी। फिर मीठे स्वर में पूछा, "क्यों पिताजी, आज इतना विलम्ब क्यों हुआ?"

आज तक नरसिंह वर्मा ने कुन्दवि को इतनी उतावली करते नहीं देखा था, इसलिए उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बोले, "विलम्ब तो कुछ नहीं हुआ, बेटी! रोज़ की तरह ही आया हूं। क्यों, आज कोई नयी खबर है क्या?"

कुन्दवि कुछ कहने ही जा रही थी, लेकिन संभल गई और बोली, "बात तो है पिताजी, लेकिन अभी नहीं बताऊंगी। आप तो राज-दरबार से आ रहे हैं। इसलिए पहले बताइए, कि राज-दरबार में कोई खास बात हुई, कहीं कोई नई घटना घटी?"

"हां, हुई बिटिया! लंका से आज समाचार आया है कि युद्ध में हमारी सेना विजयी हुई है। तुम्हारे भाई ने पूछा है कि लंका का राजा संधि करने को प्रस्तुत है। क्या करें?"

"यह तो बड़ी खुशखबरी है, पिताजी। बताइए, भाई शीघ्र ही स्वदेश लौट आएगा न?"

"नहीं, कुछ दिनों के बाद ही आ सकेगा। मदुरा में तुम्हारे मामा का स्वास्थ्य कुछ दिनों से ठीक नहीं है। इसलिए मैंने कहला भेजा है कि कुछ दिन वहां जाकर रहो। चाहो तो तुम भी कुछ दिनों के लिए मदुरा हो आओ। तुम्हारे मामा तुम्हें देखना चाहते हैं।"

"यह नहीं होगा। मैं आपको यहां अकेला छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। हां, बताइए और कोई बात है?"

"है क्यों नहीं? चोल देश में..."

'चोल देश में' सुनते ही कुन्दवि की देह में फुरफुरी-सी दौड़ गई। चक्रवर्ती ने देखा तो आश्चर्य से पूछा, "बेटी, क्या हो गया तुम्हें?"

"कुछ नहीं, पिताजी! चोल देश में क्या हुआ? बताइये तो!..." कुन्दवि ने कहा।

"चोल देश में काळि नाम के गांव में एक नन्हा-सा बालक दैव-सान्निध्य पाकर महाज्ञानी हो गया है। भगवान् शिवजी पर तमिष् में सुन्दर-सुन्दर पद रचकर अमृत-वर्षा-सी करता है। दुर्दमनीय महारोग तक उसके हाथों से भभूत

लेकर लगाने पर भाग जाते हैं। उस बालक भक्त का नाम है ज्ञान-सम्बन्ध।"

"आज इसके अतिरिक्त और कोई नई ख़बर नहीं है?"

"है क्यों नहीं? एक ख़ास खबर है। जब हम मामल्लपुरम गए थे तब उरैयूर से एक दूत आया था, सो याद है? बात सुनकर तुमने भी कहा था कि उस चोल राजकुमार को कड़े-से-कड़ा दंड देना चाहिए। उसे गिरफ़्तार करके आज यहां ले आए हैं।"

"क्यों, पिताजी! उसे जंजीरों में जकड़कर घोड़े की ज़ीन पर कसे हुए लाए थे न?" कुन्दवि ने उत्साह दिखाते हुए पूछा।

"हां बेटी, पर तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ?" चक्रवर्ती ने भी प्रश्न किया।

"आज दोपहर को मंदिर जाते हुए मैंने रास्ते में देखा था।"

कुन्दवि की उत्सुकता और उत्कंठा का कारण चक्रवर्ती ने समझ लिया। बोले, "शायद वही रहा हो। अच्छा, बेटी! संत कवि अप्पर का एक पद सुनाओ।"

"क्यों, पिताजी! रात को उस राजकुमार को कहां रखेंगे?" कुन्दवि ने चक्रवर्ती की बातों को अनसुनी करके पूछा।

"और कहां रखेंगे? कारागृह में ही रखेंगे।"

"हाय रे दैया!"

"क्या हुआ, बेटी? किसे देखकर इतना डर गई?" पूछते हुए नरसिंह वर्मा झट से उठ खड़े हुए और चारों ओर घूमकर देखने का बहाना करने लगे।

कुन्दवि ने उनके हाथ पकड़कर आसन पर बिठाया और बोली, "कुछ नहीं, पिताजी। कारागृह से वह राजकुमार सबकी आंखों में धूल झोंककर कहीं खिसक गया तो क्या होगा, यही सोचकर डर गई थी।"

"बस इतना ही!" कहकर चक्रवर्ती हल्की हंसी हंसे और बोले, "यह भय वृथा है। पल्लव-राज्य की शासन-धुरी अभी इतनी कमज़ोर नहीं पड़ी है। अगर विक्रम भागने की कोशिश करेगा तो उसी क्षण उस पर पल्लव-सैनिकों के बारह नुकीले बरछे एक साथ पड़ेंगे।"

इन कठोर शब्दों को सुनकर कुन्दवि का शरीर भय से थर-थर कांप उठा। होंठों पर जीभ फेरकर सूखे स्वर में बोली, "पिताजी, मैं एक बात कहूं तो मानेंगे?"

"न मानूंगा तो क्या तुम मुझे यों ही छोड़ दोगी? झख मारकर मुझे माननी ही पड़ेगी!" चक्रवर्ती ने कहा।

"वह राजकुमार देखने में तो ऐसा बुरा नहीं मालूम होता। पिताजी, मेरा तो ख़याल है कि कोई धूर्त उसे बहकाकर आपके विरुद्ध विद्रोह करने को उत्साहित करता होगा।"

"तुम्हारा ख़याल बिलकुल ठीक है, बेटी ! मैंने भी ऐसा ही सुना है। कोई जटाजूट-धारी शिवयोगी उससे और उसकी माता से मिलने बराबर जाया करता है। पता चला है कि उसी वेषधारी के बहकावे में आकर विक्रम ने यह उत्पात मचाया था।"

"देखा, पिताजी ! मैंने जो कहा वह सच निकला न ? हां, तो बताइए उरैयूर में क्या हुआ ? कोई बड़ा युद्ध ठना था क्या ? बहुत-से वीर मारे गए क्या ?"

"बडा या छोटा कोई युद्ध नहीं हुआ। युद्ध क्यों होता भला ? वह नासमझ लड़का स्वयं धोखे में आ गया; और खूब फंसा। मारप्पा भूपति नाम के इसका कोई चाचा है। उसने झूठ-मूठ इसे ललचाया कि मैं बड़ी सेना लेकर तुम्हारी मदद के लिए आ जाऊंगा। पर उस दिन पास भी नहीं फटका। उल्टे हमारे सेनापति अच्युत वर्मा को विक्रम के इरादे की गुप्त ख़बर भेज दी। अतः उस दिन हमारे सैनिक सतर्क हो गए। बाहर से आये कुछ लोगों को नगर की सीमा पर ही घेरकर मज़ा चखा दिया और उन्हें भगा दिया। विक्रम से आ मिलने वालों में एक वृद्ध लोहार था, एक युवक नाविक था, और चार-पांच जने और थे, बस। वृद्ध तो वहीं कटकर गिर गया। बाकी लोग कैद कर लिये गए। केवल विक्रम मेरे आदेशानुसार यहां लाया गया है।"

"हाय, ! बेचारा !"—कुन्दवि ने ठंडी आह भरी।

"तुम किसलिए दुःख कर रही हो, बेटी ? राजद्रोह सफल नहीं हुआ, इसकी तो चिन्ता नहीं है कोई ?"

"नहीं, नहीं ! दुःख तो इस बात का है कि वह बेचारा दूसरों के बहकावे में आकर धोखा खा गया। क्यों पिताजी, आपको इस बात का कैसे पता लग गया था कि यह सब होगा ?"

"बेटी, तुम तो जानती ही हो कि मुझे एक मंत्र-शक्ति प्राप्त है। उसी के सहारे मैंने सारी वस्तु-स्थिति जान ली। हां, तो तुम संत कवि अप्पर का कोई पद मुझे सुनाने वाली हो या नहीं ?"

इस प्रश्न द्वारा चक्रवर्ती ने बात बदलने का प्रयत्न किया।

"पिताजी, मेरा मन कहता है, इस बार आप राजकुकार को माफ़ कर दें तो कैसा हो ?"

"क्या कहा, कुन्दवि ? आख़िर तुमने अपनी स्त्री-बुद्धि दिखा ही दी न ? उस दिन तुमने कहा था कि उसे सख़्त-से-सख़्त दंड देना चाहिए। आज यह क्या कह रही हो ? तभी तो बड़े-बूढ़ों ने यह नियम बना लिया है कि औरतों को शासन का अधिकार नहीं देना चाहिए।"

"ऐसा नियम बनाकर उन्होंने बड़ी ग़लती की है। औरतों को शासन का अधिकार दिया जाता तो संसार में झगड़ा ही न होता। उस राजकुमार से मैं

मिल पाती और चार शब्द बोल पाती तो उसका मन एकदम बदल देती। क्यों पिजाजी, एक बार इस बात की परीक्षा हो जाय कि यह सम्भव है या नहीं ?"

"हो सकता है कि तुम यह काम कर सको। मैंने कब कहा था कि उसका मन बदलने का काम पूरा कर पाना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं है। तुमसे पहले कितनी ही औरतों ने कितने ही बुद्धिमानों को एकदम बुद्धू बना दिया; वैराग्यशील व्यक्तियों को रागशील ही नहीं, पागल भी बना दिया है; वीरों को डरपोक बना दिया है। इसके विपरीत ऐसी स्त्रियां भी हुई हैं जो साधारण मनुष्यों को बुद्धिमान, वैराग्यशील और वीर बनाने में सफल हुई हैं। सच है, स्त्री जाति में यह गुण पूरी तरह विद्यमान हैं। तुम अगर ठान लो तो विक्रम के मन से स्वातंत्रिक-भावना को जड़ से ही उखाड़कर फेंक सकती हो, ऐसी भूल-भुलैयां में डाल सकती हो कि वह यह भी भूल जाय कि स्वतन्त्रता किस चिड़िया का नाम है। लेकिन तुम्हें चाहिए था कि अपनी सामर्थ्य का प्रदर्शन ज़रा पहले करतीं। उसके अपराध करने के पहले ही तुम्हें अपना प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए था, अब कोई लाभ नहीं है। अपराधी को तो अब सज़ा देनी ही होगी। आज विक्रम को यों रिहा कर दें तो कल गांव-गांव में हर कोई विद्रोह करने पर उतारू हो जाएगा। फिर शासन की क्या दशा होगी ?"

इन बातों में उलझकर कुन्दवि कुछ उत्तर न दे पाई और थोड़ी देर अनमनी खड़ी रही। फिर कुछ रुक-रुककर पूछा, "पिताजी, आप उसे क्या दंड देंगे ?"

"अभी नहीं कह सकता, कुन्दवि ! कल धर्मासन पर बैठकर न्याय करते समय जो दंड उचित और न्याय-संगत लगेगा, वही दूंगा। अब तक पल्लव-वंश के इतिहास में यह धब्बा नहीं लगा है कि वह न्याय-विचलित हो गया हो। और मैं तो यही कहता हूं कि भविष्य में भी हमारा वंश न्याय-विचलित न हो।" चक्रवर्ती ने कहा।

ग्यारह

उस रात कुन्दवि को ठीक से नींद नहीं आई। चोल-राजकुमार का शोक-संतप्त गम्भीर मुख बार-बार उसके मानस-पटल पर मंडराता रहा और उसकी नींद भगाता रहा। आधी रात के बाद जब ज़रा आंख लगी भी तो तरह-तरह के भयावह सपने उसे चौंकाते रहे। इसलिए एक प्रकार से उसे रतजगा ही करना पड़ गया।

किसी तरह रात कटी और सुबह हुई। चक्रवर्ती के दरबार जाने का समय भी आ गया। उनसे चोल-राजकुमार के सम्बन्ध में कुछ कहने को कुन्दवि का जी छटपटा रहा था। लेकिन चक्रवर्ती को चारों ओर से परिजनों ने घेर लिया था,

इसलिए वह कुछ कह न सकी। वे विदा लेकर थोड़ी दूर आगे बढ़ गए। कुछ भी न कह पाने के कारण कुन्दवि को लगा कि उसका कलेजा फट जायगा। पर वह इतना ही कह पाई, "पिताजी, मेरी बात याद रहे।"

नरसिंह वर्मा ने उसकी ओर मुड़कर देखा और पूछा, "कौन-सी बात, कुन्दवि ?—ओ हो, चोल-राजकुमार को कड़ा दंड देने की बात जो तुम कह रही थीं, वही न ? हां, अच्छी तरह से याद है।" इतना कहकर चक्रवर्ती बड़ी तेज़ी से वहां से चले गए।

कुन्दवि अकथनीय क्षोभ और आशंका से परेशान हो उठी। पर करती क्या? तीर की तरह अपने शयन-कक्ष में गई और तख़्त पर लेटकर थोड़ी देर फूट-फूटकर रोती रही। उसके मन में यह विचार घर कर गया था कि उसी के कारण चोल-राजकुमार को कड़ा दंड मिलने वाला है। इस बात का राजकुमार को पता लग गया तो वह उससे कितनी घृणा करने लगेगा ? मन में यह ख़याल आते ही उसे अत्यन्त वेदना हुई।

इस सम्बन्ध में अपने से जो भी बन पड़े उसे तुरन्त करने को वह तत्पर हो उठी। उसने तुरन्त ही राज्यगृह के रक्षक अधिकारी को बुलाकर उससे कहा, "उदयवर्मा जी, आज पिताजी दरबार में चोल-राजकुमार के विषय में विचार करेंगे। आप ऐसी व्यवस्था कर दीजिए कि उसकी सारी ख़बर मुझे फ़ौरन मिल जाय। एक क्षण का भी विलम्ब न होने पाय।"

"जैसी आज्ञा" कहकर राज्यगृह के अधिकारी लौटे और सभा से समाचार लाने के लिए विश्वस्त आदमी रवाना कर दिया।

कुन्दवि ने उस दिन नित्य के कामों में से कोई काम नहीं किया। नंदन वन में जाकर फूल नहीं चुने, मन्दिरों में जाकर देवताओं के दर्शन नहीं किये। बेसब्री से बाट जोहती रही कि राज-दरबार से आदमी कब आये, कब आये। आख़िर वह आया और निर्णय की सारी बातें विस्तार से सुनाईं।

उसने कहा, "चक्रवर्ती ने बड़ी करुणा दिखाई। बोले, तुम अब भी मान जाओ और पल्लव-राज्य के अधीन करद राजा बने रहने को तैयार हो जाओ तो मैं तुम्हारे सारे अपराध क्षमा कर दूंगा और चोल-राज्य का अधिपति बनाकर राजतिलक कर दूंगा। पर चोल-राजकुमार ने साफ इंकार कर दिया और चक्रवर्ती को अपने साथ खड्ग-युद्ध के लिए आह्वान किया। तब फिर चक्रवर्ती ने अपना निर्णय सुनाया—'इसकी इस धृष्टता का दंड यद्यपि मृत्यु है, फिर भी इसकी अल्पायु का ख़याल करके इसे काले-पानी की सज़ा दी जाती है। यह चोल देश में प्रवेश करने का प्रयत्न करे तो इसे मौत के घाट उतार दिया जाय।'—साथ ही उन्होंने यह भी आदेश दिया कि इसे तुरन्त जहाज़ पर चढ़ाकर द्वीपांतर को भेज दिया जाय। उनके आदेशानुसार उसे उसी क्षण मामल्लपुरम के बन्दरगाह से

जहाज़ पर चढ़ाने के लिए ले जाया गया है।"

ख़बर सुनकर कुन्दवि को ज़रा-सा दिलासा मिला कि विक्रम को मृत्युदंड तो नहीं दिया गया। लेकिन यह ख़याल करके वह बहुत दुखी हुई कि जहाज़ पर चढ़ाकर उसे दूर देश भेज देंगे, और उसके तो दर्शन ही दुर्लभ हो जायंगे। उसके मन में लालसा जगी कि प्रस्थान के पहले राजकुमार विक्रम को एक बार आंख भरकर देख ले। उसके पूरे मन और मस्तिष्क में यह उत्कंठा व्याप गई और वह सिहर उठी। मन के एक कोने में आशा भी झांक रही थी कि एक बार उससे मिलकर बात कर पाए तो शायद उसका हृदय-परिवर्तन ही कर सके और वह शायद पिता के अधीन करद राजा के रूप में रहने को तैयार हो जाय।

कुन्दवि ने उसी क्षण अपने पिता से मिलना चाहा। लेकिन उसे बताया गया कि विक्रम के विषय में अपना निर्णय सुनाकर चक्रवर्ती घोड़े पर चढ़कर कहीं चले गए और किसी को इस बात का पता नहीं है कि वे कहां गए हैं। उसे बड़ी निराशा हुई। थोड़ी देर तो वह सोच में पड़ी रही। फिर राज्यगृह के अधिकारी को बुलाकर कहा, "उदयवर्मा जी, मुझे अभी मामल्लपुरम जाना है। मेरी मां का रत्न-हार ढूंढे नहीं मिल रहा है। लगता है कि उसे मामल्लपुरम के महल में ही छोड़ आई हैं। उसे लाने के लिए मुझे ही जाना पड़ेगा।"

'चक्रवर्ती के लौटने के बाद जायं तो कोई हर्ज है ?" उदयवर्मा इतना ही कह पाए थे कि कुन्दवि का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा और वह चुप हो गई। कुन्दवि की इच्छा के विरुद्ध आवाज़ उठाने की हिम्मत आज तक किसी की नहीं हुई थी। यद्धपि कुन्दवि का उतावलापन और अकेले ही मामल्लपुरम जाने का हठ दोनों ही उदयवर्मा को आश्चर्य मे डाल रहे थे, फिर भी कुन्दवि की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने उसका सारा प्रबन्ध तुरन्त कर दिया। उसके कुछ ही देर बाद कुन्दवि अपने परिजनों के साथ पालकी पर मामल्लपुरम के लिए रवाना हो गई। आज वह अपनी आदत के विपरीत बार-बार पालकी ढोने वालों को आदेश दे रही थी, "जल्दी चलो, जल्दी चलो !" इधर कुन्दवि मामल्लपुरम पहुंची, उधर जहाज़ पाल उड़ाता हुआ विक्रम को लेकर आगे बढ़ने लगा।

समुद्र-तट से कुन्दवि ने जो दृश्य देखा वह मर्मस्पर्शी था। जहाज़ समुद्र के किनारे चल रहा था, हवा में सिंह-ध्वजा फड़-फड़ करती हुई फहरा रही थी और जहाज़ पर वही युवक खड़ा था जिसे उसने पिछले दिन गली में देखा था। उसके हाथ-पैर आज रस्से से बंधे थे। बंधे हाथों को ऊपर उठाए हाथ जोड़कर प्रार्थना-सी करता खड़ा था वह। उसकी आँखें किनारे की ओर ही लगी थीं। इतनी भक्ति, श्रद्धा और विश्वास के साथ वह किसे देख रहा है, यह जानने के विचार से कुन्दवि ने भी उसी ओर दृष्टि दौड़ाई जिस ओर युवक की आंखें लगी थीं। जटा-जूटधारी, गम्भीर आकृति वाले एक शिवयोगी वहां खड़े थे। वे अपना दाहिना हाथ

उठाकर विक्रम को आशीर्वाद देने की मुद्रा में थे।

कुन्दवि ने फिर विक्रम की ओर देखा। एक क्षण के लिए उस युवक की भी दृष्टि उसकी ओर मुड़ी-सी दिखाई दी। कुन्दवि ने यह निश्चय करने के लिए कि यह सच है कि निरा भ्रम, अपनी आंखें मलीं। पर इतने में ही विक्रम ने मुंह फेर लिया और शिवयोगी की तरफ़ देखने लगा। कुन्दवि को एकाएक एक बात का ख़याल हो आया। कल ही तो उसके पिताजी ने कहा था कि चोल-राजकुमार को बुरी सीख देने और बहकाने वाले एक शिवयोगी ही हैं। कहीं वे दुष्ट संन्यासी यही तो नहीं हैं ? हां, ज़रूर यही होंगे।

उस शिवयोगी को रंगे हाथों पकड़ने के विचार से कुन्दवि ने अपनी पालकी उस ओर बढ़ाने का आदेश दिया। लेकिन दूसरे ही क्षण शिवयोगी बन्दरगाह में काम करते मजदूरों के पीछे जा छिपे और अंतर्धान हो गए। कुन्दवि ने बहुत ढूंढा, पर पता न लगा पाई। इसी बीच विक्रम का जहाज़ भी समुद्र में बहुत आगे बढ़ गया।

बारह

सुवर्ण-सलिल कावेरी के कलकल बहते जल पर एक दिन बालसूर्य की किरणें ऐसी पड़ रही थीं मानो स्वर्ण ही पिघलकर प्रवाह बन गया हो। उस प्रवाह को चीरती और जल के हीरे-मोती जैसे छींटों को बिखेरती पोन्नन की नाव नौका-घाट से निकलकर बसंतमहल की ओर चलने लगी। नाव पर जटा-जूटधारी शिवयोगी विराजमान थे। किनारे पर खड़ी पोन्नन की पत्नी आगे बढ़ती हुई नाव की ओर अपलक निहार रही थी।

नाव पर जाते हुए पोन्नन और शिवयोगी के बीच जो बातें हुईं वे इस प्रकार थीं--

"पोन्नन, युवराज के पक्ष में आख़िर कितने लोग आकर मिले ?" शिवयोगी ने पूछा।

"यह प्रश्न करके उस अपमान की याद क्यों दिलाते हैं, महाराज ! उफ़ ! युवराज ने उस वक्त मुझे महारानी को ख़बर करने की आज्ञा न दी होती तो···"

"तो क्या करते ? पल्लव की विशाल सेना को तुम अकेले ही ध्वस्त कर देते क्या ?"

"अब आप जितना चाहें ताना दे लें, मज़ाक उड़ा लें। यह सब सुनने के लिए मैं ज़िन्दा जो हूं। लेकिन महाराज, मैं अपनी यह जान बचाए क्यों फिरता हूं, जानते हैं ? महारानी की बात रखने के लिए देह का यह व्यर्थ बोझा ढो रहा हूं।"

"दिल पर हाथ रखकर सच-सच बताओ, केवल महारानी की बात रखने के लिए ही कर रहे हो या वल्लि का भी इसमें कुछ हाथ है ?"

"मेरी वल्लि के बारे में ऐसी बातें मुंह पर न लाइए, महाराज ! वह कभी यह गवारा नहीं कर सकती कि मैं कायरों की तरह अपनी जान बचाता फिरूं। वीरभद्र आचार्य की पोती है वह ! उस बूढ़े की बहादुरी का किन शब्दों में वर्णन करूं ?"

"वीरभद्र आचार्य इसमें कहां से टपक पड़े, पोन्नन ?"

"दादाजी तो लड़ने के उद्देश्य से नहीं आए थे। वे दूर खड़े देख रहे थे कि हो क्या रहा है। लेकिन, उस समय युवराज को अनाथों की तरह खड़ा देखकर उन्हें बड़ा जोश आया। हमारा ख़याल था कि युवराज की तरफ़ से लड़ने के लिए हज़ार-दस हज़ार वीर ज़रूर पहुंचेंगे। पर सच पूछिए तो मुझे छोड़कर पांच ही जने और आए थे। वे भी गांवों से आए किसान थे। सहसा चारों ओर से जय-जयकार करते हुए पल्लव-सैनिकों को आते देखा तो एकदम भयभीत हो गए और हाथ का खड्ग नीचे फेंककर थर-थर कांपते खड़े हो गए। यह सारा दृश्य देखकर वीरभद्र आचार्य का खून खौल उठा। सिंह की तरह गरजते हुए पलक मारते वे युवराज के निकट आ पहुंचे और नीचे पड़ी तलवारों में से एक को उठाकर घुमाने लगे। 'जय शूल ! जय त्रिशूल ! जय हो चोल-महाराज विक्रम की !' उनकी यह घोषणा दूर-दूर तक गूंज उठी। इतने में ही पल्लव-सैनिकों ने आकर हमें घेर लिया। तब जो आश्चर्य-चकित कर देने वाली घटना घटी उसका वर्णन कैसे करूं? महाराज, न जाने दादा के हाथों में उस समय वह शक्ति कहां से आई ! लोहार-खाने में हथौड़ा चलाने वाला हाथ था उनका। दाएं-बाएं तलवार घुमाते ऐसे पैंतरे बदलने लगे कि पल्लव सैनिक धप-धप करके धराशायी होने लगे। आठ-दस सैनिकों को यमलोक रवाना करके अन्त में वे स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए। सुना है कि पल्लव सेनापति अच्युत वर्मा यह सारा दृश्य दूर से देख रहे थे। बूढ़े सिंह का शौर्य देखकर वे एक-दम दंग रह गए और यही कारण था कि उन्होंने उस वीर वृद्ध के शव को समस्त राज-सम्मान के साथ दहन करने का आदेश दिया।"

"इसमें अश्चार्य की क्या बात है, पोन्नन ! वल्लि के दादा की वीर मृत्यु की कथा सुनकर तो सांसारिक मोह-छोहों से मुक्त मुझ वैरागी को भी रोमांच हो आया। सब तरह से अवनति की दिशा में पड़ जाने पर भी जिस देश में वीरभद्र जैसे एक ही वीर को सही जन्म देने की सामर्थ्य हो, हमें मानना होगा कि उसमें संजीवनी-शक्ति अब भी शेष है। मुझे अब पूरा विश्वास हो गया कि चोल देश ज़रूर-उन्नति की दशा प्राप्त कर लेगा।" इतना कहकर शिवयोगी थोड़ी देर के लिए मौन हो गए, फिर बोले, "बोलो, फिर क्या हुआ ?"

"फिर क्या हुआ ? युवराज और मैं बूढ़े के शौर्य-पराक्रम को देखकर ऐसे विस्मय में पड़े कि हमें अपनी सुध-बुध ही न रही। उनके गिरते ही हम दोनों हाहाकार करते हुए उनके निकट जा पहुंचे। उसी क्षण अनेक पल्लव सैनिकों ने

युवराज को चारों ओर से घेर लिया। मैं पागल की तरह अपनी तलवार घुमाकर लड़ने लगा। तभी युवराज की आवाज़ आई, 'बस, बंद करो, पोन्नन।' मैंने सिर घुमाकर उस तरफ़ देखा जिधर से आवाज़ आई थी। युवराज को ज़ंजीरों में जकड़ लिया गया था। उन्होंने मुझसे कहा, 'अब लड़ने से कोई लाभ नहीं है, पोन्नन! मेरे लिए तुम एक काम कर दो। यहां जो कुछ हुआ, उसका सारा हाल महारानी के पास जाकर बताना और इस बात का उन्हें विश्वास दिलाना कि मैंने प्रतिज्ञा की है कि चाहे आसमान क्यों न फट पड़े, ऐसा कोई काम नहीं करूंगा जिससे पिता के नाम पर आंच आय।' मुझे बड़ा बुरा लगा और 'महाराज, क्या कहा आपको शत्रुओं के हाथ सौंपकर मैं यहां से चला जाऊं?' कहकर ज़ोर से चीखता हुआ मैं दुश्मनों पर पिल पड़ा। पीछे से मेरे सिर पर एक लाठी पड़ी और मैं बेहोश हो गया। कारागृह में जाकर ही मेरी आंखें खुलीं।"

"अच्छा, तो यह कहो कि तुमने जेल भी काटी है। फिर वहां से कैसे छूट पाए?" शिवयोगी ने उत्सुकता दिखाते हुए पूछा।

"दूसरे ही दिन मुझे रिहा कर दिया गया। कहते हैं कि मामल्ल चक्रवर्ती के पास से आदेश आया था कि युवराज के सिवा और सभी को क्षमा कर दिया जाय।" पोन्नन ने कहा।

तब तक नाव बसंतमहल के पास पहुंच गई थी। नौका-घाट पर महारानी अरुल्मोलि देवी अपनी दासी को साथ लिये खड़ी थीं। पोन्नन ने देखा कि अरुल्मोलि देवी भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े नाव पर बैठे हुए शिवयोगी को देख रही हैं। उसने तुरंत शिवयोगी की तरफ मुंह करके कहा, "महाराज, जाने-अनजाने मैंने कुछ बक दिया हो तो उसे क्षमा करने की कृपा करें।" उसके स्वर में पश्चात्ताप और भक्ति की सच्ची भावना थी। शिवयोगी के नाव से उतरने पर अरुल्मोलि ने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और जब सिर ऊपर उठाया तो उसकी आंखों में आंसू छलक रहे थे।

"महाराज, मेरा विक्रम कहां है?" हृदय का शोक-संतप्त स्वर फूट पड़ा। शिवयोगी भी सिहर उठे। पोन्नन ने अपना मुंह फेर लिया। पेड़ों पर बैठे पक्षी भी उस शोक-संतप्त स्वर को सहन न कर पाए और पंख फड़फड़ाते हुए वहां से उड़ गए।

"अरुल्मोलि, यह कैसा पागलपन है? तुम्हारे पति तुमसे क्या कहकर गए हैं? यही न कि तुम्हें वीर-माता बनना चाहिए? उनके अंतिम शब्दों को क्या तुम भूल गईं? इस तरह कहीं हिम्मत हारी जाती है? आओ चलो, महल में चलकर हम विस्तार से बातें करेंगे।" शिवयोगी ने कहा।

अमराई के बीच में एक पतला-सा रास्ता बसंतमहल को जाता था। उससे होकर सब लोग बसंतमहल में पहुंचे। एक समय यह बसंतमहल हर्ष-आनन्द से गूंजा

करता था, पर अब वह सब कहां? अब तो वह ऐसा नीरव और सूना हो गया है जैसे काटने को दौड़ता हो। राजमहल के दास-दासियों के मुख भी कान्ति खो बैठे हैं और सबके चेहरों पर शोक के ही भाव दिखाई देते हैं।

महल के प्रथम खंड के मंडप में व्याघ्र-चर्म बिछे एक ऊंचे आसान पर शिवयोगी बैठे, अरुल्मोलि नीचे खाली ज़मीन पर बैठ गई।

"अरुल्मोलि, चित्त को चंचल मत होने दो!" शिवयोगी आगे कुछ कहने ही जा रहे थे कि अरुल्मोलि ने उन्हें बोलने न दिया और दुखभरे स्वर में कहने लगीं, "हाय, आप आज यह उपदेश दे रहे हैं कि चित्त को चंचल न होने दो! पर मैंने तो न जाने कब से चित्त को पत्थर बना लिया है। यह मेरा चित्त नहीं, मेरा शरीर चंचल होकर कांप रहा है। बेटे की याद करती हूं तो पेट में जलन होने लगती है, शरीर में चुभन होने लगती है, कलेजा मुंह में आ जाता है। इस दशा में मैं क्या करूं, महाराज?"

"अरुल्मोलि, उस दिन तुम कांची में पल्लव-चक्रवर्ती की न्याय-सभा में होतीं तो फूली न समातीं। तिरुवल्लुवर-रचित तमिल वेद का यह सूत्र[1] है कि पुत्र को जन्म देते समय माता को जितने आनंद का अनुभव होता है उससे कई गुना आनंद तब प्राप्त होता है जब उसे यह सुनाई पड़ता है कि उसका बेटा महान् है, संतों का सिरताज है। तुम्हारे विषय में यह सूत्र क्या कभी असत्य प्रमाणित हो सकता है? असत्य हो तो वह सूत्र कैसा? चक्रवर्ती ने विक्रम को बहुत समझाया, बहुत उपदेश दिया। कहा कि पल्लव राज्य के अधीन करद राजा होकर रहना स्वीकार करो तो मैं तुम्हारे सारे अपराध क्षमा कर दूंगा और तुम्हें चोल देश का राजा बनाकर राजतिलक भी कर दूंगा। किन्तु विक्रम का मन रत्ती-भर भी चंचल न हुआ। अचल की तरह अचल रहा। वह अपनी बात पर अटल बना रहा। इतना ही नहीं, उसने स्वयं चक्रवर्ती को अपने साथ द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारते हुए कहा, 'यदि आप अपने को सच्चा वीर मानते हैं तो आइए, मेरे साथ युद्ध कीजिए, मुझ पर विजय प्राप्त कीजिए और तब मुझसे कर लीजिए।' कहते-कहते उसकी आंखों से चिनगारियां निकलने लगी थीं। अरुल्मोलि, वह अद्भुत दृश्य देखने का सौभाग्य मुझे मिला था, पर तुम्हें नहीं मिल सका।"

यह सारा वृत्तान्त सुनते-सुनते अरुल्मोलि के विस्मय से विस्फारित नेत्रों में आंसू के मेघ ऐसे घुमड़ आए मानो अभी बरस पड़ेंगे। आर्द्र स्वर में बोली, "महाराज, मुझ अभागिनी का यह सौभाग्य कहां? पहले, पति को रणचंडी के मुंह में झोंककर ये प्राण बनाये हुए थी। अब अपने पुत्र को देश-निकाले का दंड दिलवाकर, आंखों से दूर देश को भिजवाने के बाद भी इन पापी प्राणों का बोझ

---

१. ईन्ड्रपोदिल पेरिदुवक्कुम् तन् महनैई चान्ड्रोन् एनक्केट्ट ताम्।

ढो रही हूं। क्यों महाराज, सुनती हूं कि पल्लव-चक्रवर्ती उरैयूर आने वाले हैं, क्या यह सच है? यदि सचमुच वे आये तो उनके पैर पकड़कर प्रार्थना करूंगी कि मुझे भी वहीं भिजवा दीजिए, जहां मेरे विक्रम को भेजा है!"

"क्या कहा, अरुल्मोलि? अपने प्राण-प्रिय पति के दुश्मन के पैरों पड़कर भीख मांगोगी? वीरों के स्वर्ग में निवास करने वाले पार्थिव महाराज को इस बात का पता लगेगा तो वे परमानंदित होंगे न? ज़रा सोचो तो!"

"आप ठीक कहते हैं, न वे आनंदित होंगे, और न मैं ही उनके वैरी से भीख मांगने जा सकती हूं। न जाने, किस आवेश में यह सब बक गई! उन्होंने अपने हृदय में कैसे-कैसे स्वप्न संजोये थे! उनकी हार्दिक इच्छा थी कि कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक व्याघ्र-पताका फहरायें। विधि की विडंबना देखिये कि उनके पुत्र को इस विशाल देश में रहने के लिए चप्पा-भर भूमि भी न प्राप्त हो सकी।"

"पार्थिव महाराज ने अपने दिल में और कोई आशा क्या नहीं पाल रखी थी, महारानी? क्या उन्होंने यह नहीं चाहा था कि समुद्र-पार के देशों में भी चोल-राज्य का प्रसार हो? वे अपने गुप्त चित्र-मंडप में जो चित्र बनाकर छोड़ गए हैं उनका भी तो ख़याल करो।"

"हाय, उनकी इच्छाओं की पूर्ति क्या इसी तरह होनी थी? क्या विक्रम आज समुद्र-पार के देशों में धावा बोलते हुए कब्ज़ा जमाने के लिए गया है? न जाने किस जंगली द्वीप में उसे छोड़ आए हैं और न जाने कैसे जंगलों और पहाड़ों पर वह मारा-मारा फिर रहा होगा! आप अच्छी, मीठी बातों से मुझे क्यों फुसलाना चाहते हैं, महाराज?"

"मैं तुम्हें कभी बहकाऊंगा नहीं, महारानी। तुम्हें फुसलाकर मुझे अपना कौन-सा काम साधना है? मेरा विश्वास है कि तुम्हारे बेटे का कुछ भी अनिष्ट न होगा। विक्रम से पहले देश-निकाले का दंड पाकर क्या कोई वन को नहीं गया? क्या रामचन्द्र जी नहीं गए? पांचों पाण्डव नहीं गए? मेरी राय में, विक्रम समुद्र पार जाकर जो कष्ट भोगेगा वे सब उसके शौर्य-पराक्रम को बढ़ाने में सहायक होंगे। लौटकर जब वह मातृभूमि आयगा..."

"उसे वहीं रहने दीजिए महाराज, वहीं रहने दीजिए। चक्रवर्ती का आदेश है कि मातृभूमि पर कदम रखे तो उसका सिर काट दिया जाय। इसलिए यही बेहतर है कि दृष्टि से परे ही सही, वह जिए और फूले-फले।" अरुल्मोलि ने गिड़गिड़ाते स्वर में कहा।

"लेकिन बिना आये उससे रहा नहीं जा सकता, अरुल्मोलि! एक-न-एक दिन वह लौटकर आयगा ज़रूर। मां और मातृभूमि की ममता उसे यहां खींच लायगी। इसके अलावा इन दोनों से बढ़कर एक और बलवती ममता भी है, जिसका पता अभी तुम्हें नहीं लग पाया है।" शिवयोगी इतना कहकर कुछ रुके।

"आप यह क्या कह रहे हैं, महाराज ?"

"हां, मां की ममता और मातृभूमि के प्रेम, इन दोनों से बढ़कर एक अन्य शक्ति भी काम कर रही है जो उसे अवश्य खींच लायगी। वह रोके नहीं रुकेगा। वह शक्ति है एक युवती सुन्दरी की कजरारी-काली आंखों में छिपी चुम्बक-शक्ति। यद्यपि आज मैं योगी-विरागी बन गया हूं फिर भी पूर्वाश्रम में नारी के प्रेम में पड़कर कितने ही सुख-दुःख भोग चुका हूं। सच मानो, मैं भुक्तभोगी, अपने अनुभव से कह रहा हूं।"

"यह कैसी पहेली बुझा रहे हैं, महाराज ? आपकी बातें तो मेरी समझ में नहीं आतीं। नारी के प्रेम से विक्रम का क्या सम्बन्ध हो सकता है ?" आश्चर्य में डूबकर अरुल्मोलि ने पूछा।

शिवयोगी होंठों पर हल्की-सी मुस्कुराहट लाते हुए बोले, "हर एक मां अपने पुत्र के सम्बन्ध में ऐसा ही सोचा करती है। और जब अन्त में सत्य से साक्षात् होता है तब चौंक उठती है। अरुल्मोलि, कम-से-कम तुम तो पहले से ही समझ-बूझ लो। तुम्हारे पुत्र विक्रम का कांची नगर की गली में एक कन्या से साक्षात् हो गया था। उस समय उसे जंजीरों के ताने-बाने में जकड़कर घोड़े की ज़ीन पर कसकर लिये जा रहे थे। तभी उसने उस कन्या को देखा और कन्या ने उसे देखा। दोनों की आंखें चार हुईं और कन्या ने अपना हृदय उसे समर्पित कर दिया। न किया होता तो शायद इसने चुरा लिया होता ! ये कुछ तो मेरे कानों की सुनी कुछ अटकल से जानी बातें हैं। लेकिन मैंने स्वयं अपनी आंखों एक विचित्र घटना भी देखी। मामल्लपुरम के बंदरगाह से विक्रम को लेकर जहाज़ किनारे-किनारे चल पड़ा था कि वह लड़की जल्दी-जल्दी कांचीपुरम से दौड़ी आई। फिर दोनों की आंखें चार हुईं, मन की मूक भाषा में वार्तालाप भी हुआ। उस लड़की के प्रेम-पगे, स्नेह-भरे विशाल नयनों को विक्रम कभी नहीं भूल सकता। रात-दिन, सोते-जागते, उठते-बैठते हमेशा अपनी आंखों के सामने उस युवती का चन्द्र-वदन तैरता रहेगा। विक्रम चाहे जहां रहे, जो भी काम करे, जैसा भी सुख-दुःख भोगे उस लड़की को नहीं भूलेगा और उसे देखने की लालसा से एक-न-एक दिन मातृभूमि ज़रूर लौटेगा।"

अरुल्मोलि भौंचक्की बैठी थी, अब दीन स्वर में बोली, "हाय, मेरा बचा हुआ ऐश्वर्य मेरे पुत्र का प्रेम ही तो था। उस पर भी क्या अब विपत्ति आ गई ? वह लड़की कौन है, महाराज ?"

"पल्लव-चक्रवर्ती की पुत्री कुन्दवि।"

"ओह ! मेरे पति के परम वैरी की पुत्री है, महाराज ? जी न जाने कैसा हो रहा है, सिर चकरा रहा है···" अरुल्मोलि इतना ही कह पाई थी कि मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ी।

रानी के मूर्छित होते ही दूर पर खड़ी परिचारिकाएं दौड़ी हुई आयीं और उसे घेरकर खड़ी हो गईं। "ठहर जाओ," कहकर शिवयोगी ने उन्हें हटा दिया और अपने हाथ के कमंडलु से जल लेकर रानी के मुंह पर छिड़का। तुरन्त अरुल्मोलि ने आंखें खोलकर शिवयोगी को देखा, मानो मन्त्र-शक्ति से उसकी आंखें खुली हों। फिर धीमे स्वर में पूछा, "महाराज, मुझे क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं हुआ, महारानी। मैं तुम्हारे बेटे के बारे में तुम्हें बता रहा था और मैं कह रहा था कि उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा और वह अवश्य लौट आयगा।" शिवयोगी ने उत्तर दिया।

"हां, अब सब याद आता है। चोल देश का जो बहुत बड़ा शत्रु है, मेरे पति की मृत्यु जिस परम वैरी के क्रूर हाथों हुई है और जिसके कारण मैं आज इस अनाथ दशा को प्राप्त हुई हूं, उस पातकी की बेटी को देखकर मेरा पुत्र क्या दिल खो बैठा है ? विक्रम वास्तव में मेरी कोख से जन्मा बेटा है या···"

"महारानी, तुम्हारे पुत्र को इस बात का पता नहीं है कि वह उस नरसिंह वर्मा की पुत्री है जो तुम्हारे अदम्य क्रोध का शिकार है। वे दोनों एक-दूसरे से ज़रा भी घनिष्ठ नहीं हुए हैं, एक भी शब्द एक-दूसरे से नहीं बोले हैं। बस, दोनों ने एक दूसरे को देखा-भर है। तुम यह सोचकर खिन्न मत हो कि दोनों की सगाई हो गई है।"

"अच्छा हुआ कि आपने मेरे मन से बोझ उतार दिया। मुझे तो यह शंका हो गई थी कि कहीं यह भी उस पल्लव-चक्रवर्ती का षड्यन्त्र तो नहीं है ? महाराज, मेरा विक्रम दूर देश में ही सही, जीवित रहे। भले ही भूख मिटाने को उसे भोजन न मिले, प्यास बुझाने को पानी न मिले, कितने ही कष्ट भोगे, पर यहां लौट आने का नाम न ले। हमारे परम वैरी की बेटी के माया-जाल में न फंस जाय, इतना ही चाहती हूं मैं।"

"अरुल्मोलि, तुमने उस लड़की कुन्दवि को देखा नहीं है। इसीलिए ऐसी घृणा-भरी बातें मुंह पर लाती हो। एक बार देख लो तो···"

"तो क्या आपने देखा है, महाराज ?"

"देखा ही नहीं, निकट रहकर उसके गुणों को भी जाना है। मुझ पर कुन्दवि को बड़ा विश्वास और भक्ति है। महारानी, शिव-ध्यान और ज्ञान में आनन्द की अनुभूति प्राप्त करने वाले मुझमें इस संसार की किसी भी वस्तु पर आसक्ति शेष नहीं है। किन्तु उस बालिका के प्रति तो वात्सल्य का स्रोत फूट पड़ता है, जो रोके नहीं रुकता। उसके साथ थोडा भी परिचय तुम्हारा हो जाय तो उस पर तुम्हारे वात्सल्य की भी वर्षा होने लगे।"

"नहीं, मैं किसी को नहीं देखना चाहती और न किसी से परिचय बढ़ाना चाहती हूं। मैं तो उस सुदिन और सुघड़ी की प्रतीक्षा में हूं जब इस संसार को

छोड़कर अपने पति से जा मिलूंगी।"

"अरुल्मोलि, एक बार तुमने मुझसे वर मांगा था और अपने वादे के अनुसार मैंने तुम्हारे पुत्र के प्राणों की रक्षा की थी तथा तुम्हारे मरणासन्न पति को जो वचन दिया था, उसका भी पालन किया। यह सच है कि नहीं ?"

"हां सच है।"

"उसके बदले में अब मैं तुमसे एक वरदान चाहता हूं। तुम्हें इन्कार नहीं करना चाहिए, मेरी प्रार्थना मान लेनी चाहिए।"

"शिव ! शिव !" कहती हुई अरुल्मोलि हाथ जोड़े उठ खड़ी हुई और बोली, "महाराज, मुझे व्यर्थ कांटों में न घसीटिए और अपचारों का शिकार न बनाइए। क्या यह उचित है कि आप मुझ दासी से वर मांगें ? आज्ञा दीजिए, महाराज !"

"अच्छा, आज्ञा ही देता हूं। मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए या उल्लंघन ?"

"उल्लंघन ? कभी नहीं, महाराज, कभी नहीं।"

"तो बताता हूं, सुनो ! एक-न-एक दिन चक्रवर्ती की पुत्री कुन्दवि तुम्हारे यहां जरूर आएगी। वह मातृहीन कन्या है। मां का प्रेमाश्रय न पाने से उसका मन सूख-सा गया है। यही कारण है अरुल्मोलि, कि मेरे दिल में भी उसके प्रति इतनी ममता हो गई है। वह बालिका जब तुम्हारे पास आए तो उसे ठुकराना मत। अपनी पुत्री मानकर वैसा ही स्नेह करना। तुम्हारे हृदय के घाव भरने में भी तुम्हारा वह आचरण मरहम का काम देगा।"

शिवयोगी के करुण-भरे कंठ से ये हृदय-स्पर्शी बातें सुनकर अरुल्मोलि का दिल पिघल गया। बोली, "मैं आपकी आज्ञा सिर-आंखों लूंगी, महाराज ! किन्तु अपने कुल के शत्रु जन्म-वैरी की पुत्री से स्नेह कैसे करूं, यही मेरी समझ में नहीं आता।"

"अनिष्ट चाहने वाला और करने वाला तो पिता है, उसके दुष्कर्मों के लिए पुत्री से घृणा करना कहां का न्याय है, महारानी ? तीरंदाज़ को छोड़कर तीर को दोष देना क्या उचित है ? इस प्रसंग में एक बात और बता दूं। तुम्हारे बेटे की जीवन-रक्षा के विषय में कुन्दवि ने मेरी बड़ी सहायता की। वास्तव में तो वह इस काम में मेरे दाहिने हाथ के समान रही। विक्रम को मृत्यु-दंड से बचाने के लिए उसने कैसे-कैसे प्रयत्न किए, जानती हो ? जो आज तक अपने पिता को प्रत्युत्तर देना नहीं जानती थी, वही तुम्हारे पुत्र विक्रम की ख़ातिर चक्रवर्ती से इतनी लड़ी-झगड़ी कि क्या कहूं..."

"ऐसी बात है, साधु महाराज ? मेरे जी में आता है कि उस बालिका को एक बार आंख भरकर देखूं। पर वह इस अभागिनी को खोजती हुई आयगी ही क्यों ?"

"नहीं महारानी, नहीं ! अपने मुंह से अपने को हीन क्यों बनाती हो ? तुम

अभागिनी नहीं हो। विक्रम-जैसे वीर पुत्र को जन्म देने वाली माता को कोई किस मुंह से अभागिनी कहेगा? कुन्दवि तुम्हें खोजती हुई आयगी और शीघ्र ही आयगी। मुझे इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।" शिवयोगी ने दृढ़तापूर्ण स्वर में कहा।

तेरह

युवराज विक्रम को लेकर जो जहाज़ चला था वह शीघ्र ही तीव्र गति से पूरब की ओर बहने लगा। थोड़ी ही देर में मामल्लपुरम का समुद्र-तट, उसके मंदिर और गोपुर, पेड़-पौधे, सब आंखों से ओझल हो गए। किनारे पर छोटी-छोटी लहरें जो दुग्ध-धवल फेन उगलती-ललकारती हुई उठती-गिरती खेल रही थीं वे भी दृष्टि के परे हो गईं। समुद्र का जल अब गाढ़े नीले रंग का हो चला था। उस नीले जल की बड़ी-बड़ी तरंगों में जो ज्वार-भाटा उठता था वह कभी पर्वत खड़े करता, कभी खाई खोद देता और कभी-कभी उस पर्वत-खाई के बीच फैलकर लम्बी आह-सी छोड़ता प्रतीत होता था। ये तरंगें कहीं विक्रम के तन-मन की बाहरी-भीतरी दशा तो चित्रित नहीं कर रही थीं?

विक्रम थोड़ी देर जहाज़ पर इधर-उधर घूमता रहा। मल्लाहों से कुछ बात-चीत करने का प्रयत्न किया, पर निष्फल रहा। उसके साथ सबने ऐसा बर्ताव किया मानो सब गूंगे हों। निराश होकर विक्रम जहाज़ के ऊपरी तल्ले पर आकर एक कोने में खड़ा हो गया और आकाश तथा समुद्र की तरफ देखता हुआ कुछ सोचने लगा।

सबसे पहले उसे अपनी माता अरुल्मोलि का ध्यान आया। इस समय वे क्या करती होंगी? क्या सोचती होंगी? उसके प्रयत्नों के विफल हो जाने से क्या बहुत निराश हुई होंगी? पल्लव चक्रवर्ती के सामने बिना सिर झुकाए सीना तानकर उसने जो उत्तर दिए थे, उन्हें सुनकर क्या गर्व अनुभव किया होगा? या उसके वियोग से पीड़ित होकर दुःख-सागर में डूबी होंगी? जो भी हो, उन्हें सांत्वना देने के लिए शिवयोगी तो अवश्य ही गए होंगे!

अब उसे शिवयोगी की याद हो आई। जहाज़ रवाना होकर किनारे से छूटा ही था कि शिवयोगी कहीं से आ पहुंचे थे और अपना हाथ हिलाकर उसे आशीर्वाद देने लगे थे—उनका उस पर कितना स्नेह है!

शिवयोगी की बात सोचते-सोचते विक्रम के मानस-पटल पर एक दूसरी सूरत आई। वह सूरत एक सुन्दर युवती की थी। पिछले दिन जो कांचीपुरम की गली में दिखाई दी थी, वही मामल्लपुरम के समुद्र-तट पर भी दीख पड़ी थी। वह वहां क्यों आई थी! वह कौन होगी? उसकी हिरन-सी आंखें कितनी विशाल थीं? उन आंखों में आंसू क्यों छलक आए थे? उनका क्या कारण हो सकता है? हो सकता

है कि मेरी दशा पर उसे दया हो आई हो। पर एक अनजान युवती, समझ में नहीं आता, मुझ पर दया करे तो क्यों करे ! दया न उमड़ी होती तो वैसे करुणा- भरे नेत्रों से वह मुझे क्यों देखती ?

इस प्रकार बहुत देर तक विक्रम उसी युवती के ध्यान में डूबा रहा। उसे इस बात का भान भी न हुआ कि सूरज डूब गया है और चारों ओर अंधेरा छा गया है। संयोग से उसकी दृष्टि समुद्र-तट पर पड़ी तो उसने देखा, पानी में नक्षत्रों का प्रतिबिम्ब झिलमिला रहा है। एक अपरिचित लड़की की बात वह इतनी देर तक सोचता रहा—इसका विचार करके वह कुछ लज्जित-सा हुआ। फिर अपना मन हटाकर पोन्नन और वल्लि के बारे में सोचने लगा। वे दोनों उसे कितना चाहते हैं ! उसके प्रति कितना प्रेम है उन्हें ! इस समय वे शायद उसी की बात करते हों, या सम्भव है कि वल्लि के दादा की चर्चा चलती हो। वह बूढ़ा वीर कितना साहसी निकला ! चोल देश के सभी पुरुष उस जैसे शूर-वीर बन जाय तो कितना अच्छा हो !

अंधेरा होने के एक पहर बाद नीले समुद्र पर चांदनी छिटकाता हुआ चांद पूर्व आकाश में उग आया। पूर्णिमा का चांद न था, पर क़रीब-क़रीब पूरा गोल था। देखने में ऐसा लगता था कि चांदी का एक कटोरा समुद्र तल से ऊपर उठ आया हो। कौन जाने, पहले जब क्षीर सागर का मन्थन हुआ था तो चन्द्र रूपी इसी चांदी के कटोरे में अमृत लाया गया हो। आज भी उसी चन्द्र-कटोरे में से चांदनी रूपी अमृत उमड़कर भुवन-भर में फैलता-सा दिखाई दिया।

विक्रम इस मोहक दृश्य को देखता ही रह गया। समुद्र से उठते हुए चांद को देखकर उसे दुबारा उस सुन्दरी के मुख का ध्यान हो आया। उदित होते हुए चांद के दमकते रंग और उस युवती के लावण्य में कैसा साम्य था ! कितना सुन्दर है वह मुख ! उसकी शोभा श्यामवर्ण केश-राशि से घिरी हुई कैसी निखर उठी थी ! निश्चय ही वह सौन्दर्य अनुपम था। चित्रों और शिल्प की कला-कृतियों में भी ऐसे दिव्य सौन्दर्य का दर्शन दुर्लभ है। कौन होगी वह ?

बारह दिन शीघ्र ही बीत गए। बराबर कुन्दवि की याद में डूबे रहने के कारण विक्रम को पता भी न चला कि दिन कैसे गुज़र गए। तेरहवें दिन भोर होने पर जहाज़ का नायक उसके पास आया और बोला, "युवराज, यह जो द्वीप दिखाई देता है, इसी के निकट आपको उतार देने की हमें आज्ञा मिली है। आप तैरना जानते हैं न ?"

"हां, किनारे से कितनी दूर पर छोड़ेंगे ?"

"बहुत दूर नहीं। सहारे के लिए एक काठ का टुकड़ा भी पानी में डाल देंगे।"

"और अगर मैं उतरने से इन्कार करूं तो क्या करेंगे ?"

"काठ के टुकड़े पर कसकर पानी में बहा देने का हुक्म हुआ है। इन दोनों में

से किसे चुनते हैं आप ?"

"मैं स्वयं उतर जाऊंगा, आपको कष्ट नहीं दूंगा।" विक्रम ने कहा।

जहाज़ किनारे के और निकट गया तो विक्रम को पानी में उतार कर सहारे के लिए काठ का एक टुकड़ा डाल दिया गया। विक्रम उसके सहारे कुछ देर तैरता, कुछ देर उस पर बैठकर बहता हुआ किनारे को लक्ष्य करके चला। ज्यों-ज्यों वह किनारे के निकट पहुंचता गया त्यों-ही-त्यों उसे स्पष्ट दीखता गया कि जहाज़ पर से जो दल चींटियों का दल-सा दीखता था, वह वास्तव में मनुष्यों का समूह है।

'यह कैसा विचित्र द्वीप है ! यहां चोल देश के तमिष् भाषा-भाषियों की जय-घोषणा क्यों सुनाई देती है ? यहां लोगों की इतनी भीड़ क्यों लगी है ?' इस तरह के विचार विक्रम के हृदय-सागर में डूबने-उतराने लगे। उसका दिल धड़कने लगा, शरीर कांपने लगा। काठ का टुकड़ा हाथ से छूट गया। उसका सिर चकराने लगा और आंखों के आगे अंधेरा छा गया। ठीक उसी समय एक बड़ी लहर उठी और ज़ोर से उससे टकराई। विक्रम को ऐसा लगा कि समुद्र का सारा पानी एकत्रित होकर उसे धक्का दे रहा है। उसका दम घुटने लगा और उसने सोचा कि जीवन की अन्तिम घड़ी आ गई है। उसे अपने पिता पार्थिव महाराज को दिया हुआ वचन याद हो आया, माता अरुल्मोलि देवी का करुणा और स्नेह-भरा मुख, शिवयोगी की गम्भीर आकृति तथा विशाल नयनों वाली उस सुन्दरी का चन्द्र-मुख, सब एक-एक करके उसकी आंखों के सामने कौंध गए। उसके बाद उसकी चेतना पर एक घनीभूत अंधकार पर्दा बनकर छा गया।

चेतना आने पर विक्रम को लगा कि वह रेतीली भूमि पर लेटा हुआ है। उसकी आंखें बन्द ही रहीं और शोर मचाती लहरों की आवाज़ कानों में पड़ती रही। किसी की उंगलियों के स्पर्श से उसने अनुभव किया कि कोई उसके माथे पर लेप लगा रहा है। धीरे-धीरे उसने अपनी आंखें खोलीं। लोगों की भारी भीड़ उसे घेरे खड़ी थी। उसे सारी बातें याद हो आईं। वह काठ के सहारे किनारे की ओर बढ़ रहा था और जनसमूह के बीच से जयघोष और बाजे-गाजे की ध्वनि आ रही थी—पर अब वह सुनाई नहीं दे रही थी। इसके विपरीत एक असाधारण सन्नाटा छाया हुआ था। इतने में थोड़ी दूर पर आम के किसी बगीचे से कोयल कूक उठी। उसकी कूक ने यहां पर छाई निस्तब्धता को मानो और भी बढ़ा दिया। किनारे के निकट आते समय विक्रम पर जो विपत्ति आई थी, उसी के कारण तो चिन्तित होकर लोग खड़े हैं—इस बात का अनुमान करते ही विक्रम ने बड़े प्रयास से अपने शरीर को झटका दिया और उठकर खड़ा हो गया। बस फिर क्या था ! लोगों के आनन्द की कोई सीमा न रही। मांगलिक वाद्यों से होड़ लगाते हुए लोगों के कंठों से जय-जयकार के शब्द आसमान में गूंज उठे।

विक्रम के पास चिन्तित अवस्था में जो वृद्ध पुरुष खड़े थे, वे अपनी आवाज़

इस शोर से ऊपर उठाकर बोल उठे, "हटो, हटो ! गजराज को आने दो !" ये वृद्ध पुरुष वही थे, जिन्होंने मामल्लपुरम में कला-प्रदर्शनी के दिन चम्पक द्वीप के निवासियों की ओर से चक्रवर्ती के सामने एक निवेदन प्रस्तुत किया था।

उनकी आवाज़ सुनकर चारों ओर से घेरे खड़े लोगों ने जल्दी से हटकर रास्ता दिया। थोड़ी दूर पर शाही हाथी की तरह सजा हुआ एक हाथी खड़ा था। लगता था कि नगर-प्रवेश के जुलूस के लिए हाथी को इतना सजाया गया है। उसकी ऊपर उठी सूंड में एक सुन्दर पुष्पहार था। विक्रम हाथी की ओर देखता हुआ निश्चल खड़ा रहा, मानो किसी शक्ति ने उसे मंत्रमुग्ध कर दिया हो। जब हाथी उसके निकट आया, तब विक्रम का सिर आप-ही-आप उसके सामने कुछ झुक गया। हाथी ने सूंड में लिया हुआ पुष्पहार विक्रम के गले में पहना दिया। तब उस जनसमूह ने जो हर्षध्वनि की उसका वर्णन करना असम्भव है। 'जय शूल ! जय त्रिशूल !' आदि नारों के साथ 'विक्रम चोल महाराज की जय हो,' 'चम्पक द्वीप के राजाधिराज की जय हो' आदि जय-ध्वनियां सुनकर विक्रम के मन में आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उसके मन में इन अद्‌भुत बातों के सम्बन्ध में किसी से पूछ-ताछ करने की उत्कंठा हुई। किन्तु उसे बहुत चाहने पर भी उस समय पास खड़े लोगों से बात करने का अवकाश नहीं मिला।

अपार हर्ष-ध्वनि और जय-जयकार के साथ विक्रम को लोगों ने बड़े आदर से हाथी की पीठ पर सजी अम्बारी पर बिठा दिया। हाथी मन्द गति से नगर की ओर चलने लगा और सारी भीड़ जय-जयकार करती हुई पीछे-पीछे चलने लगी। हाथी पर बैठे विक्रम के मन में यही विचार उठता रहा कि यह तो सत्य नहीं हो सकता। मैं सपना ही देख रहा हूंगा। नहीं तो यह कोई तन्त्र-जाल होगा।

आस-पास के आम्रवन, नारियल के वन, खेत, नदी और नाले आदि देखकर उसे चोल देश के ही दृश्य याद आ रहे थे। थोड़ी दूर जाने पर एक छोटा-सा गांव दीखा। वह भी चोल देश का ही गांव लगता था। गांव के पूरे सीमांत में ग्राम-देवता का जो मन्दिर था वह तमिष़ देश के मन्दिरों के ही समान था।

और थोड़ी दूर जाने पर एक नगर दिखाई दिया। वहां के मकान, गलियां, सड़कें, चौक आदि उरैयूर के ही ढंग के बने थे। लेकिन यह नगर उरैयूर जितना बड़ा नहीं था। आबादी भी उतनी घनी नहीं थी। महल, मन्दिर और गोपुर संख्या में उतने नहीं थे जितने उरैयूर में। उस नगर की सड़कों पर, अपने-अपने घर के द्वारों पर जो स्त्री-पुरुष और बच्चे खड़े थे, वे बढ़िया कपड़ों और आभूषणों से अलंकृत थे। उनके चेहरे प्रसन्न थे। देखने में वे लोग तमिष़ प्रदेश के लोगों-जैसे ही लगे। आनन्द और उत्साह से विक्रम की ओर देखते हुए वे तरह-तरह की बधाइयों और जयकारों से अपना हर्ष प्रकट करने लगे।

विक्रम के मन में सहसा संदेह हुआ। कहीं यह सब उस पल्लव चक्रवर्ती का

कपट तो नहीं है ? जो जहाज़ उसे यहां लाया था वह कहीं यह बहाना करके कि हम अनेक दिनों का रास्ता तय कर चुके हैं, झूठ-मूठ इधर-उधर चक्कर काटकर उसे चोल देश में ही तो नहीं उतारकर चला गया ? यह जयघोष, यह हर्षनाद, नगर प्रवेश का यह जुलूस—ये सब मुझे छलने के लिए और पल्लव चक्रवर्ती के सामने हार मान लेने के लिए किए गए षड्यंत्र तो नहीं हैं ? इन विचारों ने आग में घी का काम करके विक्रम की क्रोधाग्नि भड़का दी।

इतने में हाथी उस नगर के सबसे बड़े प्रासाद के सामने जा खड़ा हुआ। विक्रम को हाथी पर से उतारा गया। भीड़ बाहर ही रुक गई। केवल वृद्ध पुरुष विक्रम को साथ लेकर महल में प्रविष्ट हुए।

"महाराज, इसी राजभवन में चिरकाल से चम्पक देश की राज-परम्परा रही है। इस देश की प्रजा की प्रार्थना है कि आप भी इसी में निवास करके इसी की शोभा बढ़ाएं !" वृद्ध पुरुष ने कहा।

"इस देश का आपने क्या नाम बताया ?"

"चम्पक देश, महाराज !"

"इस नगर का क्या नाम है ?"

"चम्पक देश की राजधानी है यह, इसका नाम है कुमारपुरी।"

"कुमारपुरी ही है न ? मायापुरी तो नहीं ? "

"नहीं, महाराज ! कुमारपुरी ही है।"

"आप कौन हैं, यह बताने की कृपा करेंगे ?"

"मेरा नाम है सिद्धार्थ। मैं स्वर्गीय महाराज विष्णुवर्मन का प्रधानमन्त्री रहा हूं। आप चाहें···"

"क्या कहा ? मन्त्री या मन्त्रवादी ?"

"मन्त्री, महाराज !"

"मैंने सोचा कि आप कहीं जादू-टोना जानने वाले मन्त्रवादी न हों। पर हां, आप मन्त्रवादी या जादूगर नहीं हैं तो आपको यह कैसे मालूम हुआ कि मैं कौन हूं और मुझे आज सवेरे इस द्वीप के निकट लाकर उतार दिया जायगा ?"

"यह तो बड़ी लम्बी कहानी है, महाराज ! अवकाश मिलने पर सब कुछ बताऊंगा। अभी तो···"

"इस समय इतना ही बता देते तो पर्याप्त होता कि यह वास्तव में राजमहल है या कारागृह ?"

"आप भी कैसी बातें करते हैं, महाराज ! कारागृह ? सच मानिए इस देश में कारागृह नाम की कोई चीज़ है ही नहीं। कारागृह, राजद्रोह, राजदण्ड, ये सब भरतखंड में ही हैं, यहां नहीं।"

"ओहो, यह बात है ! क्या आप इतना बता सकते हैं कि भरतखंड और इस

देश के बीच कितने दिनों का रास्ता है ?''

"आम तौर पर तो बारह दिन लगते हैं। आंधी-तूफ़ान की बाधा उत्पन्न हो जाय तो संभव है कुछ दिन अधिक लग जायं।"

"सच कहते हैं ?"

"हां महाराज, सच कहता हूं। सच छोड़कर इस बूढ़े को और कुछ बोलना आता ही नहीं।"

"तमिष़ देश से यहां पहुंचने में जब बारह दिन लगते हैं तो इतनी दूर रहते हुए आप लोग तमिष़ कैसे बोल पाते हैं ?"

"महाराज, इस चंपक द्वीप में ही नहीं, पूर्व की ओर और भी दूर-दूर के द्वीपों में तमिष़नाडु के लोग रहते हैं और तमिष़ भाषा बोलते हैं। आपके पूर्वज करिकाल चोल के समय में चोल देश से आकर तमिष़ लोग इन संपन्न द्वीपों में बस गए थे। करिकाल चोल के कुमार ने ही इस नगर को बसाया था। यही कारण है कि इस नगर का नाम कुमारपुरी पड़ा। उस समय एक चोल सेनापति ने चोल महाराज से राजमुद्रा लेकर इस देश पर शासन किया। उनके वंशज दस वर्ष पूर्व तक इस देश के राजा रहते आए थे। उस वंश के अन्तिम राजा थे विष्णुवर्धन। वे निस्संतान मर गए। तब से इस देश का कोई राजा न रहा। इसलिए आस-पास के द्वीपों में रहने वालों की हिम्मत बढ़ गई और वे बार-बार इस देश के गांवों और नगरों में लूट-मार मचाने लगे। विभिन्न भाषा-भाषी, असभ्य, जंगली, चपटी नाक और चपटे मुंह वाले, अनेक जातियों के लोग इस देश के आस-पास के देशों में रहते हैं। उनकी अराजकता के विरुद्ध लड़ने और उन पर विजय पाने की शक्ति हममें नहीं है। हमारा नेतृत्व करने और मार्गदर्शन करने के लिए किसी योग्य शासक का न होना ही इसका कारण है। ऐसे संकट के अवसर पर भगवान् कार्तिकेय ने हम पर दया करके आप जैसे चोल-कुल के दीपक को हमारे यहां भेजा है। इसे हम अपना अहोभाग्य मानते हैं।'' वृद्ध सिद्धार्थ ने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी।

चौदह

कांची नगर में राजमहल की छत पर चक्रवर्ती और कुन्दवि बैठे थे। कृष्ण पक्ष की रात का प्रथम प्रहर था। आसमान में तारे चमक रहे थे। पूर्व में बहुत दूर पर मामल्लपुरम के समुद्र-तटवर्ती आलोक-स्तम्भ से जो प्रकाश आ रहा था, वह भी उन नक्षत्रों से होड़ लगाता हुआ उन-जैसा ही चमक रहा था।

चक्रवर्ती ने कुन्दवि को देखकर पूछा, "बेटा, तुम्हारे शरीर को क्या हो गया है, तुम इतनी अलसाई-सी क्यों दीखती हो ?"

"शरीर को कुछ नहीं हुआ पिताजी, मन ठीक नहीं है।"

"यह मन बड़ा दुष्ट होता है, बेटी ! ज्ञानी लोग कह गए हैं कि यह मन मतवाले हाथी की तरह होता है, इसे बुद्धि रूपी अंकुश से वश में रखना चाहिए।"

"पिताजी !"

"क्यों बेटी ?"

"पिताजी, मैं जैन या बौद्ध धर्म की दीक्षा लेना चाहती हूं।"

"अरे, यह क्यों बेटी ? हमारे शैव-वैष्णव धर्मों का ऐसा कौन-सा दुर्भाग्य है कि तुम इस निश्चय पर पहुंच गईं ?"

"मुझे जीवन से घृणा हो गई है। सोचती हूं, संसार में जन्म ही क्यों लिया ?"

यह सुनकर चक्रवर्ती ज़ोर से हंस पड़े। कुन्दवि ने अरुचि से मुंह फेर लिया। उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए चक्रवर्ती ने पूछा, "जानती हो कुन्दवि, मैं क्यों इतनी ज़ोर से हंसा ?"

"यही तो सोच रही हूं। आप तो अकारण हंस रहे हैं ! कहीं आप पागल तो नहीं हो गए ?"

"नहीं बेटी, नहीं। मैं पागल-वागल कुछ नहीं हुआ। मेरे हंसने का कारण और है। कभी तुम्हारी तरह मुझे भी यह संसार अरुचिकर लगने लगा था। जीवन नीम-सा कड़वा प्रतीत होता था। कारण क्या था, मालूम है ?"

"आपकी बेटी के रूप में शायद मेरा जन्म लेना ही रहा हो।"

चक्रवर्ती ने मुस्कराते हुए कहा, "नहीं बेटी, नहीं। सच पूछो तो तुम्हारे जन्म के बाद यह संसार मुझे फिर रुचने लगा। इससे पहले कुछ दिनों के लिए सांसारिक जीवन से मुझे घृणा हो गई थी। उसका कारण यह था कि मुझे अपने पिता पर बड़ा क्रोध आया था।"

कुन्दवि के मुख पर बलात् मुस्कान की रेखा खिंच गई। देखकर नरसिंह वर्मा ने पूछा, "जीवन से घृणा हो जाने का तुम्हारा भी कारण कुछ ऐसा ही तो नहीं है ? क्यों, तुम्हें मुझ पर बहुत ज़्यादा क्रोध है ? है न मेरी बात सच्ची ?"

कुन्दवि ने आंखों की कोर के आंसू पोंछ लिये और सिर झुकाए हुए बोली, "पिताजी, आप पर मुझे क्या क्रोध हो सकता है ? मुझे तो इसी बात का दुःख है कि आपके धर्म-शासित राज्य में ऐसी अनीति हो गई !"

"बस, इतना ही ! इसके लिए तुम इतनी चिन्ता क्यों करती हो ? यदि अन्याय और अनीति करने की शक्ति मुझमें है तो उसे दूर करने की शक्ति भी होनी चाहिए, मानती हो कि नहीं ! मुझे कभी इस बात का पता हो जाय कि मुझसे कोई अनीति हुई है तो तुरन्त उसका परिहार करूंगा, तभी दम लूंगा। समझीं ?" चक्रवर्ती ने कहा।

"सच, पिताजी ? उन कामों में चोल-राजकुमार का कोई हाथ नहीं है, इसका

स्पष्टीकरण हो जाय तो आप दंड बदल देंगे न ?"

"अवश्य, बेटी।"

सुनकर कुन्दवि ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि किसी तरह उस कपट-वेषधारी शिवयोगी का पता लगाकर उनकी दाढ़ी खींचकर चक्रवर्ती के सामने लाकर खड़ा न किया तो मेरा नाम कुन्दवि नहीं।

"कुन्दवि, कौन-सा किला जीतने की सोच रही हो ? मैं चन्द दिनों में उरैयूर जाने वाला हूं। क्यों, तुम भी मेरे साथ चलोगी ?"—चक्रवर्ती ने पूछा।

"चलूंगी, पिताजी, वहां मुझे एक काम है। उसमें आप रोड़ा न अटकाइएगा।"

"इतना तो बताओ कि वह काम है कौन-सा ? या उसे गुप्त ही रखना चाहती हो।"

"गुप्त रखने की कोई बात नहीं, पिताजी ! मैं महारानी अरुल्मोलि से मिलना चाहती हूं।"

"मिलो, मुझे कोई आपत्ति नहीं। पर अरुल्मोलि महारानी तुमसे मिलने को राजी हो तब तो···!"

"मुझसे मिलने में उन्हें कौन-सी आपत्ति हो सकती है? वे इन्कार क्यों करेंगी ?"

"उनके पुत्र को जिसने देश निकाले का दंड दिया है उसकी पुत्री हो तुम। इसलिए तुम पर भी क्रोध हो आना स्वाभाविक है।"

"वाह रे क्रोध ! मैंने उनका क्या बिगाड़ा है कि मुझ पर गुस्सा उतारें ? मैंने इनके पुत्र को न तो बुरी सीख दी और न बहका-फुसलाकर चक्रवर्ती के विरुद्ध विद्रोह करने को प्रोत्साहित किया। मुझ निर्दोष पर क्रोध करके उन्हें क्या मिलेगा ?" कुन्दवि ने पूछा।

सुनकर चक्रवर्ती ने भी मन में सोचा कि स्त्रियों से तर्क की चेष्टा करें तो उससे कुछ होने-जाने का नहीं। व्यर्थ प्रयत्न करने से क्या लाभ ?

पन्द्रह

पिछले तीन दिन से पोन्नन की कुटिया में जाने क्यों आंधी-तूफ़ान का ज़ोर था, बिजली की कड़क थी !

"हज़ार बार कह दिया कि मैंने ग़लती की। कान पकड़ता हूं कि आगे कभी ऐसा नहीं करूंगा। बार-बार वही बात दुहराकर मेरा मज़ाक क्यों उड़ाती हो !" पोन्नन ने पूछा।

"अब कान पकड़ने से और ग़लती स्वीकार करने से क्या फ़ायदा ? यह अक्ल

तब कहां चली गई थी ?" वल्लि ने पूछा।

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। भागते को क्यों भगाती हो ? वल्लि, वे चक्रवर्ती भी कहीं भाग नहीं गए हैं और मेरा बरछा भी बेकार नहीं हुआ है।"

"हूं ! तुम्हारे इस हाथ में बरछा पकड़ने का बूता भी है ? क्यों बेकार डींग मारते हो ? कहीं अरहर की टट्टी में गुजराती ताला सोहता है ? भगवान् ने तुम्हें हाथ इसलिए दिए हैं कि नाव खेवो और हाथ जोड़े फिरो ! जुड़े हाथ बरछा कैसे पकड़ेंगे ?"

दो शरीर और एक प्राण होकर रहने वाले दम्पत्ति के बीच कलह खड़ी करने और छत्तीसी का सम्बन्ध स्थापित करने का श्रेय जिस घटना को प्राप्त था, वह यह थी :

दो दिन पहले कावेरी-तट के इस मार्ग से होकर नरसिंह चक्रवर्ती और कुन्दवि देवी अपने परिजनों के साथ उरैयूर को जा रहे थे। तब चक्रवर्ती इस नौका-घाट पर थोड़ी देर के लिए रुके थे और कावेरी नदी के मध्य के द्वीप को और उस द्वीप में हरे-भरे पेड़ों के बीच से दिखाई देने वाले बसंतमहल के स्वर्ण-कलश को उंगली से दिखलाकर कुन्दवि से कुछ कह रहे थे। कुटिया के द्वार पर खड़े पोन्नन और वल्लि यह दृश्य देख रहे थे। चक्रवर्ती की दृष्टि उन पर पड़ी तो उन्होंने इशारे से पोन्नन को पास बुलाया। वह दौड़ा हुआ गया और हाथ जोड़-कर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और विनय का पुतला बनकर उनके सामने खड़ा हो गया। वही पोन्नन पहले ताल ठोककर कह चुका था कि 'मैं चक्रवर्ती से बदला लूंगा। उनसे मिल पाऊं तो उनके सीने में अपना भाला भोंक दूंगा।' किन्तु चक्रवर्ती को सामने देखकर उसने वे सारी बातें भुला दीं। चक्रवर्ती की सौम्य आकृति और उनके तेज के सामने वह अपनी सुध-बुध खो बैठा और नतमस्तक हो गया !

चक्रवर्ती ने पूछा, "इस नौका-घाट पर तू ही नाव चलाता है न ?" पोन्नन मानो खुशी से झूम उठा। आनन्दातिरेक में वह ठीक से उत्तर भी न दे पाया। लड़खड़ाती ज़बान से बोला, "हां महा-चक्र-प्रभु !"

"वह जो बसंतमहल दिखाई देता है, उसमें अरुल्मोलि देवी रहती हैं न ?"

"हां, महाराज !"

"देख, शायद जल्दी ही मेरी कुन्दवि तुम्हारी रानी से मिलने यहां आयगी। बड़ी सावधानी से उसे नाव में वहां पहुंचाना। समझा ?"

"जैसी आज्ञा, महाराज," बड़ी विनम्रता से पोन्नन ने कहा।

उसके बाद चक्रवर्ती और उनके परिजन उरैयूर के लिए रवाना हो गए।

यह सारा दृश्य कुटिया के बाहर खड़ी वल्लि देख रही थी। एक-आध बात उसके भी कानों में पड़ी थी। विनय से भरे पोन्नन को उसने लौटते देखा तो क्रोध

का ठिकाना न रहा। पोन्नन को उसने आग्नेय नेत्रों से देखा और उसके मुंह से सारी बातें सुनकर तो एकदम बरस पड़ी। पहले तो उसने पोन्नन पर यह दोष लगाया कि चक्रवर्ती के सामने झुककर, उनकी बातों का विनम्रता से उत्तर देकर उसने विक्रम के प्रति विद्रोह का प्रदर्शन किया है! 'तुम बड़े नमक-हराम निकले! जिस बर्तन में खाया उसी में छेद किया!' कहकर खूब फटकारा भी। उस समय जो तकरार शुरू हुई, वह तीन दिनों से जारी थी। पल-भर भी शान्ति न रहती थी। इस समय भी कुटिया के अन्दर वही बक-झक चल रही थी कि बाहर घोड़े रुकने की आवाज सुनाई पड़ी।

'घोड़े पर कौन आए होंगे!' सोचते हुए अपना झगड़ा थोड़ी देर के लिए स्थगित करके वल्लि और पोन्नन कुटिया से बाहर आये। पांच-छः पल्लव-सैनिकों को सामने देखकर वे कुछ चौंक पड़े।

सैनिकों के नायक ने कहा, "नाविक, चक्रवर्ती ने तुझे हाथों-हाथ पकड़ लाने का आदेश दिया है। आनाकानी न करना। चल फ़ौरन, नहीं तो हाथों में हथकड़ी डाल दी जायगी।"

पोन्नन ने कातर नेत्रों से वल्लि की ओर देखा। वल्लि ने साहसपूर्वक सैनिकों के नायक को लक्ष्य करके कहा, "चोल देश में अदब-क़ायदे कभी नहीं भुलाए जाते। पर मालूम होता है, तुम्हारे देश में इनका बड़ा अकाल है।"

"ओहो! मुंहजोर वल्लि तू ही है? तुझे भी चक्रवर्ती ने पकड़ लाने को कहा है।"

"मैं तैयार हूं। मुझे भी तुम्हारे चक्रवर्ती से कुछ काम है। उनसे कहना है कि उरैयूर से कांची जाते हुए कुछ अदब-क़ायदा सीखते जायं," वल्लि ने कहा।

चक्रवर्ती के शुभागमन के उपलक्ष्य में उरैयूर की गलियां बड़ी सुन्दर सजाई गई थीं। उन्हें देखकर पोन्नन और वल्लि क्षोभ से उछल पड़े। पिछली बार जब उरैयूर का ऐसा सुन्दर शृंगार हुआ था, तब पार्थिव महाराज ने युद्ध के लिए कूच किया था। लोगों में तब कितना उत्साह था! लगता है, वे सारी बातें चोल देश के लोग एकदम भूल गए हैं। नहीं तो इस नरसिंह चक्रवर्ती के स्वागत के लिए नगरी को इतना सजाते? यही व्यक्ति तो पार्थिव महाराज की मृत्यु का कारण है। उफ़, यह कितना बड़ा अपमान है कि शत्रु के स्वागत में सम्मान-समारोह का आयोजन किया जाय! चोल देश की यह कैसी दुर्गति हुई है! अरुल्मोलि महारानी अब उरैयूर आयं और इस हर्ष-आनन्द को देखें तो क्या कहें! वे कैसे यह सब सहन कर सकेंगी!—यही बातें करते हुए पोन्नन और वल्लि उस प्रासाद में पहुंचे जो चक्रवर्ती के ठहरने के लिए हाल ही में बनाया गया था।

उस प्रासाद के शिल्प-कला कौशल ने उन्हें चकित तो किया ही; साथ ही अत्यंत क्रोधित भी कर दिया। जहां चोल देश के राजाओं को बैठकर राज्य

करना चाहिए था, वहां कोई अजनबी आसन जमा ले और राज्य करे तो किसे क्रोध न आयगा ?

दोनों को राज-प्रासाद के एक कक्ष में लाकर खड़ा किया गया। उसके बगल के कमरे से बातचीत की भनक कान में पड़ी। पुरुष का गम्भीर स्वर अधिक सुनाई पड़ रहा था। बीच-बीच में एक युवती की मधुर बात-चीत और हास्य की ध्वनि कानों में पड़ जाती थी। इनके अलावा एक और पुरुष-स्वर भी दीन-हीन दयनीय रूप में सुनाई पड़ा। वह आवाज़ मारप्प भूपति की मालूम हुई तो पोन्नन एकदम चौंक पड़ा।

घर से चलते समय पोन्नन और वल्लि ने अनुमान लगाया था कि चक्रवर्ती के विरुद्ध जो षड्यंत्र हुआ था उसमें उनके सम्मिलित होने के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने के लिए चक्रवर्ती ने उन्हें बुलाया होगा। रास्ते-भर इनकी चर्चा का विषय यही था कि पूछ-ताछ के समय साहसपूर्ण आचरण करके चक्रवर्ती के सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने के कलंक और अपमान को धो डालना चाहिए। मारप्प भूपति के दीन स्वर को सुना को उन्हें यह अनुमान सही लगा। वल्लि ने पोन्नन के कानों में रहस्यपूर्ण स्वर में कुछ कहा।

वह अपनी बात पूरी भी न कर पाई थी कि अंदर से गम्भीर पुरुष स्वर ने आदेश दिया, "कहां हैं वे ? उस नाविक को पेश करो !" पोन्नन और वल्लि को दूसरे कमरे में ले जाया गया। कमरे में क़दम रखते ही वल्लि और पोन्नन ने देखा कि नवरत्नजटित सिंहासन पर चक्रवर्ती विराजमान हैं; उनके निकट ही सिंहासन पर हाथ टेके कनक-लतिका-सी कुन्दवि खड़ी है और सामने सिर झुकाए थर-थर कांपता मारप्प भूपति लज्जा और क्षोभ से सिमटा खड़ा है। चक्रवर्ती के सामने पहुंचकर वे सिर उठाकर न देख सके। उनके मुख से जो तेज फूट रहा था उससे उनकी आंखें चौंधियां गईं और विनयावनत होकर खड़े हो गए।

मामल्ल चक्रवर्ती ने कड़कते स्वर में कहा—"ओ हो, यही हैं ? इसीको तो उस दिन हमने नौका-घाट पर देखा था। बड़ा भोला-भाला लगता था। इतना स्वांग रच डाला इसने ? वाह, डांड चलाने वाला भी पल्लव-साम्राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र करने पर उतारू हो जाय तो फिर कहना ही क्या ?"

चक्रवर्ती के मुंह से इतना सुनना था कि पोन्नन और वल्लि का जी घबराने लगा। और रास्ते-भर का बटोरा साहस न जाने कहां लुप्त हो गया ! उनका दिल ज़ोर से धड़कने लगा। कहां नौका-घाट पर मीठी-मीठी बातें करने वाले चक्रवर्ती और कहां बात-बात में आग उगलने वाले चक्रवर्ती ! एक ही व्यक्ति में आकाश-पाताल का यह अंतर देखकर वे हैरान रह गए।

चक्रवर्ती आगे बोले, "अच्छा, रहने दो अब उन बातों को। पीछे समझ लूंगा। नाविक, मेरी बात का उत्तर दे। सिर क्यों झुका लिया है ? देख मेरी तरफ और

सच-सच बता ! हमारे साम्राज्य के विरुद्ध विक्रम को षड्यंत्र करने के लिए खास-तौर से किसने उकसाया था ?"

पोन्नन ने अपना सिर ऊपर उठाया और कहा, "प्रभु, आपके सामने यह जो मारप्प भूपति खड़े हैं इन्हींने ।"

पोन्नन के मुख से यह आरोप सुना तो मारप्प भूपति ऐसा तिलमिलाया मानो हज़ारों बिच्छुओं ने एक ही साथ उस पर डंक मारा हो । उसने पोन्नन को ऐसी कठोर दृष्टि से देखा मानो अपनी नेत्राग्नि से उसे जलाकर भस्म कर डालेगा । फिर अपना सिर झुका लिया ।

"भूपति, तेरे पास इसका क्या उत्तर है ?"—चक्रवर्ती गरज उठे । मारप्प भूपति सिर से पैर तक कांप उठा । क्षोभ और क्रोध से उसे रुलाई-सी आ गई ।

"प्रभु, यह झूठ कहता है, झूठ ! मैंने विक्रम को नहीं उकसाया । इनके षड्यंत्र के संबंध में अच्छी जानकारी प्राप्त करने के लिए कुछ दिन ढोंग अवश्य रचा था कि मैं इनका सहायक और हितचिंतक हूं । बस इतना ही है, इसके अतिरिक्त मेरा और कोई दोष नहीं । मैं जो कुछ ताज़ी ख़बर पाता, उसे तुरन्त आपके सेनापति अच्युत वर्मा के कानों तक पहुंचा दिया करता था ।

"पापी ! द्रोही !" किसी स्त्री के कंठ ने महीन स्वर में कहा ।

"कौन है ?" चक्रवर्ती ने डांटकर पूछा और एक बार चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई । वह स्वर जिधर वल्लि खड़ी थी उधर ही से आया था । लेकिन जब तक चक्रवर्ती की दृष्टि वहां जमी थी तब तक वल्लि सीधी-सादी गऊ-सी चुपचाप खड़ी थी ।

मारप्प भूपति साहस बटोरकर बोला, "प्रभु, सत्य कहता हूं, विक्रम को इस दास ने नहीं उकसाया । मैं यह भी जानता हूं कि उसे किसने उकसाया था । झूठ नहीं, सच बोल रहा हूं, महाराज ! चक्रवर्ती की आज्ञा हो तो बताऊं ।"

"बता, निर्भय होकर बता !" चक्रवर्ती ने प्रोत्साहित किया ।

'जटा-जूटधारी एक शिवयोगी बार-बार महारानी अरुल्मोलि और युवराज विक्रम से मिलने आया करते थे । असल में वे शिवयोगी नहीं हैं । शिवयोगी के वेष में कोई कपटी संन्यासी है, षड्यंत्रकारी है । उन्होंने विक्रम को इस भयंकर कार्य के लिए उकसाया था ।"

अब तक कुन्दवि सारा नाटक चुपचाप देख रही थी, अब वह बीच में बोल उठी, "तुम्हें ये सारी बातें कैसे मालूम हुईं ? क्या तुमने उस कपट वेषधारी शिव-योगी को अपनी आंखों से देखा है ?"

"हां, देवी ! मैंने अपनी इन्हीं आंखों से उसे देखा है । यह जो बड़ा भोला-भाला बना खड़ा है, इसी नाविक की कुटिया में वे बराबर आया करते थे और षड्यंत्र की बातें सोचा और किया करते थे । उस कपटी की जटा पकड़कर उसकी पोल खोल

देने का मैंने बड़ा प्रयत्न किया। पर इस पोन्नन और वल्लि के मारे मैं सफल न हो सका।"

"मेरा नाम लोगे तो जीभ खींच लूंगी।"—वल्लि बड़े महीन स्वर में भुनभुनाई।

चक्रवर्ती ने उसे देखकर मुस्कराते हुए पूछा, "ए लड़की, तेरे होंठ तो फड़फड़ाते हैं, पर शब्द नहीं सुनाई पड़ते! बात क्या है? क्या तू भी कुछ कहना चाहती है? निडर होकर कह।"

वल्लि ने तुरन्त हाथ जोड़कर चक्रवर्ती को नमस्कार किया और कहा, "महाराज, इनकी बात बिलकुल झूठ है। यह सरासर झूठ है कि शिवयोगी ने युवराज को भड़काया है। शिवयोगी एक महान् आत्मा है। वे राग-द्वेष, माया-मोह सबसे मुक्त हैं। वे आकर बराबर सान्त्वना देते रहे, इसीलिए महारानी अब तक जीवित हैं। नहीं तो वे कभी की शरीर छोड़ चुकी होतीं। मैं जहां तक जानती हूं, शिवयोगी ने युवराज को विद्रोह करने से रोका ही है। युवराज का दिल नहीं बदला तो उनका क्या दोष? उन पवित्रात्मा पर जो झूठा आरोप लगाते हैं, वे पापी हैं, चांडाल हैं, और वे नरक में जायंगे।"

"बस, बस। बंद कर। शाप देना तुरन्त बंद कर!"—आदेश देकर चक्रवर्ती ने वल्लि का मुंह बंद कर दिया और फिर कुन्दवि की ओर देखकर मुस्कराते हुए पूछा, "देखा, बेटा?"

"देखा, अच्छी तरह से देखा। उस कपटी ने इस लड़की पर भी अपना वशीकरण-मंत्र फूंक दिया है। यह भी उसका कहना मानने लगी है। मुझे विश्वास नहीं होता कि इनमें से कोई भी सच बोल रहा है। पिताजी, मुझे तो ऐसा लगता है कि हर व्यक्ति अपने दिल में कोई बात छिपाए है!" कुन्दवि ने कहा।

चक्रवर्ती ने मारप्प भूपति की ओर देखकर कहा, "भूपति, तुम पर से मेरा संदेह रत्ती-भर भी नहीं हटा है। फिर भी इस बार तुम्हें क्षमा किए देता हूं। पर अब भी तुम सेनापति का पद पाने की इच्छा रखो तो यह उचित नहीं। अगर वह पद पाना ही चाहते हो तो पहले अपनी योग्यता का परिचय दो। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना कि भविष्य में तुम्हारे ऊपर कोई अभियोग न लगने पाए। समझे? जाओ, अब तुम जाओ!"

चक्रवर्ती के मुंह से कठोर शब्द सुनकर मारप्प भूपति सहम गया और किसी तरह लड़खड़ाता हुआ वहां से बाहर चला गया। इतने में एक सेवक ने प्रवेश करके बड़े विनय के साथ चक्रवर्ती के आगे एक पत्र बढ़ाया। चक्रवर्ती ने उसे लेकर पढ़ा और फिर पोन्नन की ओर कठोर दृष्टि डालकर बोले, "नाविक, अब तू भी अपनी स्त्री के साथ यहां से चला जा। तुझसे मैं फिर समझूंगा। हां, एक बात अपनी स्त्री को समझा देना कि जटा-जूटधारी शिवयोगी के विषय में वह कुछ

अधिक सावधान रहे। लगता है कि उसके जादू ने इस पर बहुत प्रभाव डाला है।"

वल्लि के मुख पर लज्जा की लाली खेल गई, जो तुरन्त ही मुस्कान बनकर खिल उठी। चक्रवर्ती पर एक अर्थपूर्ण दृष्टि फेंककर वल्लि पोन्नन के पीछे-पीछे सिर झुकाए चली गई। चक्रवर्ती ने जिधर वे दोनों गए थे, उसी तरफ देखते हुए कहा, "मैंने भी कितनी ही औरतें देखी हैं, लेकिन इस वल्लि की तरह···"

कुन्दवि ने उन्हें आगे न बढ़ने दिया। कहा, "उसे रहने दीजिए, पिताजी! अभी जो पत्र आया था, वह क्या था?"

"अभी-अभी तो हम लोग एक कपटी शिवयोगी के विषय में बातें कर रहे थे। पर अब तो सच्चे शिवयोगी पधारने वाले हैं। हमें नगर से बाहर जाकर उन्हें सादर लिवा लाना चाहिए।" चक्रवर्ती ने कहा।

"वे कौन हैं, पिताजी? हमारे सन्त कवि अप्पर तो नहीं?"

"नहीं, इस समय पधारने वाले अप्पर नहीं, परंजोति हैं।"

"कौन? आपके पुराने सेनापति? आपके साथ वातापि आकर पुलिकेशि पर विजय पाने में उन्होंने तो सहायता दी थी?"

"सहायता नहीं कुन्दवि, उन्हींने पुलिकेशि पर विजय पाई थी। उन्होंने टिड्डी दल की तरह आगे बढ़ने वाली चालुक्य सेना का ध्वंस किया था। वे ही परम वीर अब भभूत और रुद्राक्ष धारण किये, तीर्थाटन पर आ रहे हैं। उन्होंने अपना नाम भी बदल लिया है। अपने को शिरुत्तोंडर (दासानुदास) कहते हैं।"

"उन्होंने सेनापति का पद क्यों छोड़ दिया? वे बूढ़े तो नहीं हो गए?" कुन्दवि ने पूछा।

"नहीं, वैसे बूढ़े तो नहीं हैं। उनके सेनापति पद छोड़ने का कारण फिर कभी बताऊंगा! इस समय तो उनके आने का वक़्त हो गया है!" कहते हुए चक्रवर्ती अपने आसन से उठे और कुन्दवि की ओर मुड़कर पूछा, "कुन्दवि, परंज्योति के साथ उनकी धर्मपत्नी भी तीर्थ-यात्रा करती हुई आ रही हैं। उनका स्वागत करने तुम चलोगी?"

"अवश्य, पिताजी! उन्हें देखने की बहुत दिनों से मेरी अभिलाषा है।" कुन्दवि ने अपनी सहमति प्रकट की।

सोलह

उरैयूर और श्रीरंगम के बीच बहने वाली कावेरी नदी पर घना अंधकार छाया हुआ था। शुक्ल पक्ष की रात चतुर्थी की रात थी, चांद डूब चुका था। आसमान पर काले बादलों का पर्दा छाया हुआ था। वर्षा की दो-एक बूंदे भी पड़ रही थीं।

उस घने अंधकार में कावेरी नदी के किनारे-किनारे पानी को चीरती हुई नाव के चलने की ध्वनि सुनाई दे रही थी। नाव पूर्व से पश्चिम की ओर जा रही थी। एक व्यक्ति नाव में बैठा था और दूसरा नाव को रास्ते से खींचता हुआ किनारे-किनारे चल रहा था। उस अंधकार में भी दोनों की आकृति पहचानी जा सकती थी।

वे दोनों और कोई नहीं, पोन्नन और वल्लि थे। पोन्नन किनारे-किनारे चल रहा था और वल्लि नाव में बैठी थी। वल्लि के हाथ में एक छोटी-सी टोकरी थी, उसके अन्दर मिट्टी का एक दीया टिमटिमा रहा था। हवा के झोंके से दीया बुझ न जाय, इसलिए वल्लि आंचल से घेरा बनाकर बड़ी सावधानी से उसे लिये जा रही थी।

उस घने अन्धकार में प्रवाह से उलटी दिशा में नाव खींचकर ले जाना कोई आसान काम न था। मार्ग में घाट बने थे, नदी-तट पर मंडप थे और नदी की धारा को स्पर्श करते हुए बड़े-बड़े वृक्ष झुके हुए थे। इन सब विघ्न-बाधाओं के बावजूद पोन्नन ने अपना साहस न छोड़ा। नाव खींचता हुआ वह आगे ही बढ़ता गया।

नाव से लगभग तीन सौ क़दम की दूरी पर लंबे कद की कोई आकृति चल रही थी। जब नाव रुकती, तब वह भी रुक जाती और जब नाव बढ़ती तो वह भी आगे बढ़ने लगती। यह मारप्प भूपति था जो आधी रात में पोन्नन की नाव का पीछा कर रहा था।

उसके पीछे कुछ और दूरी पर एक दूसरी मनुष्य-आकृति भी दबे पांव चली आ रही थी। यह जटा-जूटधारी संन्यासी की आकृति थी। यह वे ही शिवयोगी थे जिन्होंने पार्थिव महाराज को रणक्षेत्र में वरदान दिया था और बार-बार पोन्नन की कुटिया में दिखाई पड़ते थे।

लगभग आधी रात के समय पोन्नन ने नाव रोककर धीमे स्वर में वल्लि से कहा, "वल्लि, उतरो। हम पहुंच गए।"

उसी समय श्रीरंगनाथ के मंदिर में अर्धयाम-पूजा का घंटा बजा। घण्टे से निकला ओंकार नाद रात के सन्नाटे को वेधकर आकाश से जा टकराया और फैलकर गूंज उठा।

पोन्नन और वल्लि को रोमांच हो आया। पोन्नन बोला, "शकुन अच्छा है, वल्लि! काम ज़रूर सफल होगा। जल्दी उतरो!"

वल्लि दीये वाली टोकरी लेकर बड़ी सावधानी से नाव से उतरी। पोन्नन ने पास के पेड़ की जड़ से नाव बांध दी।

दोनों किनारे पर चढ़ आए। वहां एक लम्बी चहारदीवारी थी। दीवार में एक छोटा-सा द्वार था, जिसमें ताला लगा था। पोन्नन ने अपनी कमर से चाबियों का गुच्छा निकाला और एक चाबी से ताला खोला। फिर किवाड़ खोलकर दोनों अन्दर दाखिल हुए।

चम्पक पुष्प की महक हवा में बहती उन तक आई।

"आहा चम्पक की कैसी अच्छी सुगंध है! क्यों वल्लि, राजमहल के इस उद्यान में तुम पहले कभी नहीं आई न?" पोन्नन ने पूछा।

"शोर मत मचाओ," वल्लि ने कहा।

पोन्नन ने अन्दर से किवाड़ बन्द करके चटखनी लगा दी।

"डरो मत! मेरे साथ चलो!"

"तुम्हारे इस तरह शोर मचाने से ही मुझे डर लगता है।"

दोनों चम्पक वन से होकर आगे बढ़े। थोड़ी देर बाद उसी द्वार के निकट मारप्प भूपति आया और बाहर से किवाड़ में चटखनी लगा दी। फिर नदी में उतरकर पेड़ की जड़ से बंधी पोन्नन की नाव खोलकर पानी में बहा दी। उसके बाद चहारदीवार से लगी पगडंडी से होकर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ने लगा।

नाव किनारे-किनारे बहती हुई थोड़ी ही दूर गयी होगी कि पीछे से आते हुए शिवयोगी ने उसे देख लिया और जल्दी से जल में उतरकर नाव पकड़कर रोक ली। फिर पास ही के पेड़ की जड़ से उसे अच्छी तरह बांधकर आगे बढ़े। चहार-दीवारी के द्वार के निकट आकर शिवयोगी रुके और बाहर की चटखनी खोल दी। फिर लौटकर उस पेड़ के पीछे जा बैठे जहां उन्होंने नाव बांध दी थी।

उसी समय नदी के उस पार हाथ में मशालें लिये एक झुंड आता दिखाई दिया। कुछ देर बाद वे मशालें नदी के बीच दिखाई देने लगीं, जिससे मालूम हुआ कि अनेक नावें नदी पार करके इस ओर आ रही हैं।

शिवयोगी जिस पेड़ के नीचे छिपे बैठे थे, उससे पूर्व की तरफ कुछ दूर आकर वे नावें किनारे लगीं। मशालों की रोशनी में नावों से कई लोग उतरते दिखाई दिए। उतरने वालों में चिरुत्तोण्डर थे, उनकी धर्मपत्नी थी और कुन्दवि भी थी। चक्रवर्ती के प्रतिनिधि के रूप में सेनापति अच्युत वर्मा, जो उरैयूर की शासन-व्यवस्था का कार्यभार संभाल रहे थे, सबसे आगे थे और अन्य परिजन उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। श्री रंगनाथ की अर्धयाम-पूजा देखकर लौटने वाले उस भक्तवृन्द में चक्रवर्ती नरसिंह वर्मा नहीं दीखे।

भक्तवृन्द कावेरी-तट को प्रकाशमान करती हुई मशालें लिये आगे बढ़ा। तब शिवयोगी पेड़ की आड़ में अच्छी तरह छिप गए और सांस रोके निश्चल खड़े रहे। मशालें लिये वह झुंड नगर में प्रविष्ट हुआ तो कावेरी के तीर पर पहले से भी अधिक घना अंधकार छा गया।

शिवयोगी पेड़ की आड़ से बाहर आये और पोन्नन की नाव के पास जा बैठे। उनकी आंखें चहारदीवारी के द्वार की ओर लगी थीं और कान द्वार खुलने की आहट पाने के लिए चौकन्ने थे।

सत्रह

चक्रवर्ती के दरबार से बाहर निकाले जाने के बाद मारप्प भूपति बहुत खिन्न था। उसने पल्लव साम्राज्य की जो सेवाएं की थीं वे निष्फल हो जायंगी, इसकी उसे जरा भी आशंका न थी। सात साल पहले पार्थिव महाराज ने पल्लवों के साथ जो युद्ध किया था, उसमें उसने पार्थिव का साथ नहीं दिया था। उसके बाद त्रिक्रम के षड्यंत्र का भंडाफोड़ करके भी उसने पल्लव साम्राज्य को आने वाली विपत्ति से बचाया था। यह सब आख़िर उसने क्यों किया था? इसीलिए न कि चोल राज्य की गद्दी उसे मिले। लेकिन हुआ क्या? चक्रवर्ती ने उल्टे उसी के सिर दोष मढ़ना शुरू कर दिया! इतना ही नहीं, एक तुच्छ नाविक और उसकी पत्नी के सामने उसे, जो चोल देश के राजा के पद का अधिकारी था, अपमानित होना पड़ा, लज्जा से सिर झुकाना पड़ा।

आशा-निराशाओं के जाल ने मारप्प भूपति को बहुत दुखी कर दिया था। अत: उसके मन में इस संसार के ही प्रति विरक्ति हो गई। वह सोचने लगा कि यह भी कैसी दुनिया है, इस जीवन में क्या रखा है? उसने इसकी चिन्ता नहीं की कि वह कहां जा रहा है, घोड़े को उसी की इच्छा पर छोड़ दिया कि जहां चाहे ले जाय।

मारप्प आधा कोस ही गया होगा कि उसे सहसा चेतना हुई और रुककर सोचने लगा कि मैं कहां चला आया। इस समय तक चौथ का चांद पश्चिमाकाश के क्षितिज पर उग आया था। घोड़ा मोड़कर मारप्प भूपति उरैयूर की ओर चल पड़ा।

उरैयूर के फाटक के अन्दर प्रवेश करके वह जरा ही दूर गया कि सामने से अनेक मशाल लिये शंख आदि बजाते हुए झुण्ड-के-झुण्ड लोग आते दिखाई पड़े। भीड़ में सिंह-ध्वजा फहराती हुई दीख पड़ी तो सोचा कि शायद चक्रवर्ती अपने परिजन सहित श्री रंगनाथ क दर्शन को जा रहे हैं। मारप्प झट घोड़े पर से कूद पड़ा और सड़क के किनारे विनयपूर्वक हाथ बांधे खड़ा हो गया। लोग जब निकट आये तो उसने देखा कि चक्रवर्ती उसमें नहीं है, सेनापति अच्युत वर्मा और केश-मुंडित एक साधु महाराज आ रहे हैं। वे साधु महाराज सुगठित तेजस्वी पुरुष थे। चेहरे से आभा फूट रही थी। मारप्प भूपति के मन में बिजली-सा एक विचार कौंध उठा। उसने सोचा, 'कहीं यह जटा-जूटधारी कपटी शिवयोगी तो नहीं?'

उसी समय सेनापति अच्युत वर्मा की दृष्टि मारप्प भूपति पर पड़ी। उन्होंने इशारे से भूपति को अपने पास बुलाया और निकट ही खड़े चिरुत्तोण्डर की ओर देखकर कहा, "संत महाराज, इन्हें जानते हैं? ये पार्थिव महाराज के भाई मारप्प भूपति हैं।"

चिरुत्तोण्डर ने मारप्प भूपति को सिर से पैर तक देखा और कहा, "अच्छा ! कई वर्ष पहले महेन्द्र चक्रवर्ती के ज़माने में मैंने इसे देखा है। अब तो इसकी शक्ल-सूरत बिल्कुल बदल गई है।"

"विक्रम के षड्यंत्रों का पता लगाकर उसकी सूचना देने वाले ये ही हैं। फिर भी न जाने क्यों अभी इन पर चक्रवर्ती की कृपा-दृष्टि नहीं पड़ी है।" अच्युतवर्मा ने कहा।

चिरुत्तोण्डर ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। एक बार मारप्प भूपति को सिर से पैर तक अच्छी तरह देखकर आगे बढ़ गए।

उन दोनों के आगे जाने के बाद दासियों से घिरी एक पालकी आती दिखाई दी। भूपति ने सोचा कि निश्चय ही इसमें चक्रवर्ती की बेटी होगी। इसलिए जल्दी से रास्ते से हट जाने को हुआ। लेकिन आश्चर्य कि पालकी वहीं आकर रुक गई और अन्दर से मधुर नारी-कंठ ने पालकी का पर्दा हटाकर उसे पुकारा, "भूपति !"

मारप्प भूपति ने गर्दन मोड़कर देखा तो पालकी में कुन्दवि का मुखचन्द्र दिखाई दिया। सामने एक महिला बैठी थीं, उनकी आकृति से तो ऐसा मालूम होता था कि शिव-भक्ति ही नारी का रूप धारण करके आ बैठी हो। मारप्प भूपति ने जब यह जाना कि कुन्दवि ने ही उसे पुकारा है, तब उसके आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। संकोच उसे खाये जा रहा था। यद्यपि पालकी के निकट जाने की इच्छा हो रही थी तो भी औरत की-सी शर्म ने उसे सिर भी न उठाने दिया। वह जहां खड़ा था, वहीं भूमि पर दृष्टि गड़ाए खड़ा रहा।

पालकी के अन्दर से पल्लव-राजकुमारी ने कोमल स्वर में कहा, "भूपति, आज मेरे पिताजी ने तुम्हारे साथ जो कड़ा व्यवहार किया है, उससे खिन्न मत होना। उस कपटी शिवयोगी को तुम किसी तरह पकड़वा दो तो मैं तुम्हारा पक्ष लूंगी और पिताजी को प्रसन्न कर दूंगी।"

कुन्दवि के मुख से सहानुभूतिपूर्ण बातें सुनकर मारप्प भूपति का मन उछलने लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो पाताल में से उठकर वह स्वर्ग पहुंच गया हो। उसकी मुरझाई हुई आशा-लता फिर से हरी हो गयी। वह बोल उठा, "देवी, आप मेरा ध्यान करें, यह मेरा अहोभाग्य है। आप जो कहेंगी, करने का प्रयत्न करूंगा। विश्वास रखें, उस कपट-वेषधारी साधु को पकड़कर ही दम लूंगा।"

"अच्छी बात है, साधु का पता लगते ही तुरन्त पहले मुझे खबर देना !" कहकर कुन्दवि ने पालकी आगे बढ़ाने का आदेश दिया।

सबके जाने के बाद थोड़ी देर तक तो मारप्प भूपति भौंचक्का खड़ा रहा। विश्वास नहीं होता था कि जो आंखों देखा और कानों सुना है, वह सत्य है, सपना नहीं है। आखिर वह अपने घोड़े पर सवार हुआ। अच्युतवर्मा के साथ जो केश-

मुंडित साधु जा रहे थे, वे बार-बार उसे याद आये। उसने सुना था कि वातापि के युद्ध में सेनापति परंज्योति के शौर्य ने ही पल्लव साम्राज्य को विजयी बनाया था। उसे इस बात का भी पता था कि परंज्योति उन दिनों पार्थिव महाराज के घनिष्ठ मित्रों में से थे। उसने सोचा कि सम्भव है वे ही जटा-जूट-धारी शिवयोगी का वेष धारण करके षड्यंत्र रच रहे हों। संसार में ऐसा क्या है जो सम्भव नहीं। किसी तरह सचाई का पता लगाना ही होगा। लेकिन कैसे? पोन्नन और वल्लि को किसी तरह अपनी तरफ़ मिला सकूं तो काम आसानी से पूरा हो जायगा। इसी तरह सोचते-विचारते मारप्प भूपति के मन में एक ख़याल और उठा। उस दिन वह कावेरी-तट पर नौका-घाट को जाने वाले रास्ते पर बहुत दूर तक हो आया था। जाते या लौटते समय पोन्नन और वल्लि कहीं नहीं मिले थे। इसलिए शायद वे रात उरैयूर में ही बिता रहे हों। पर ठहरे कहां होंगे? शायद वल्लि के दादा के घर हों···?

तुरन्त मारप्प भूपति घोड़ा दौड़ाता हुआ अपने महल में गया और द्वार पर खड़े पहरेदारों को घोड़ा सौंपकर वहां से पैदल ही चल पड़ा। उस समय सूरज डूबे एक प्रहर से भी अधिक बीत गया होगा।

मारप्प भूपति गलियों-गलियों, सबकी आंखों से बचता, जल्दी-जल्दी डग भरता जा रहा था। जब वह लोहार गली में पहुंचा तो ठिठककर खड़ा हो गया, मानो उसने भूत देखा हो। लोहार गली के मोड़ पर लगे दीप-स्तम्भ के धुंधले प्रकाश में एक मूर्ति दिखाई दी। उसके मन में शिवयोगी की जो मूर्ति अंकित थी, वही उसे वहां खड़ी दीख पड़ी। पर उसी क्षण दीया बुझ गया और मूर्ति आंखों से ओझल हो गई। मारप्प भूपति तंद्रा छुड़ाकर मूर्ति की ओर लक्ष्य करके तेज़ी से चलने लगा। उसके मन में हुआ कि आज ही रात को कपट-वेषधारी उस ढोंगी को रंगे हाथों पकड़ सकूं और चक्रवर्ती की कुमारी के सामने ले जाकर खड़ा कर सकूं तो कितना अच्छा हो! इस आशा से वह लपकता हुआ दीप-स्तम्भ के निकट पहुंचा तो वहां कोई न मिला। वह तो चौर रास्ता था, वहां से तो चारों दिशाओं को चार मार्ग जा रहे थे। किससे शिवयोगी गए होंगे, वह इसका निर्णय न कर सका।

तुरन्त मारप्प भूपति के मन में एक और विचार उठा। उसने जो मूर्ति देखी थी, यदि वे शिवयोगी ही रहे होंगे तो निश्चय ही पोन्नन और वल्लि से मिलने वहां आये होंगे और सम्भव है कि वे भी वीरभद्र आचार्य के घर गए हों। कौन जाने कौन-सा नया षड्यंत्र रचने के लिए ये लोग यहां इकट्ठे हुए हैं, और सो भी इस समय जब कि नरसिंह चक्रवर्ती उरैयूर पधारे हैं। वह कहीं उन तीनों को एक साथ रंगे हाथों पकड़ सके तो···चक्रवर्ती को उस पर जो अकारण संदेह हो गया है, वह दूर हो जायगा और···और···

इस तरह के विचारों में डूबा मारप्प भूपति वीरभद्र आचार्य के घर के पास पहुंचा तो उसे चकित कर देने वाला एक दूसरा ही काण्ड दीख पड़ा। घर का द्वार खोलकर दो व्यक्ति बाहर निकले। मारप्प भूपति झट पास के घर के चबूतरे पर जा चढ़ा और खम्भे की आड़ में खड़ा होकर गौर से देखने लगा। ये पोन्नन और वल्लि थे। वल्लि के हाथ में एक टोकरी थी, टोकरी में मिट्टी का दीया टिमटिमा रहा था, जिसे वल्लि हवा के झोंकों से आंचल द्वारा बचाती हुई चल रही थी। वीरभद्र आचार्य के घर पास ही जो गली थी उसमें वे लोग घुसे और उत्तर की ओर बढ़े।

यह देखकर मारप्प भूपति को निश्चय हो गया कि हो न हो दाल में कुछ काला ज़रूर है। आज ये लोग ज़रूर कोई षड्यंत्र पूरा कर रहे हैं। इसमें शिव-योगी का भी बड़ा हाथ होगा और जहां वे पहले गए होंगे वहीं ये पीछे-पीछे जा रहे हैं। मारप्प भूपति को नई स्फूर्ति मिली। पोन्नन और वल्लि जिस रास्ते गये थे। उसी रास्ते वह भी दबे पांव चल पड़ा। पर उसने उन्हें अपनी आंखों की ओट न होने दिया।

गली से होते हुए पोन्नन और वल्लि कावेरी के तट पर पहुंचे। वहां पहले से ही एक पेड़ की जड़ से नाव बंधी थी। वल्लि उस पर जा बैठी। टोकरी नाव में रखकर बड़ी सावधानी से ढक ली। पोन्नन रस्सा पकड़कर नाव को किनारे-किनारे खींच ले चला। राजमहल के उद्यान की चारदीवार के निकट पहुंचकर नाव को एक पेड़ की जड़ से बांधकर, वह वल्लि के साथ उद्यान में दाख़िल हुआ।

मारप्प भूपति जानता था कि यह चोल-वंश का प्राचीन राजमहल है और इसमें पार्थिव महाराज भी रह चुके हैं। लेकिन उस समय वहां कोई रहता न था। चक्रवर्ती की आज्ञा से उसमें ताला लगा दिया गया था। इस बात का भी उसे पता था। इसलिए मारप्प भूपति ने अनुमान किया कि पोन्नन और वल्लि किसी षड्यंत्र के ही उद्देश्य से पिछवाड़े से महल के अंदर प्रवेश कर रहे हैं। शायद प्रासाद में शिवयोगी ही होंगे। एक और बड़ा संदेह उसके मन उठा कि शायद पार्थिव महाराज के रणक्षेत्र में मर जाने की बात झूठी हो और वे रणक्षेत्र से जान बचाकर भाग निकले हों तथा अब शिवयोगी के वेष में षड्यंत्र रच रहे हों। जो भी हो, आज रात को सब रहस्यों का उद्घाटन होगा, सबका भंडाफोड़ होगा तीनों चिड़ियां एक साथ जाल में फंसने वाली हैं—उसने झट बाहर से चटखनी लगा दी और पोन्नन के लौटने से पहले सहायता के लिए अपने आदमियों को बुला लाने के लिए जल्दी से वहां से चल दिया।

अठारह

पोन्नन को इस बात की कोई खबर न थी कि दो आदमी उसका पीछा कर रहे हैं। इसलिए वह तो निश्चिन्त होकर राजमहल के उद्यान में आगे बढ़ रहा था।

राजमहल के पिछवाड़े पहुंचने पर पोन्नन ने पूछा, "क्यों वल्लि, राजमहल के अंदर भी चलकर देखें या अपना काम पूरा करके चुपचाप लौट चलें?"

"दीये में तेल कम हो चला है। जल्दी से अपना काम पूरा कर लेना चाहिए। बोलो, मंदिर किधर है?" वल्लि ने पूछा।

"इधर से चलो," कहकर पोन्नन उसे पूर्व की ओर ले चला।

पूर्व की ओर राजमहल से सटा हुआ एक छोटा-सा सुन्दर मंदिर बना था। उसमें प्रवेश करने के तीन रास्ते हैं। राजमहल से सीधे मंदिर में जाया जा सकता था। वही मंदिर का मुख्य द्वार था। पिछवाड़े के उद्यान से भी प्रवेश के लिए द्वार था। यह द्वार अभिषेक के लिए कावेरी का जल और शृंगार के लिए पुष्प लाने के काम में आता था। इसके अलावा पुजारी के बाहर आने-जाने के लिए जो द्वार बना था, उसका ताला खोलकर पोन्नन अंदर दाखिल हुआ। उसके साथ वल्लि भी गई। दीए के धुंधले प्रकाश में वहां के देवी-देवताओं की मूर्तियां देखकर उनके नेत्र विस्मय से विस्फारित हो गए। यद्यपि एक अरसे से उस मंदिर में पूजा-अर्चना बन्द थी, तो भी उन मूर्तियों की तेजोमयी आभा में ज़रा भी कमी न आई थी।

पहले पोन्नन को होश आया और वह बोला, "वल्लि, देर हो रही है। जल्दी चलो!" कहकर वह आगे बढ़ा और महाविष्णु के चरण-कमलों में सुन्दर कारीगरी का जो संदूक रखा था उसे हाथ में उठा लिया।

"चोलवंश का अमूल्य निधि इस पेटी के अन्दर है, वल्लि! भला हुआ कि यह चक्रवर्ती नरसिंह वर्मा की नज़र में नहीं आई। यदि आ गई होती तो अभी तक कांचीपुरम् चली गई होती," कहता हुआ पोन्नन मन्दिर से बाहर आ गया।

पीछे-पीछे वल्लि भी आई। "अरे रे! दीया बुझ गया!" परेशानी के स्वर में वल्लि बोली।

"कोई परवाह नहीं। भगवान् की कृपा से हमारा काम पूरा होने पर ही बुझा है। पर अब हम किस रास्ते से चलें? इस अंधेरे में बगीचे से होकर जाना कठिन होगा इसलिए क्यों न पूर्व के ही द्वार से निकल चलें? आओ देखें, द्वार खुलता है कि नहीं?"—कहता हुआ पोन्नन पूर्वी द्वार को लक्ष्य करके तेज़ी से चल पड़ा। द्वार के निकट पहुंचने पर दीवार के उस पार से बातचीत की भनक सुनाई दी तो

वे चौंक उठे।

कोई पूछ रहा था, "मारप्प भूपति की बातों पर भरोसा करके तुम यहां नंगी तलवार लिये खड़े हो? राजमहल में चोर घुसे तो कैसे घुसे?"

दूसरे ने उत्तर दिया, "जब मारप्प भूपति कहते हैं कि मैंने स्वयं अपनी आंखों से चोर को घुसते देखा तो कैसे भरोसा न करें?"

"बचकर भागने के लिए क्या यही एक रास्ता है? क्या कोई दूसरा रास्ता नहीं है?"

"चोर राजमहल के मुख्य द्वार से भागने का साहस नहीं करेगा। इस रास्ते से न आये तो चोर उद्यान के रास्ते से जा सकता है। पर वहां तो कावेरी में उतरना होगा। तब तक···वह देखो!"

"क्या है? अरे! मशालों की रोशनी दिखाई पड़ती है।"

"मारप्प भूपति मदद के लिए आदमी ला रहे हैं।"

इस बातचीत को सुनकर पोन्नन का शरीर थर-थर कांप उठा। न जाने कौन कौन-सी कल्पनाएं उसके मन में कौंध गईं। एक-एक करके तमाम दृश्य उसकी आंखों के सामने उतरने लगे कि मारप्प भूपति ने पेटी सहित उसे पकड़ लिया है और चक्रवर्ती के सामने उसे ले जाकर खड़ा कर दिया है तथा चक्रवर्ती उसे देखकर कह रहे हैं, "अरे भले आदमी! तू तो बड़ा नेक बना फिरता था। स्वांग रचा था क्या सब! तू आखिर इतना बड़ा चोर निकला!"

पोन्नन एकदम डर गया और वल्लि के हाथ पकड़कर उद्यान की तरफ तेजी से दौड़ा। पेड़-पौधों से टकराते, लताओं से उलझते वे दोनों उद्यान के पिछवाड़े के द्वार पर पहुंचे और किवाड़ से सटकर कान लगाकर सुनने लगे कि बाहर कोई आवाज़ तो नहीं आ रही है। जब कोई आहट न सुनाई दी तो धीरे से किवाड़ खोलकर बाहर आये। जल्दी से कावेरी के तट पर पहुंचे तो देखा कि उनकी नाव वहां नहीं थी।

क्षण-भर के लिए पोन्नन और वल्लि की सांस रुक गई। दूर पर उन्हें मशालों की रोशनी दिखाई पड़ी, आदमियों के दौड़ने की आवाज़ आई। वे घबरा गए। उनकी समझ में न आया कि क्या करें। फिर पोन्नन संभलकर बोला, "चलो, वल्लि! शायद नाव पानी में बह गई हो और कुछ दूर जाकर कहीं रुक गई होगी। चलो, देखें।"

दोनों नदी के किनारे-किनारे पूर्व की ओर भागे। राजमहल की चारदीवारी के निकट दक्षिण से आने वाले मार्ग पर एक झुण्ड मशालें लिये आता हुआ दिखाई दिया और कोई जोर से चिल्लाया, "देखो, वह भाग रहे हैं!"

पोन्नन और वल्लि बेतहाशा भागने लगे। थोड़ी दूर जाने पर उनकी नाव एक पेड़ से बंधी नज़र आई तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। लेकिन यह समय

आश्चर्य करने का नहीं था। मशालें लिये जो झुण्ड पीछा कर रहा था, वह कावेरी-तट के बहुत निकट आ गया था। पोन्नन घबराया, "हाय-हाय ! पेटी के साथ अगर उनके हाथों में फंस गए तो क्या होगा ?" उसी समय पेड़ के पीछे से एक छाया निकली। देखते ही वल्लि ने जान लिया कि वे शिवयोगी हैं। आश्चर्य और आनंद से वह चीख उठी, "साधु महाराज, आप यहां कहां ?"

"चुप, चुप !" शिवयोगी ने वल्लि को सावधान किया। फिर पोन्नन से कहा, "पोन्नन, यह बात करने और सोचने-विचारने का समय नहीं है। पेटी मुझे दे दो। मैं इसकी बड़ी सावधानी से रक्षा करूंगा और तुम्हें बाद में सौंप दूंगा। नहीं दोगे तो कहीं फंस जाओगे।"

पोन्नन क्षण भर के लिए हिचका, पर वल्लि शिवयोगी से सहमत होती हुई बोली, "हां-हां ! इन्हें दे दो, जल्दी करो !"

पोन्नन ने पेटी शिवयोगी के हाथ में दे दी।

"वल्लि, एक बार तुमने मुझे मारप्प भूपति से बचाया था। इसके बदले में आज मैं तुम दोनों को बचा रहा हूं।" शिवयोगी ने कहा। दूसरे ही क्षण शिवयोगी पेड़ की छाया में कहीं अन्तर्धान हो गए।

पोन्नन ने जल्दी-जल्दी नाव खोली, वल्लि को बैठाया और स्वयं भी जा बैठा। वह दो डांड भी न चला पाया था कि मारप्प भूपति अपने आदमियों के साथ वहां आ पहुंचा और आदेश के स्वर में बोला, "रोको नाव को। पकड़कर बांध लो इन दोनों को। भागने मत दो। नाव की तलाशी लो अच्छी तरह।"

इतना सब सुनकर भी पोन्नन और वल्लि विचलित नहीं हुए और नाव की तलाशी लिये जाने के समय उतर कर किनारे पर खड़े हो गए। नाव में जब कुछ भी हाथ न लगा तो मारप्प भूपति लज्जा से गड़ गया। निराशा ने क्रोध का रूप धारण किया और उसका मुंह तमतमा उठा। कड़कते स्वर में उसने पूछा, "पोन्नन, कहां है वह ?"

"क्या सेनापति ?" पोन्नन ने शान्त स्वर में पूछा।

"जो हाथ में लिये थे, वही।"

"कुछ लिये होता तो कहां जाता ? मैं कोई जादूगर तो हूं नहीं कि देखते-देखते छू-मन्तर कर दूं।" पोन्नन ने कहा।

मारप्प भूपति ने बहुत डांटा-फटकारा, छान-बीन की, अपने आदमियों द्वारा इधर-उधर पेड़ के नीचे और नदी के जल में ढुंढ़वाया। पर कुछ हाथ न लगा।

इस बीच वल्लि पोन्नन के कानों में बार-बार कुछ कहती और खिलखिलाकर हंस पड़ती थी। मारप्प भूपति के क्रोध का पारा और भी चढ़ता गया और वह खीझकर बोला, "दाल में कुछ काला न होता तो आधी रात के समय चोरी-चोरी यहां क्या करने आये होते तुम ? और यह नाव तुम्हें कहां से मिली ?"

"भोर होते-होते हम अपने घर के नौका-घाट तक पहुंच जायं, इसी ख़याल से अभी चल पड़े थे और यह नाव तो हमारे दादा की है, इसे हम अपने यहां लिये जा रहे हैं।" वल्लि ने उत्तर दिया।

किन्तु मारप्प भूपति की शंका का समाधान नहीं हुआ। बोला, "नहीं, नहीं! मुझे विश्वास नहीं होता। तुम लोग राजमहल में घुसकर कुछ चुरा लाये थे और उसे तुमने कहीं छिपा दिया है। सच-सच बताओ तो छोड़ दूंगा। नहीं तो कारागृह में डाल दूंगा।"

"किस कारागृह में?" पोन्नन ने पूछा।

"चाहे जहां भी, उससे तुम्हें क्या?"

"कल चक्रवर्ती के पास यह मुकदमा जायगा तो वे न्याय करेंगे। तुम इनसे क्यों गिड़गिड़ाते हो?" वल्लि ने कहा।

वल्लि के मुंह से यह सुनकर मारप्प भूपति का चेहरा फीका पड़ गया। उसकी समझ में न आया कि क्या करें। फिर अपने आदमियों को विदा करके शान्त भाव से पोन्नन से बोला, "देखो पोन्नन! हम-तुम आज या कल से परिचित नहीं हैं। कभी हम दोनों में मनमुटाव हुआ है, जो आज अपनी इस मुंह-जोर औरत के मारे हो?"

"औरत-मर्द के बीच इस तरह कोई पड़ने की कोशिश करे तो मन-मुटाव तो क्या, तनतुड़ाव की, यानी हड्डी-पसली टूटने तक की नौबत आ सकती है। याद रहे, इनके हाथ की डांड मेरे मुंह की डांट के सामने दबती है!" वल्लि ने क्रोधपूर्वक कहा।

"चुप रहो, वल्लि! हम मर्द लोग आपस में बातचीत कर रहे हैं। बीच में दखल देने वाली तुम कौन होती हो?" पोन्नन ने डांटा।

"अरे अरे! तुम लोग मर्द कब से बन गए? अंधेरे में ठीक तरह दिखाई नहीं देता, उजाले में देखें तो शायद इसका पता चले!" वल्लि ने व्यंग्य कसा।

"अरे, पोन्नन, वल्लि को डांटो मत, मैं जो कहने जा रहा हूं, उस बात का पता वल्लि को भी हो तो अच्छा रहेगा। तुम दोनों की मदद से मुझे एक बहुत बड़ा काम करना है। तुम दोनों हाथ बंटाओगे तो मैं बड़ा आभार मानूंगा। मरते दम तक नहीं भूलूंगा। कौन जाने, कभी मैं भी तुम्हारे किसी काम आ सकूं। संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो व्यर्थ हो। खोटा बेटा और खोटा सिक्का भी तो समय पर काम दे जाते हैं!" मारप्प भूपति ने कहा।

"अरे, आप भी कैसी बात मुंह पर लाते हैं, सेनापति? आपको कोई खोटा बेटा कहने का दुस्साहस कैसे कर सकता है?" पोन्नन ने कहा।

"दुस्साहस न सही, सत्साहस तो कर ही सकता है। लेकिन हां, ऐसा कौन बुद्धू होगा जो जलती लकड़ी से सिर खुजलाए!" वल्लि भुनभुनाई।

"ऐसी कौन-सी सेवा है सेनापति, जो मैं कर सकूं? मैं तो एक अकिंचन नाविक हूं।"

"पोन्नन का अर्थ तो कंचन होता है। कंचन होकर तुम अपने को अकिंचन कहो तो कौन विश्वास करेगा? कोई तुम्हारे कंचन-से तन-मन को पिघला ले तो एक बड़ा साम्राज्य ही आसानी से खरीदा जा सकता है।" वल्लि चुप न रह सकी, बोल उठी।

मारप्प भूपति भी हंस पड़ा और बोला, "हां, पोन्नन! वल्लि ने पते की बात कही। सच पूछो तो तुम्हारा नाम ही तुम्हारा वैरी है। अच्छा, जाने दो इन बातों को···मैं क्या कह रहा था? हां···वे कपटी संन्यासी हैं न, इतना-भर बता दो कि वे कहां रहते हैं? मैंने चक्रवर्ती की कुमारी से वादा किया है कि उन्हें पकड़कर उनके सामने खड़ा कर दूंगा। कुन्दवि देवी, तुम और वल्लि दोनों पर बहुत नाराज़ हैं। तुम मेरे इस काम में मदद करो तो तुम्हारे बारे में उनसे ऐसी बातें करूंगा कि उनका गुस्सा उतर जाय।"

"सेनापति, हम तो नाव चलाकर जीवन निर्वाह करते हैं। किसी का गुस्सा हमारा क्या करेगा?" पोन्नन ने पूछा।

"क्या यह नहीं बताओगे कि शिवयोगी कहां हैं?"

"पता होता तो बता देता।"

"वे कपट-वेषधारी शिवयोगी आज इस उरैयूर नगरी में ही हैं, क्या तुम कसम खाकर कह सकते हो कि नहीं हैं?"

"सो कैसे कहें? साधु महाराज ठहरे जादू-टोना जानने वाले। किसे पता कि वे कब कहां रहते हैं?" वल्लि ने उत्तर दिया।

"सच, तुम्हें पता नहीं कि वे इस समय कहां होंगे?"

"हां, बिलकुल पता नहीं है।" पोन्नन और वल्लि एक साथ बोले और सच बोले। उन्हें इस बात का पता था ही कहां?

"पोन्नन, तुम्हारी इतनी मजाल! याद रखो, मैं भी मर्द हूं। एक-न-एक दिन उस जटा-जूट-धारी कपटी संन्यासी को रंगे हाथों पकड़ ही लूंगा और दाढ़ी-मूंछ उखाड़कर उनका असली रूप प्रकट कर दूंगा। तब तुम दोनों को भी यों ही न छोड़ूंगा!" गुस्से में बड़बड़ाता और पैर फटकारता हुआ मारप्प भूपति वहां से चला गया। सारी बातों को याद करके वल्लि हंस पड़ी और बोली, "आहा! सचमुच शिवयोगी की दाढ़ी-मूंछ और जटा-जूट उतार फेंकी जाय···देखने वाला तुरन्त गश खाकर गिर पड़ेगा!"

"वल्लि, वे साधु महाराज कौन हैं? तुम रोज़ बहाना कर देती हो कि आज बताऊंगी, कल बताऊंगी!" पोन्नन ने पूछा।

"पहले तुम बताओ कि पेटी के अन्दर क्या है? बाद को मैं बताऊंगी कि

शिवयोगी कौन हैं।" वल्लि ने कहा।

"उसकी याद करता हूं तो मन दुखी हो जाता है, यदि वह पेटी न मिली तो···हाय, मैं महारानी को मुंह कैसे दिखाऊंगा ?"

"ऐसी कौन-सी निराली चीज़ है उस पेटी में ? बताओ न !"

"वह विचित्र पेटी है वल्लि, सचमुच विचित्र पेटी है। उसके अन्दर चोल-वंश की परम्परागत अमूल्य निधि है। करिकाल चोल चक्रवर्ती की तलवार और महर्षि तिरुवल्लवर-रचित तमिल-वेद 'तिरुक्कुरळ' की पोथी है। पार्थिव महाराज रणभूमि को चले तो वह पेटी महारानी अरुल्मोलि के हाथों सौंपते गए। उन्होंने कहा था कि युवराज विक्रम जब बड़ा होकर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करे तो उसे दे देना।"

वल्लि ने कहा, "सो तो ठीक है। पर जो चीज़ इतने दिन राजमहल में रखी रही, उसे उठा लाने के लिए महारानी ने क्यों कहा ? क्या युवराज के पास भेजने का विचार है ?"

"युवराज के पास भेजें कैसे ? कौन जानता है कि वे हैं कहां ? भगवान् जाने, बेचारे युवराज किस निर्जन टापू में क्या-क्या कष्ट भोग रहे होंगे ?···विक्रम के पास भेजने के विचार से नहीं वल्लि, महारानी को जब इसका पता लगा कि पल्लव-चक्रवर्ती उरैयूर पधार रहे हैं, तब उन्होंने मुझे यह आदेश दिया। पल्लव-कुल वालों की आदत क्या है, जानती हो ? कहीं कोई उत्तम शिल्पकारी का नमूना दीख जाय तो बस, हड़प लेते हैं। शिल्पी और चित्रकारों को अपने देश ले जाते हैं। दीवारों पर जो चित्र बने हैं, बस वे ही बच पाते हैं। चाहने पर भी उन्हें कैसे ले जायं ? इसीलिए हमारे पार्थिव महाराज ने उरैयूर में मात्र एक चित्र-मंडप बनवाया था···।"

"हाय, हाय ! मुझे तो इस बात का पता ही न था ! तुमने भी तो कभी नहीं बताया। अब क्या होगा ?"

"बताता कैसे ? इसीलिए तो मैं शिवयोगी के हाथ में पेटी देने से हिचक रहा था। तुम्हींने 'दे दो, दे दो' की रट लगाकर मुझे विवश कर दिया !"

"मैं क्या करती ? उस समय मुझे और कुछ सूझा ही नहीं। पर मेरा दिल कहता है कि पेटी हमें सही-सलामत मिल जायगी।"

"मिल जाय तो ठीक है। नहीं तो हम महारानी को मुंह नहीं दिखा सकते। हां, वे शिवयोगी कौन हैं, वल्लि ? उन पर तुम कौन-सा सन्देह करने लगी हो ?" पोन्नन ने पूछा।

वल्लि ने पोन्नन के कानों में कुछ कहा। सुनकर पोन्नन को जो असीम आश्चर्य हुआ, उसके भाव उसके मुख पर दीखने लगे। ठीक उसी समय बाहर घोड़ों की टापों की आवाज़ और पालकी ढोने वालों के वार्तालाप की ध्वनि सुनाई पड़ने

लगी। पोन्नन और वल्लि विस्मय में डूबे कुटिया से बाहर आये।

बाहर आकर उन्होंने जो दृश्य देखा वह देखना पार्थिव महाराज के जाने के बाद दुर्लभ-सा हो गया था। उरैयूर की ओर से कावेरी-तट के मार्ग पर होता हुआ राज-परिवार आ रहा था। घुड़सवार, प्यादे, झंडे-विरुद आदि राज-चिह्नों के वाहक, शंख-दुन्दुभि आदि वाद्यों के वादक, चंवर डुलाने वाली चेरियां आदि सभी पंक्ति बनाकर आ रहे थे। उनके बीच राज्य-चिह्नों से युक्त बढ़िया किस्म के घोड़े थे जो राजाओं की सवारी के उपयुक्त थे और हाथी-दांत से बनी, मोतियों के वितान वाली पालकियां थीं, जो राजघराने की स्त्रियों के बैठने योग्य थीं।

सारा राज-परिवार नौका-घाट से लगे बगीचे में डेरा डालने की तैयारी करने लगा तो पोन्नन और वल्लि आश्चर्य में डूब गए। लेकिन उनके आश्चर्य का यहीं अन्त न हुआ। नदी में भी उस समय एक अनुपम दृश्य दिखाई पड़ रहा था।

उरैयूर की ओर से सजी-धजी अनेक नौकाएं हंसमाला की तरह तैरती हुई बढ़ी आ रही थीं। उनके बीच सिंह-ध्वजा फहराती हुई एक अतीव सुन्दर नाव को देखकर पोन्नन जान गया कि चक्रवर्ती और उनके परिजन पधार रहे हैं। पोन्नन का विचार था कि नौकाएं इसी नौका-घाट पर आकर लगेंगी। पर देखते-देखते उनका रुख बदल गया। नौकाएं उस पार बसंत-द्वीप को लक्ष्य करके चलने लगीं। चक्रवर्ती बसंत-द्वीप की ओर लक्ष्य करके क्यों जा रहे हैं? क्या महारानी से मिलेंगे? यही सोचता हुआ पोन्नन बगीचे में गया और सिपाहियों से पूछ-ताछ करने लगा। उसने जो सोचा था, वह सच ही निकला। वहां उसे यह भी पता चला कि महारानी अरुल्मोलि से मिलने चक्रवर्ती के साथ कुन्दवि देवी, चिरुत्तोंडर, उनकी धर्मपत्नी आदि भी बसंत-द्वीप गए हैं। यह भी मालूम हुआ कि वे लोग वहां से लौटकर इसी नौका-घाट पर आयेंगे। चिरुत्तोंडर यहां से सीधे पूर्वी चोल देश की तीर्थयात्रा पर चल पड़ेंगे और चक्रवर्ती कुन्दवि को साथ लेकर उरैयूर लौट जायंगे।"

पोन्नन का जी उसी क्षण बसंत-द्वीप को चल पड़ने और वहां की सारी घटनाएं देखने के लिए उतावला हो उठा। उसने कुटिया में जाकर वल्लि को अपने मन की इच्छा बताई तो वल्लि ने कहा, "बहुत खूब! चक्रवर्ती जब वहां स्वयं गए हैं तब बिना उनकी आज्ञा से तुम वहां कैसे जा सकते हो? ऐसी कौन-सी ज़रूरत है जाने की? आप ही सारी बातों का पता चल जायगा। उतावले न बनो!"

वल्लि ने मना कर दिया तो पोन्नन अपने मन की उतावली को दबाकर रह गया। कुछ देर बीतने के बाद बसंत-द्वीप के नौका-घाट पर कोलाहलपूर्ण जनरव हुआ और अनेक लोग नावों पर सवार हुए। नावें इस पार को आने लगीं।

वल्लि और पोन्नन आने वाली नावों पर आंखें गड़ाये बैठे थे। नावें निकटतर आती गईं तो उन पर बैठे व्यक्तियों की आकृतियां भी स्पष्ट दीखने लगीं। जिस

नाव पर सिंह-ध्वजा फहरा रही थी उस पर चक्रवर्ती और मुंडे सिर वाले एक साधु महाराज बैठे थे। दोनों की दृष्टि दूर नाव पर पड़ी तो देखा कि उसमें तीन महिलाएं बैठी हैं। एक तो कुन्दवि देवी थी, दूसरी थी अधेड़ उम्र की एक शिव-भक्तिन। लेकिन यह तीसरी महिला कौन बैठी है? अरे, महान् आश्चर्य! यह महारानी अरुल्मोलिदेवी तो नहीं?

हां, वे अरुल्मोलिदेवी ही थीं। नावें किनारे लगीं। लोग उनमें से उतरे। पोन्नन और वल्लि की आंखें और किसी पर न लगीं। उन्हें और किसी का ध्यान भी न था। वे अरुल्मोलिदेवी के पैरों पड़कर उठे और उन्हीं की तरफ अपलक नेत्रों से देखते खड़े रहे।

अरुल्मोलिदेवी उन्हें देखकर भरे कण्ठ से बोलीं, "पोन्नन! वल्लि! मुझसे यहां अकेले नहीं रहा जाता। यह बसंत-महल काटने दौड़ता है। मैं देवताओं के धामों की तीर्थयात्रा पर जा रही हूं, तुम लोग मेरी चिन्ता न करना। इसी नौका-घाट पर रहना। शायद फिर लौटकर आऊं···तो···"

पोन्नन और वल्लि की आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बहती देखकर अरुल्मोलिदेवी की भी आंखें भर आईं। वे कुछ बोल न सकीं, गला एकदम रुंध गया। पास खड़ी तपस्विनी का हाथ पकड़कर आगे बढ़ गईं।

उस दिन कावेरी के नौका-घाट पर आंसुओं की धारा ऐसी बही कि वह नदी की धारा से होड़ करने लगी।

चक्रवर्ती और चिरुत्तोण्डर एक-दूसरे से विदा हुए तो उनके नेत्रों से भी आंसू की धारा बही। चिरुत्तोण्डर की पत्नी और अरुल्मोलिदेवी से कुन्दवि ने विदा ली तो उन तीनों की आंखों से बरसाती नदी बह चली।

पूर्व दिशा की ओर जाने वाले पहले रवाना हुए। चिरुत्तोण्डर एक पालकी पर बैठे और उनकी धर्मपत्नी और अरुल्मोलिदेवी दूसरी पालकी पर। जब पालकियां चलने लगीं तो आगे-पीछे अंग-रक्षक घुड़सवार और साथ-साथ दास-दासियां और परिजन चले।

पालकियां थोड़ी ही दूर गई होंगी कि पोन्नन को एक बात का स्मरण हो आया। वह दौड़ा हुआ महारानी अरुल्मोलि की पालकी के निकट पहुंचा तो देवी ने पालकी रुकवाकर पोन्नन से पूछा, "पोन्नन, क्या बात है? इतनी तेज़ी से दौड़ते क्यों आए हो?"

"देवी···देवी···"—इसके आगे पोन्नन के मुंह से बात नहीं निकली।

"मालूम होता है, कोई ज़रूरी बात कहना चाहते हो। निडर होकर कहो। इन देवी के सामने बताने में कोई हर्ज नहीं है।" महारानी ने आश्वासन देते हुए कहा।

"देवी, पेटी के सम्बन्ध में आपने कहा था न?"

"हां, मिल गई क्या ?" महारानी अपनी उत्सुकता न दबा सकीं।

"हां···नहीं। जल्दी ही मिल जायगी। उसे···" पोन्नन की ज़बान लड़खड़ा गई।

अरुल्मोलि थोड़ी देर के लिए सोच में पड़ गईं। फिर बोलीं, "पोन्नन, वह पेटी तुम्हीं अपने पास सुरक्षित रखे रहो। मैं तो पहले ही उसे तुम्हीं को सौंपना चाहती थी। शायद···शायद···मेरी अनुपस्थिति में···वह आए···तो···" रानी आगे कुछ न कह सकीं और सुबक-सुबककर रोने लगीं।

"जैसी आज्ञा, देवी ! युवराज के हाथों उसे सुरक्षित सौंप दूंगा।" पोन्नन भी रोते-रोते बोला।

पालकी आगे बढ़ गई।

पोन्नन लौटा तो देखा कि सड़क पर पालकी के निकट खड़ी कुन्दवि आंसू बहा रही है और चक्रवर्ती उसे सान्त्वना दे रहे हैं।

"मैं मन-ही-मन खुश हो रही थी कि मुझे मां मिल गई। पर मुझ अभागिन का ऐसा भाग्य कहां ?" पोन्नन के कानों में भी कुन्दवि के ये शब्द पड़े।

सान्त्वना देकर चक्रवर्ती ने कुन्दवि को पालकी पर चढ़ा दिया और स्वयं घोड़े पर सवार हो गए। दोनों उरैयूर की तरफ चल पड़े।

पोन्नन अपनी कुटिया के अन्दर पहुंचा तो देखा कि वल्लि बैठी आंसुओं की गंगा बहा रही है। "हाय-हाय ! मुझे पहले ही इस बात का पता क्यों न चला ? पता चला होता तो मैं भी महारानी के साथ ही चली गई होती। मेरे लिए यहां क्या रखा है ? मैं यहां पड़ी हुई क्यों रोऊं ?" वल्लि विलख रही थी।

पोन्नन गला साफ़ करके धीरज बंधाता हुआ बोला, "आखिर औरत औरत ही है, यह तुमने दिखा दिया। अपने साहस की जो डींग मार रही थीं, वह सब कहां चला गया ? सारी शेखी किरकिरी हो गई न ?"

उसी समय दुबारा घोड़े की टाप सुनाई दी तो दोनों बाहर आए। चक्रवर्ती घोड़े पर सवार थे। उन्होंने पूछा, "पोन्नन, तू इसी नौका-घाट पर रहेगा न ? कहीं चला तो नहीं जायगा ?"

"यहीं रहूंगा, प्रभु ! कहीं नहीं जाऊंगा।" पोन्नन ने विनयपूर्ण स्वर में उत्तर दिया।

"वह देख, शाही नाव है, मैंने उसे यहीं छोड़ देने का आदेश दिया है। कुन्दवि-देवी शायद वसंत-महल में आकर निवास करना चाहें। अगर आईं तो तुझे ही उनके लिए यह नाव खेनी होगी। समझा ?"

"जैसी आज्ञा, प्रभु ! दास प्रस्तुत है।"

"एक और बात है, एक शिवयोगी हैं मेरे मित्र। उन्होंने तुझे सौंपने के लिए एक पेटी दी है। वह उस नाव के अन्दर है, तू जाकर ले ले।"

इतना कहकर चक्रवर्ती ने वल्लि की ओर देखा। वल्लि उन्हीं पर आंखें गड़ाए

थी। जब उसने देखा कि चक्रवर्ती उसकी ओर देख रहे हैं तो झट से सिर झुका लिया। लज्जा से उसका चेहरा लाल हो गया और वह मुस्करा उठी।

दूसरे ही क्षण चक्रवर्ती का घोड़ा हवा से बातें करने लगा।

उन्नीस

नील महासागर में सुन्दर राजहंस की भांति शुभ्र, श्वेत पाल उड़ाता हुआ एक जहाज़ पश्चिम की ओर बढ़ा जा रहा था। सूर्योदय की वेला थी। सूर्य के स्वागत में प्रकृति ने तरह-तरह की रंगोलियों से आकाश को सजा दिया था।

जहाज़ के यात्री बड़े उतावले दिखाई दिये। उनमें अधिकतर व्यापारी थे। सब लोग अपनी-अपनी गठरियां उठाकर जहाज़ से उतरने की तैयारी में लगे थे। कुछ लोग जहाज़ की ऊपरी छत पर जाकर अत्यन्त आतुरता से पश्चिमी दिशा की ओर देख रहे थे।

व्यापारियों के उस समाज में एक युवक भी था। उसकी उम्र कोई बीस-इक्कीस साल की होगी। उसके युवा-मुख पर तेज फूट रहा था। वेष-भूषा और सामान की गठरी देखकर तो लगता था कि वह व्यापारी है। पर शक्ल-सूरत से राजघराने का कोई व्यक्ति लगता था। और सचमुच वह राजघराने का था भी। वह और कोई नहीं, स्वर्गीय पार्थिव महाराज का पुत्र, चम्पक द्वीप का तत्कालीन शासक विक्रम था।

विक्रम को चम्पक द्वीप पहुंचे कोई तीन वर्ष हो गए थे। तीन ही वर्षों में विक्रम के योग्य सुशासन के कारण चम्पक द्वीप सभी क्षेत्रों में काफ़ी उन्नति कर चुका था और उसकी कीर्ति चारों दिशाओं में खूब फैल चुकी थी।

विक्रम इन तीन वर्षों में यद्यपि अपने राज्य की उन्नति में जी-जान से लगा रहा तथापि अपनी जननी और जन्म-भूमि को एक पल के लिए भी न भूला था। पल्लव-साम्राज्य की राजधानी के राज-मार्ग पर जिस युवती को उसने देखा था, उसके चन्द्र-मुख को भला वह कैसे भूल सकता था?

रहते-रहते चम्पक द्वीप में विक्रम अपने को अकेला महसूस करने लगा। अनेक लोगों के बीच रहते हुए भी लगता कि वह निर्जन स्थान में एकाकी पड़ा है। विजय और कीर्ति उसे प्राप्त थी। लोगों पर उसका अधिकार था और लोग उसकी प्रशंसा करते न अघाते थे। इतना सब होते हुए भी उसके मन में संतोष न होता था। मन सूना-सूना लगता था और यह सूनापन दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। बार-बार उसके मन में विचार उठता, काश! वह बड़ी-बड़ी आंखों वाली युवती मेरे पास होती···!

दो माह पहले इस स्मृति को भुला देने का एक अच्छा-खासा मौक़ा उसके

हाथ लगा। एक रात विक्रम सो रहा था तो सपने में अरुल्मोलि महारानी आईं। उनका शरीर रानियों के योग्य आभूषणों और वस्त्रों से अलंकृत न था। वे श्वेत वस्त्र पहने थीं और विभूति तथा रुद्राक्ष धारण किये थीं। लगता था कि कोई संन्यासिनी है जो शिव की उपासिका बन गई है। मुख पर पहले से भी अधिक तेज़ विद्यमान था। 'नमः शिवाय' मंत्र का जाप कर रही थीं। विक्रम के निकट आकर, करुणा-भरे नेत्रों से उसे देखती हुई बोलीं, "हां बेटा, मुझे विदा दो।" विक्रम की कुछ समझ में न आया और उनसे चकित होकर पूछा, "मां, इतने दिनों के बाद तो तुम्हें देखा है, ऐसी भी क्या जल्दी है कि विदा मांग रही हो? कहां जाने वाली हो?" अरुलमोलिदेवी ने उसका कोई उत्तर न देते हुए कहा, "बेटा, मैंने एक वचन दिया है। उसे तुम्हें पूरा करना चाहिए। इसलिए तुम्हें देखने और तुमसे मिलने आई हूं।"

"कौन-सा वचन दिया है, मां? किसे दिया है?"

"चक्रवर्ती की बेटी कुन्दवि से तुम विवाह कर लो!"

सुनकर विक्रम चौंक पड़ा और बोला, "यह क्या कहती हो, मां? चक्रवर्ती की बेटी से मेरा सम्बन्ध? तुमने किसे यह वचन दिया है?"

"शिवयोगी को दिया है बेटा! श्री रामचन्द्र ने जैसे अपने पिता का वचन पूरा किया, वैसे ही तुम्हें चाहिए कि मेरा वचन पूरा करो!"

इतना कहकर अरुल्मोलिदेवी विक्रम के निकट आईं और उसके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। उसी समय विक्रम की आंख खुल गई और जब उसने देखा कि वह मात्र सपना था तो उसे सन्तोष का अनुभव हुआ।

सपने में जो भी था, वह चित्त का भ्रम ही था—इसमें सन्देह नहीं। सम्भव है कुछ पुरानी बातें और स्मृतियां इस प्रकार का निरर्थक सपना बनकर आई हों। नहीं तो, और जो कुछ भी हो, चक्रवर्ती की पुत्री से विवाह करने की आज्ञा मां क्यों देतीं? और इस सम्बन्ध में शिवयोगी को वह वचन क्यों देतीं? पर उस दिन से विक्रम के मन में अपनी मातृभूमि लौट जाने की उत्कंठा तीव्र हो उठी। उसके मन में आया कि जाकर मां को यहीं बुला लाये। साथ ही पिताजी की दी हुई चोल देश के शौर्य की निशानी वह तलवार तथा तिरुक्कुरल की पोथी भी ले आए। उसने अपने मन का यह विचार अपने मन्त्री तथा प्रधानों के सामने रखा। उन्होंने पहले तो अनेक आपत्तियां कीं। पर विक्रम को वे उसके निश्चय से न डिगा सके। विक्रम ने हंसी-खेल में जब कहा कि "शायद लौटते हुए मैं आप लोगों के लिए महारानी भी साथ ले आऊं।" तब उन लोगों को कुछ सन्तोष हुआ।

फिर क्या था, मातृभूमि की यात्रा के लिए सब सुविधाओं से सम्पन्न एक व्यापारी जहाज़ तैयार किया गया। उस जहाज़ में जौहरी का वेष धारण करके विक्रम रवाना हुआ। साथ में व्यापारियों के वेष में कुछ अंगरक्षक और चंपक द्वीप

के कुछ व्यापारी भी चले।

जहाज़ किस बंदरगाह में लगाया जाय, इस बात की कुछ चर्चा चली। कुछ लोगों ने राय दी कि चूंकि विक्रम का प्रधान लक्ष्य उरैयूर जाना ही है इसलिए नागपट्टनम के बन्दरगाह में उतरना अच्छा होगा। लेकिन विक्रम ने कहा कि हमें मामल्लपुरम उतरना चाहिए। उसने बचपन में मामल्लपुरम की अनुपम शिल्प-कला के सम्बन्ध में सुन रखा था और उन कृतियों को देखने की उसे बहुत दिनों से इच्छा थी। जब पल्लव-सैनिकों ने उसे बन्दी के रूप में मामल्लपुरम के बन्दर-गाह में जहाज पर चढ़ाया था तो उसे इस बात का बहुत दुःख हुआ था कि उस नगर की उत्तम शिल्प-कृतियों को देखे बिना ही उसे जाना पड़ रहा है। इस बार वहां उतरने पर शायद वह अपनी इच्छा पूरी कर सके।

इसके अतिरिक्त एक और बात भी उसके मन में प्रमुख थी। वह शिल्पियों और चित्रकारों को चंपक द्वीप ले जाना चाहता था। उसकी बड़ी अभिलाषा थी कि धीरे-धीरे चंपक द्वीप को शिल्प और चित्रकारी के अद्भुत नमूनों से युक्त नगरी बना दे। श्रेष्ठ कलाकार मामल्लपुरम को छोड़ और कहां मिल सकते थे? चोल देश तो अपना प्राचीन वैभव खो चुका है और उजाड़-सा पड़ा है।

और इनसे भी बढ़कर विक्रम के मन में मामल्लपुरम में उतरने की इतनी बलवती इच्छा का कारण सम्भव है कोई और भी रहा हो। कांची नगरी के राज-मार्ग और मामल्लपुरम के बन्दरगाह पर जिस युवती को चंपक द्वीप जाने के पहले देखा था, उसे दुबारा देख पाने की लालसा भी शायद उसके मन में कहीं छिपी रही हो। सम्भव है, विक्रम को अपनी इस लालसा का पता भी न रहा हो। संसार में ऐसा कौन है जो दावे के साथ कह सकता है कि उसने मनुष्य-हृदय के गहनतम अन्तर के सभी मर्म जान लिये हैं!

बीस

शिल्प-कला की दृष्टि से उत्कृष्ट नगरी मामल्लपुरम में प्रतिवर्ष की तरह उस वर्ष भी कला-प्रदर्शनी हो रही थी। जनता के उत्साह और आनन्द की सीमा न थी। दूर-दूर से लोग कला-प्रदर्शनी देखने आए थे। कला की सुन्दर कृतियों, पत्थरों पर अद्भुत कौशल से खुदे हुए शिल्प-चित्रों और जगह-जगह पर आयोजित संगीत तथा नृत्य-उत्सवों का रस लेती हुई भीड़ इधर-उधर घूम रही थी। भीड़ में वह विदेशी जौहरी भी था, जो विस्मय-भरे नेत्रों से इन दृश्यों का आनन्द लेता हुआ टहल रहा था। उसके साथ अपने सिर और कंधों पर गठरियां लादे एक बौना चल रहा था। जौहरी उससे इशारे से बातें करता था, जिससे पता चलता था कि गूंगा-बहरा है। शायद इसीलिए जौहरी ने उसे अपना नौकर

चुना था ताकि दूसरों को उसके कार्यक्रम के बारे में कुछ पता न लग सके।

हां, उस युवक जौहरी का सारा आचरण संदेह उत्पन्न करता था। जहां कहीं वह उत्तम शिल्पकारी के नमूने देखता, वहीं खड़ा हो जाता और उन्हें देखने के बहाने पास खड़े शिल्पकारों और चित्रकारों पर अपनी पैनी दृष्टि डालता चलता। उनमें यदि कोई अकेला मिल जाता तो उसकी पीठ पर थपकी देकर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करके कहता, "तुमसे एक बात करनी है। चलो, कुछ आड़ में चलें।"

जौहरी की गम्भीर मुद्रा और तेजस्वी चेहरे को देखकर उसकी बात टालने का भला किसमें साहस था ? अत: उसके प्रस्ताव के अनुसार वे किसी निर्जन स्थान में पहुंचते। वहां जौहरी समुद्र-पार के अपने द्वीप और उसकी धन-धान्य-समृद्धि का ऐसा सुन्दर वर्णन करता कि वे सुनकर मुग्ध हो जाते। फिर वह बताता कि वहां करिकाल चोल के जमाने में गए तमिष् लोग ही वास करते हैं। उन्हें किसी बात की कमी नहीं है। कमी केवल इस बात की है कि वहां मातृभूमि-जैसे मन्दिर और कलाकृतियां नहीं हैं।

"तुम वहां चलोगे ? चलो तो लौटते समय बड़े धनाढ्य होकर लौट सकते हो। वहां ग़रीबी नाम की कोई चीज ही नहीं। गली-गली में हीरे जवाहरात बिखरे पड़े रहते हैं।" इतना कहकर जौहरी बौने के कंधे में लटकती गठरी में से मुट्ठी-भर रत्न उठाकर शिल्पकार को दिखाता।

जौहरी की बातों से ही प्राय: वह शिल्पी मुग्ध हो गया होता और मुट्ठी-भर रत्न देखने के बाद तो उसकी बातों में आकर अपनी मंजूरी दे देता। जो शिल्पी अपनी मंजूरी दे देता, उसके हाथ में जौहरी चुनकर एक बड़ा-सा रत्न रखता और कहता, "आगामी अमावस्या को व्याघ्रपताका फहराते हुए एक जहाज़ इस बन्दरगाह में आएगा। जहाज पर यह रत्न दिखाना ! तुम्हें बिठा लेंगे।"

कला प्रदर्शनी के तीनों दिन जौहरी इसी काम में लगा रहा। तीसरे यानी विजय-दशमी के दिन वह राजमार्ग पर जा रहा था कि अचानक एक अप्रत्याशित घटना घटी, पर कौन जाने वह अप्रत्याशित थी या प्रत्याशित !

मार्ग पर जाते हुए जौहरी को पीछे से कोलाहल सुनाई पड़ा तो उसने अपनी गरदन घुमाकर देखा। अंगरक्षक सैनिकों से घिरी एक पालकी आ रही थी। उसने उसी समय जान लिया कि पालकी में वही युवती है, जो उसके हृदय-मन्दिर में आसन जमाये बैठी है। उसका हृदय पुलकित हो गया और हर्षातिरेक से आंखों में आंसू भर आए। उसने बहुत-कुछ सोच रखा था कि ऐसा मौका आया तो वह क्या करेगा ? पर समय पर कुछ भी काम न आया। वह मार्ग के एक किनारे जा खड़ा हुआ और पालकी की तरफ अपनी दृष्टि भी न उठाई।

यद्यपि उसने आंखें उठाकर नहीं देखा, तथापि जब पालकी उसके पास से

गुज़री तब उसने अनुभव किया कि दो विशाल आंखें उसे घूर रही हैं। उसकी तीव्र इच्छा हुई कि मुड़कर देखे। पर उसने बलपूर्वक अपने मन को वश में रखा और दूसरी दिशा में देखता रहा। पालकी जब कुछ आगे बढ़ गई तब उसने अपनी दृष्टि उस ओर दौड़ाई तो क्या देखा कि पालकी में बैठी युवती उसको घूर रही है। दूसरे ही क्षण जौहरी की आंखें फिर भूमि की ओर झुक गईं।

पर पालकी आगे नहीं बढ़ी, रुक गई। पालकी के साथ जाते हुए सैनिकों में से एक सैनिक जौहरी के पास आकर बोला, "भाई ! देवी तुमसे कुछ पूछना चाहती हैं। ज़रा पालकी तक तो चलो !"

जौहरी ने पालकी के निकट आकर एक बार आंख उठाकर उसी युवती की तरफ देखा। आहा ! युवती की दृष्टि कैसी पैनी थी ! इसीलिए तो लोग स्त्रियों के नेत्रों की तुलना खड्ग और बरछे से करते हैं !

कुन्दवि ने अपनी पैनी दृष्टि उस पर ऐसे डाली, मानो हृदय में प्रवेश करके उसमें छिपे रहस्य को जान लेना चाहती हो। थोड़ी देर इसी प्रकार मौन देखते रहने के बाद उसने पूछा, "तुम कौन हो ? शक्ल-सूरत से तो इस देश के नहीं लगते।"

"हां, देवी। समुद्र-पार के चम्पक द्वीप का रहने वाला हूं मैं। रत्न-व्यापार करने यहां आया हूं। मेरा नाम है देवसेन।" रटे हुए पाठ की तरह जौहरी ने दुहरा दिया।

कुन्दवि का हृदय धड़कने लगा और उसने दुबारा पूछा, "तुमने अपने को किस द्वीप का बताया ?"

"चम्पक द्वीप का।"

"चम्पक द्वीप···चम्पक द्वीप···नाम तो कहीं सुना है। उसके शासक कौन हैं ?"

"चम्पक द्वीप का पुराना राजवंश समाप्त हो गया। चोल देश के युवराज विक्रम ही अब हमारे शासक हैं।"

जौहरी के मुख से यह सुनकर कुन्दवि के मुख पर एक अद्वितीय आभा फैल गई। जौहरी ने उसे देखा। 'उस निर्वासित युवक की बात अब भी उसे याद है ? लेकिन यह है कौन ? इतनी कान्ति और सौन्दर्य से सम्पन्न यह शायद···' सन्देह ने जौहरी का दिल दहला दिया।

इतने में कुन्दवि ने पूछा, "तुमने अपने को जौहरी ही बताया है न ?"

"हां देवी, इस बौने के सिर पर जो गठरी है, उसमें बहुमूल्य रत्न हैं। आप कहें तो अभी दिखाने को तैयार हूं।"

"अभी नहीं। सड़क पर भीड़ इकट्ठी हो जायगी। शाम को राजमहल में आओ तो कुछ देखूंगी।" कुन्दवि ने कहा।

"बहुत अच्छा। वहां आकर किसका नाम लूं ?"

"कहना कि कुन्दवि की सहेली माधवी ने बुलाया है तो मेरे पास पहुंचा दिये जाओगे।"

"कोई रोकेगा तो नहीं ?"

"नहीं, कोई नहीं रोकेगा।" पर तुम भरे बाजार में इस तरह रत्नों की खली गठरी लिये घूम रहे हो, क्या तुम्हें चोरों का डर नहीं है ?"

"वाह ! आप भी कैसी बातें करती हैं ? नरसिंह पल्लव चक्रवर्ती के शासन में किसी को चोरों का भी भय रहता है ?" जौहरी ने थाह पाने के विचार से पूछा।

कुन्दवि मुस्कुराती हुई बोली, "अच्छा ! हमारे चक्रवर्ती की सुकीर्ति समुद्र पार देशों में भी फैली है ? बड़ी खुशी की बात है ! तुम शाम को राजमहल में आओगे ?"

"ज़रूर आऊंगा।" जौहरी ने उत्तर दिया।

कुन्दवि का आदेश पाकर पालकी आगे बढ़ चली। जौहरी जहां खड़ा था, वहीं से पालकी को तब तक एकटक देखता रहा जब तक कि वह आँखों से ओझल न हो गई।

"अरे भाई, कितनी देर एक ही तरफ देखते रहोगे ? गर्दन दुखने लगेगी !" किसी का कर्कश स्वर सुनकर जौहरी चौंक उठा, मानो जलते अंगारे से पैर जल गया हो। मुड़कर देखा तो काले रंग के एक घोड़े पर बैठा मारप्प भूपति उसे अवहेलना की दृष्टि से देख रहा था।

चम्पक द्वीप में रहते समय विक्रम मातृभूमि और अपने परिजनों के विषय में अक्सर सोचा करता था। जब कभी मारप्प भूपति की याद आती तो उसका हृदय घृणा से भर जाता और वह इस विचार से कुढ़ता कि चोल-वंश में ऐसे व्यक्ति का जन्म क्यों हुआ !

वही मारप्प भूपति जो उसकी घृणा का पात्र बना था, अब अप्रत्याशित रूप से अचानक उसके सामने आ खड़ा हुआ था। न जाने विक्रम के मन में कौन-कौन से विचार उठे ! मारप्प भूपति ने उससे पूछा, "अजी तुम कौन हो ? किस देश के हो ? क्या नाम है तुम्हारा ? इस नगरी में क्यों आये हो ?"

"आप जानना ही चाहते हैं तो सुनिए—मेरा नाम देवसेन है, मैं जौहरी हूं और रत्न-व्यापार करने आया हूं।"

"अच्छा, यह बात है ? रत्नों का व्यापार करने आए हो ? अरे, तो जौहरी को यहां के शिल्पियों को अलग-अलग ले जाकर उनसे बातें करने की कौन-सी ज़रूरत पड़ गई ? पल्लव देश के शिल्पियों को बहका-फुसलाकर ले जाने वाले को नरसिंह चक्रवर्ती कौन-सा दंड देंगे, मालूम है ?" मारप्प भूपति ने पूछा।

"मुझे कैसे मालूम होता ? मैं तो विदेशी हूं। पर क्या मैं इतना पूछ सकता

हूं कि इतनी सब पूछ-ताछ करने वाले आप कौन हैं ?"

मारप्प भूपति ठठाकर हंस पड़ा और बोला, "अरे, क्या तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूं ? अच्छा, तो बताता हूं। वेण्णारु के किनारे रणभूमि में अपनी शक्ति से अनभिज्ञ होकर प्राण छोड़ने वाले स्वर्गीय पार्थिव महाराज का नाम सुना है ? उन्हीं का भाई हूं मैं और आजकल चोल देश का प्रधान सेनापति।"

इतना कहकर मारप्प भूपति ने जौहरी के मुंह पर आंखें गड़ाकर यह देखने का प्रयत्न किया कि उसके मुख के भावों में कुछ परिवर्तन तो नहीं हुआ ? कुछ नहीं दीख पड़ा तो बोला, "मेरी सुकीर्ति तुम्हारे कानों में पड़ी हो या न पड़ी हो, लेकिन शूरवीर स्वर्गीय पार्थिव महाराज की कीर्ति तो अवश्य ही पड़ी होगी।— क्या तुमने उनका नाम भी नहीं सुना ? अरे भाई, ऐसे किस दूर देश से आए हो कि उनका नाम तक तुम्हारे कानों में नहीं पड़ा ?"

जौहरी कुछ देर के लिए कुछ सोचता-सा खड़ा रहा। फिर मारप्प भूपति की ओर देखकर बोला, "हां, मैंने पार्थिव महाराज का नाम तो अवश्य सुना है। उनके पुत्र विक्रम ही अब हमारे चम्पक देश के राजा हैं और हम उनकी प्रजा। आप उन्हीं पार्थिव महाराज के भाई हैं ? मिलकर बड़ी खुशी हुई ! पर एक बात कह दूं, पार्थिव महाराज के विरुद्ध मेरे सामने हंसी-दिल्लगी में ही सही कोई अपशब्द न निकले।"

मारप्प भूपति के मुंह पर विस्मय की रेखा खिंच गई फिर भी अपने को संभालकर बोला, "ओहो ! तो इतने राजभक्त हो तुम ! तुम्हारे तो दर्शन मात्र से बड़ा पुण्य मिलेगा ! यही कारण है कि तुम्हें छोड़कर जाने की इच्छा नहीं होती। हां, तुमने अपना क्या नाम बताया ?"

"देवसेन।"

"देवसेन ? कितना सुन्दर नाम है। हां, राजकुमारी कुन्दवि ने रत्न खरीदने के लिए तुम्हें राजमहल में बुलाया है न ?"

"राजकुमारी कुन्दवि ? आप किसकी बात कर रहे हैं ?" जौहरी ने सचमुच आश्चर्य में पड़कर पूछा।

"अभी जो पालकी पर गईं उन्हीं की बात कर रहा हूं।"

"वह तो कुन्दवि की सहेली माधवी हैं न ?"

"ओहो ! तो उसने तुमसे सफेद झूठ बोला है। उसने अपने पिता के योग्य पुत्री साबित कर दिया है। यह निश्चित रूप से जान पड़ता है कि तुम इस देश के निवासी नहीं हो या इस देश से निकाले गए हो···" मारप्प भूपति ने देवसेन पर आंखें गड़ाकर पूछा, "अच्छा तुमने तो कहा था कि विक्रम तुम्हारे देश के राजा हैं, क्या उन्हें इस बात का पता है कि उनकी मां अरुल्मोलि पर क्या बीती है ?"

इस प्रश्न से मारप्प भूपति ने जिसकी आशा की थी, वह पूरी हुई। युवक जौहरी, जो अभी तक बुत बना खड़ा था और जिसके चेहरे पर कोई भाव-परिवर्तन नहीं हुआ था, यह सुनकर तड़प उठा और अत्यंत भय से आशंकित स्वर में पूछने लगा, "क्या हुआ ? रानी अरुल्मोलि को क्या हुआ ?"

मारप्प भूपति के होंठों पर कुटिल हंसी खेल गई।

इतने में पीछे बड़ी जोर का कोलाहल सुनाई पड़ा, अनेक कंठों से एक साथ जयघोष निकला, "वातापि का विध्वंस करके विजयश्री के गले जयमाला पहनाने वाले नरसिंह पल्लवेन्द्र की जय हो ! जय विजयी भव !" और सामान्य जनता में यह बात गूंज उठी कि चक्रवर्ती पधार रहे हैं, चक्रवर्ती पधार रहे हैं !

इक्कीस

चक्रवर्ती शानदार शाही हाथी पर सवार थे। हाथी मस्त चाल से झूमता चल रहा था। चक्रवर्ती इस समय बड़े लम्बे अरसे के बाद मामल्लपुरम पधारे थे। उनके आगमन की नागरिकों को कोई पूर्व-सूचना न थी। जब उन्हें इसकी खबर हुई तो उत्साह की कोई सीमा न रही। वे चारों ओर से चक्रवर्ती के हाथी को घेरकर जयघोष करने लगे।

यह हर्षनाद सुनना था कि मारप्प भूपति जौहरी को वहीं छोड़कर उसकी बातों का उत्तर दिए बिना ही अपने घोड़े पर वहां से चम्पत हो गया।

शाही हाथी भी जौहरी के पास से गुज़रकर आगे बढ़ गया तो जौहरी ने लम्बी सांस छोड़ी कि चलो, एक बड़ी विपत्ति टली ! भीड़ के छंटने तक वह वहीं खड़ा कुछ सोचता रहा। उसके मन में बहुत उथल-पुथल मच गई थी। खास तौर से मारप्प भूपति से यहां भेंट होना उसे बहुत अखरा। तो उसके चाचा अब चोल देश के सेनापति हो गए हैं ? उनके देशद्रोह का पुरस्कार उन्हें मिल गया ? पर उन्होंने उससे इस तरह की बातें क्यों कीं ? हो सकता है कि उन्होंने उसे पहचान लिया हो।···वह युवती क्या सचमुच राजकुमारी ही होगी ? उसने अपना असली नाम क्यों छिपाया ? राजमहल में आने के लिए इतना जोर दे गई है, इसका क्या मतलब है ? देवसेन को लगा कि उसके चारों तरफ खतरा-ही-खतरा है। सोचने लगा कि अगर ज्यादा दिन मामल्लपुरम में रहा तो हो सकता है व्यर्थ ही विपत्तियां मोल लेनी पड़ें। माता अरुल्मोलि के सम्बन्ध में मारप्प भूपति से जो बातें सुनी थीं उनसे उसे बड़ी पीड़ा पहुंची थी। अगर उसके पंख होते तो उसी क्षण उरैयूर उड़ जाता। उसने निश्चय किया कि पहले उरैयूर जाकर माता के दर्शन करे, बाकी काम उसके बाद देखे जायं।

चाचा मारप्प भूपति चोल देश के प्रधान सेनापति हो गए हैं, इस विचार ने

उसके मन को पुनः उद्वेलित कर दिया। पर वे मामल्लपुरम क्यों आए हैं? यहां क्या कर रहे हैं? वे जो चाहें करें, मुझे क्या? एक तरह से तो यह अच्छा ही है कि वे इस समय यहां हैं। उनके यहां रहते मुझे उरैयूर जाकर माता से मिलकर लौट आना चाहिए। आज ही यहां से चल पड़ूं तो अच्छा होगा। रास्ते में कहीं कोई घोड़ा मिल जाय तो और भी उत्तम रहेगा।

यह सब सोच-विचारकर विक्रम—देवसेन नामधारी विक्रम—उस सराय की ओर बढ़ा जहां वह ठहरा हुआ था। चलते-चलते वह बराबर आगे-पीछे देखता जाता था। कहीं घोड़े की टाप सुनाई देती तो वह भीड़ में छिप जाता था। इस प्रकार अपने को बचाता हुआ वह सराय पहुंचा और यात्रा के लिए जो चीजें इकट्ठी कर रखी थीं, उनकी गठरी बांध ली। सामान ढोने के लिए बौने को भी साथ लेकर वहां से निकल पड़ा। जब वह सराय के अन्दर गया था तो बौने ने आकर बाहर खड़े किसी आदमी से संकेत द्वारा कुछ कहा था जिसका विक्रम को पता न था।

विक्रम बौने के साथ जिस समय मामल्लपुरम से चला उस समय सूर्यास्त होने में एक प्रहर शेष था। नगर-द्वार पार करके बाहर के राजमार्ग पर पहुंचते-पहुंचते अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें स्वर्ण-वर्णित हो गईं।

उस जमाने में मामल्लपुरम से कांची और कांची से उरैयूर को कई राजपथ जाते थे। मामल्लपुरम से कांची जाने वाले मार्ग पर हमेशा लोगों का आवागमन रहता था। उस राजपथ पर एक के बाद एक बहुत-से गांव पड़ते थे। स्थान-स्थान पर मन्दिर और मठ थे, सराय और प्याऊ थीं, दूकानें और पाठशालाएं थीं। दूसरे देशों से आने वाले लोगों को तो ऐसा लगता था कि मामल्लपुरम से कांची तक एक ही बड़ा नगर बसा हुआ है।

बीच-बीच में अनेक छोटे-छोटे रास्ते इस राजपथ से निकलकर इधर-उधर जाते थे। मामल्लपुरम से थोड़ी ही दूर पर एक रास्ता राजपथ से निकलकर एक घने जंगल के बीच होकर जाता था। मामल्लपुरम से उरैयूर जाने वाले लोग यदि इस रास्ते से जाते तो कांची से थोड़ा आगे उरैयूर के राजपथ पर पहुंच सकते थे। इस रास्ते से जाने का लाभ यह होता था कि तीन-चार कोस की दूरी कम हो जाती।

लेकिन उस जंगली रास्ते से लोग आते-जाते न थे। खास तौर से रात के वक्त तो बिलकुल ही नहीं। मार्ग पर कई जगह हिंस्र पशुओं के उपद्रव का डर रहता था। इसके अलावा उस रास्ते पर भद्रकाली का एक प्रसिद्ध मन्दिर भी था जिसमें चक्रवर्ती की आज्ञा के विरुद्ध शाक्त और कापालिक मतावलम्बी नर-बलि चढ़ाते थे, यह किंवदंती फैली हुई थी और इसलिए रात के वक्त उस रास्ते से जाने में बड़े-बड़े वीर भी घबराते थे।

राजमहलों में पला विक्रम भला इन बातों के बारे में क्या जानता ? बौने को मार्ग-दर्शक बनाकर शाम के झुटपुटे के समय वह उस तिराहे पर आ पहुंचा जहां से जंगली रास्ता शुरू होता था। बौने ने इशारे से बताया कि इस रास्ते से जायंगे। पहले तो विक्रम ज़रा हिचका, फिर अपने मन को दिलासा देकर चल पड़ा कि आख़िर डरने की क्या बात है ! मां से जल्दी जाकर मिलने की लालसा उसके इस निर्णय में सहायक सिद्ध हुई।

रास्ते पर बढ़ते-बढ़ते दोनों तरफ का वन प्रदेश घना होता गया। कृष्ण पक्ष होने के कारण अंधकार भी तेज़ी से फैलने लगा और थोड़ी ही देर में चारों तरफ घना अंधेरा छा गया। लेकिन आकाश निर्मल था इसलिए तारों के प्रकाश में रास्ता दीख पड़ता था, फिर भी पथ के दोनों ओर के पेड़ों ने अंधकार को और भी घना बनाने में कुछ कसर न उठा रखी थी। उस वन-प्रदेश में असंख्य जुगनू ऐसे जगमगा रहे थे मानो वन-देवताओं ने अपने माया-जाल द्वारा सारे रास्ते को टिमटिमाते दीपों से प्रकाशित कर रखा हो।

जैसे-जैसे समय गुज़रता गया, विक्रम का वीर हृदय भी आशंकित होने लगा। कभी पत्तों की खर-खर सुनाई पड़ती, कभी हिंस्र पशुओं का गर्जन, तो कभी उल्लुओं की कर्कश बोली सुनाई पड़ती थी। वन-प्रदेश के निर्जन पथ पर कितनी दूर चलते रहें ? मार्ग कितना लम्बा है ? रात को कहां ठहरें ?—विक्रम ने उस मूक बौने से ये सारे प्रश्न करने चाहे। लेकिन अंधेरे में इशारे से बातें करना आसान नहीं था।

रात का पहला पहर बीत गया। विक्रम का और आगे जाने का मन न हुआ। वह सोच रहा था कि इस निर्जन वन में, इस घने अंधेरे में कहीं मुझ पर कोई आक्रमण न कर बैठे ! यहां तो क़दम-क़दम पर ख़तरा है। उसका विचार हुआ कि लौटकर राजपथ पर चला चलूं तो कैसा हो ? दिल में इस विचार ने ऐसा ज़ोर पकड़ा कि वह रुक गया और बौने के कंधे पर हाथ रखकर उसे भी रोका।

ठीक उसी समय कहीं दूर से घोड़े की टाप सुनाई दी।

बौना चौकन्ना होकर उस पर कान देने लगा। विक्रम के आश्चर्य का कोई ठिकाना न था—यदि वह बहरा होता तो इतनी हल्की आवाज़ उसे कैसे सुनाई पड़ जाती ?

झट विक्रम ने कमर से अपनी तलवार निकाली। उस घने अंधेरे में तलवार चमक उठी। कड़कते स्वर में विक्रम ने पूछा, "सच बता ! तू सचमुच बहरा है ? तुझे कानों से सुनाई नहीं देता ? सच न बताया तो यहीं इसी क्षण इस तलवार से तू मौत के घाट उतार दिया जाएगा।"

बौना ज़ोर से विकट हंसी हंसा। उसकी भयंकर हंसी सुनकर विक्रम के

शरीर का खून बरफ हो गया। पल-भर विक्रम किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रहा और उसी क्षण बौना बड़ी फुर्ती से छलांग मारकर दस कदम पीछे हट गया। फिर अपने दोनों हाथ होंठों से लगाकर एक विचित्र, भयावह ध्वनि निकालने लगा।

सुनकर विक्रम के क्रोध का पारा न रहा और तलवार के एक ही वार से उसका सिर धड़ से अलग करने को आगे बढ़ा। इतने में निकट के पेड़ों की आड़ से चार आदमी बाहर आए। उनके हाथों में तलवारें देखीं तो विक्रम ने अपनी तलवार घुमाते हुए उनका सामना किया। चारों ने एक साथ हमला बोल दिया। विक्रम चक्र की भांति घूमकर उनसे लड़ रहा था। तलवार के पहले वार में एक आदमी ज़मीन पर लोट गया। दूसरे की तलवार उसके हाथ से छूटकर बौने पर जा लगी और वह भयंकर चीत्कार करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा।

अन्य दोनों ने जब देखा कि विक्रम ऐसा-वैसा आदमी नहीं है तब बड़ी सावधानी से उसके साथ लड़ना शुरू किया। लड़ते-लड़ते उनके मुड़-मुड़कर देखते जाने से लगता था कि वे किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं और इस अनुमान को सत्य प्रमाणित करती हुई घोड़े की टाप बड़े वेग से निकट आती सुनाई दी। कुछ ही क्षणों में घोड़ा वहीं आ पहुंचा। घोड़े की पीठ पर नंगी तलवार लिये एक व्यक्ति बैठा था, जिसकी आकृति नक्षत्रों के प्रकाश में स्पष्ट न दीख पड़ी। विक्रम से लड़ने वालों में से एक ने चीखकर कहा, "मालिक, जल्दी कीजिए!" अब तो विक्रम को निश्चित हो गया कि घुड़सवार उनका मालिक है और अब उसकी जान की खैर नहीं। पहले ही वह थकान से चूर हो चुका था। फिर भी उसे विश्वास था कि बचे हुए दोनों आक्रमणकारियों से वह निपट लेगा। पर अब जब घोड़े पर सवार होकर एक नया ही शत्रु आ पहुंचा है तो उसे वह कैसे जीत सकेगा?

विक्रम के मन में विचार आया कि अब तो मां के दर्शन किये बिना ही इस संसार से कूच कर रहा हूं। फिर उस युवती की भी याद आई जिसने पालकी में से उसे स्नेह-भरी आंखों से देखा था और मधुर स्वर में बातें की थीं। उसके बाद उसे चक्रवर्ती का चेहरा स्मरण हो आया तो सोचने लगा, "वाह! नरसिंह महाचक्रवर्ती की शासन-व्यवस्था भी खूब है कि पल्लव साम्राज्य में ऐसी राहजनी और लूट-मार हो रही है। वे चक्रवर्ती जो अपना राज्य इस तरह चलाते हैं हमारे चोल देश पर कैसा राज्य कर रहे होंगे?" इस विचार के उठते ही उसे एकदम क्रोध आया और आवेश में उसने दूने वेग से तलवार चलाई तो एक और आदमी भूमि पर गिरकर प्राण तोड़ने लग गया।

चौथे की ख़बर लेने के लिए ज्यों ही वह मुड़ा तो देखता क्या है कि चौथे का सिर धड़ से कटकर ज़मीन पर लोट लगा रहा है। इस काम को करने वाला वही घुड़सवार था।

विक्रम विस्मय से जड़वत् खड़ा रह गया। ऐसी बात न थी कि घुड़सवार ने धोखे से उस आदमी पर वार कर दिया हो। क्योंकि धोखा खाने का कोई मौका नहीं था। विक्रम अच्छी-खासी पोशाक पहने था और लोग नगे बदन थे। तो यह घुड़सवार कौन है? ये लोग इसकी प्रतीक्षा तो नहीं कर रहे होंगे? उसी समय घुड़सवार घोड़े से उतरा और उसने विक्रम से पूछा, "आप कौन हैं? इस अंधेरी रात में आप अकेले कहां जा रहे हैं और क्यों जा रहे हैं?"

अपने प्राण-रक्षक के प्रति विक्रम का हृदय कृतज्ञता से भर गया। उसने कहा, "महाशय, मैं एक व्यापारी हूं। इस मार्ग से उरैयूर जा रहा था। पर बीच में इस विपत्ति का सामना करना पड़ गया। आप बड़े मौके से मेरी मदद को आ गए। नहीं तो···"

"नहीं तो क्या? अच्छा, व्यापारी हैं आप! तराजू पकड़ने वाला हाथ तलवार भी बड़ी खूबी से चला लेता है, आश्चर्य! विश्वास नहीं होता।···हां, आप कौन-सा व्यापार करते हैं?"

"जौहरी हूं मैं। रत्न-व्यापार करता हूं। तलवार चलाने का भी थोड़ा अभ्यास किया है।"

"वाह, वाह, जौहरी वाह! जौहरी होकर आप इस तरह अकेले इस जंगली रास्ते पर चल पड़े और सो भी इस अंधेरी रात में···"

"नरसिंह चक्रवर्ती की बड़ी तारीफ़ सुनी थी। पर धोखा हुआ। मैंने समुद्र पार के लोगों के मुंह से सुना था कि उनके राज में चोरी-डाका नहीं पड़ता।"

"ओहो, आप दूर देश से आ रहे हैं? देखकर मैंने यही सोचा था। तो मेरा अनुमान सही निकला। हां, किस देश से आ रहे हैं?"

"चम्पक द्वीप से आ रहा हूं।"

"चम्पक द्वीप से? मैंने भी सुना है कि वहां रत्न बहुत होते हैं। पर आप रत्न-व्यापार के लिए आए हैं तो आपको चाहिए था कि पहले कांचीपुरम जायं। आपको इतनी जल्दी उरैयूर जाने की ऐसी कौन-सी आवश्यकता पड़ गई?"

"वह तो मैं बताऊंगा ही, लेकिन आपने यह नहीं बताया कि आप कौन हैं?"

"मैं जो हूं सो हूं, इससे आपको क्या?"

"आप मेरे प्राणरक्षक हैं। आपके बारे में जानकारी प्राप्त करना तो मेरा कर्तव्य है न?"

"मैंने कहां आपके प्राण बचाये? आपने तो स्वयं अपने प्राण बचाये हैं। तीन व्यक्तियों का काम तमाम करने वाले के लिए चौथे को मौत के घाट उतारना कौन मुश्किल था! फिर भी अपना परिचय मैं दे ही दूं। कांची-नरेश के सम्बन्ध में जो आपने सुन रखा था और जो आपने अभी बताया कि गलत निकला, मैं उन्हीं चक्रवर्ती नरेश का एक अकिंचन सेवक हूं। यहां के गुप्तचर विभाग का

प्रधान। मुझे खबर मिली कि आप इस जंगली रास्ते से अकेले जा रहे हैं। इसलिए यह सोचकर कि आप पर कोई विपत्ति न आ खड़ी हो और कांची नरेश की आदर्श राज्य-व्यवस्था के विषय में आप अन्यथा न सोचने लग जायं, आपकी सहायता करने के विचार से मैंने आपका पीछा किया था।"

"आश्चर्य है ! जरा ही देर पहले मैं यह सोच रहा था कि कांची-नरेश का शासन इतना निर्बल है कि उनके राज्य में अकेला आदमी निर्भय होकर घूम भी नहीं पाता। किन्तु चक्रवर्ती का गुप्तचर विभाग इतना सुव्यवस्थित है—मुझे नहीं मालूम था। समझ में नहीं आता कि उसकी क्या तारीफ की जाय !"

"हो सकता है कि चम्पक द्वीप का-सा कुशल शासन यहां का न हो। लेकिन हम जितना बन पड़ता है उतना प्रयत्न अवश्य करते हैं कि चोरी-डाके कम पड़ें। सच पूछिये तो मुझे तो यह चाहिए था कि अंधेरी रात में अकेले रास्ते चल पड़ने और चार व्यक्तियों की मृत्यु का कारण बनने के अपराध में आपको पकड़ ले जाकर चक्रवर्ती के सामने पेश करूं और उचित दंड दिलाऊं।"

नक्षत्रों के क्षीण प्रकाश में घुड़सवार ने देखा कि विक्रम का हाथ तलवार की मूठ पर चला गया है तो उसने जल्दी से कहा, "नहीं महाशय, नहीं ! मैं ऐसा करूंगा नहीं। आप विदेशी होने के कारण इस रास्ते चले और आपको यहां ख़तरे के बारे में कुछ भी पता नहीं था। जाने-अनजाने आप-जैसे लोग ऐसे ख़तरों में न फंसे तो हम जैसों का फिर काम ही क्या रहेगा ? गुप्तचर विभाग और उसके प्रधान की आवश्यकता ही क्या रह जायगी ? पर जिस काम से मैं आया था, वह तो हो गया। सच पूछिये तो यहां आने पर मुझे लगा कि मेरी कोई ज़रूरत ही नहीं थी। आपमें तो अपनी रक्षा करने की पूरी सामर्थ्य है। तो अब मैं चलूं ?"

विक्रम का मन अशान्त हो गया। उसे लगा कि उसने ठीक से अपनी कृतज्ञता प्रकट नहीं की। साथ ही उसके मन में यह लालसा भी जागी कि इस घुड़सवार से मैत्री बढ़ाकर उरैयूर जाने के लिए उससे घोड़ा मांग ले और यह चिन्ता भी हुई कि यह रात कहां और कैसे बिताये ?

"ऐसा न कहिए। उस समय अगर आप न आ गए होते तो शायद मैं अपने प्राणों से हाथ धो बैठता। मेरे प्राण-रक्षक तो आप ही हैं और मैं आपसे एक और सहायता की आशा कर रहा हूं।" विक्रम ने कहा।

"मुझसे कोई सहायता मांगें तो मेरी इन्कार करने की आदत नहीं है और जो सहायता मांगते नहीं उन्हें मैं देता भी नहीं हूं।"

"मुझे एक काम से जल्दी उरैयूर जाना है। उसके लिए मैं आपसे एक मदद चाहता हूं। आप कृपा कर सकें तो बड़ी कृपा होगी।"

"मैं जानता हूं कि आप क्या चाहते हैं। आप मेरा घोड़ा चाहते हैं, यही न ? बड़े कुशल व्यापारी हैं आप ! लेकिन आधी रात के समय इस जंगली रास्ते

से आप अकेले अगर गये तो आपके साथ-साथ मेरे घोड़े को भी हिंस्र पशुओं का शिकार होना होगा। आपकी तो मुझे कोई चिन्ता नहीं, पर अपने प्यारे घोड़े का कलेवा नहीं बनाना चाहता।"

"तो आप मुझे क्या सलाह देते हैं।"

"यहां से थोड़ी दूर पर एक शिल्पी का घर है। मेरे साथ चलें तो वहां रात बिता सकते हैं और तड़के उठकर जा सकते हैं।"

विक्रम ने कुछ सोचने के बाद कहा, "अच्छा, यही ठीक है।"

दोनों ने नीचे बिखरी पड़ी गठरियां उठाकर घोड़े की पीठ से बांधीं और फिर घोड़े की रास पकड़कर गुप्तचर-प्रधान आगे-आगे चला और विक्रम उसके पीछे-पीछे।

बाईस

घने जंगल में होकर एक पतली-सी पगडंडी जाती थी। दिन-दहाड़े भी उस पर अंधकार का साम्राज्य रहा करता था तो आधी रात की बात का पूछना ही क्या! राजपथ पर जिन नक्षत्रों का मन्द प्रकाश था, इस पगडंडी पर उनके दर्शन भी नहीं हो सकते थे। ऐसे भीषण अंधकार में एक अपरिचित व्यक्ति के साथ बीहड़ पगडंडी के रास्ते जाते हुए विक्रम का हृदय धक-धक करने लगा। रास्ता बड़ा तंग था। दोनों ओर लगे पेड़-पौधों की डालों और झुकी हुई लताओं के स्पर्श से वह बार-बार चौंक पड़ता था।

न जाने और कितनी दूर इस पगडंडी पर चलना होगा—यही सोचता हुआ विक्रम आगे बढ़ रहा था कि अचानक अंधकार कुछ कम हुआ और नीला आकाश दीख पड़ने लगा। सामने एक मकान भी धुंधला-सा दीख पड़ा।

"मैंने जो घर बताया था वह यही है। इसमें आप रात बिता सकते हैं और सवेरे अपनी यात्रा जारी कर सकते हैं।" गुप्तचर-प्रधान ने कहा। फिर आकर द्वार खटखटाया।

घर के निकट पहुंचकर विक्रम को लगा कि यह कोई साधारण घर नहीं है, कोई चित्र-मण्डप अथवा शिल्प कला का मन्दिर-सा है। थोड़ी देर में किवाड़ खुला। द्वार खोलने वाली एक वृद्धा थी। उसके हाथ में पत्थर से बना उत्तम कला-कृति का एक सुन्दर दीया था। किवाड़ खुलने पर दोनों अन्दर प्रविष्ट हो गए।

अन्दर ताक में दीपक जल रहा था। उसके प्रकाश में विक्रम ने अपने चारों ओर दृष्टि डाली। अब उसे निश्चय हो गया कि यह घर नहीं शिल्प-कला का मंडप ही है। जहां देखो, वहीं अद्‌भुत कुशलता से बनाई हुई शिल्प कला-कृतियां दिखाई दीं। दीवारों पर बने रंग-बिरंगे सुन्दर चित्र भी दृष्टिगोचर हुए। इन

सबको बने हुए यद्यपि अनेक वर्ष हो गए थे तथापि वे कृतियां अब भी ऐसी सजीव थीं, मानो अभी हाल ही में बनाई गई हों।

उन कृतियों और चित्रों में मुख्यत: एक युवती की आकृति भी दिखाई दी। उसके मुख से दैवी सौन्दर्य की आभा फूट रही थी और उसको लेकर अनेक कृतियों और चित्रों में नृत्य-कला की सुन्दर मुद्राएं और अनुपम हाव-भाव प्रदर्शित किये गए थे। उनकी सुन्दरता और कलात्मक उत्कृष्टता देखकर विक्रम विस्मय से अभिभूत हो गया।

"महाशय, कितनी अनुपम कृतियां हैं ये ! इन्हें किस महाशिल्पी ने बनाया है ? और एक युवती की ही आकृति अधिक दिखाई देती है, यह क्यों ? क्या यह युवती सचमुच इस संसार में रह चुकी है ? या शिल्पी की कल्पना की सृष्टि मात्र है ? यह अपूर्व कृतियां इस अंधेरे वन में क्यों छिपी पड़ी हैं ? ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं की गई है कि सब लोग इन्हें आकर देखें और इनका आनन्द लें। मुझे बताने की कृपा करेंगे !" विक्रम ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

"यह तो बड़ी लम्बी कहानी है। अगर आप शेष रात जागते ही बिताना चाहें तो बताऊं। पर अभी तो मुझे भूख लगी है। वह देखिए, दादी सत्तू और गुड़ ला रही हैं। पहले हम खा लें, फिर फुरसत से बातें करेंगे।" गुप्तचर-प्रधान ने कहा।

दोनों सत्तू खाने बैठे। खाते-खाते विक्रम ने पूछा, "आपने यह नहीं बताया कि आपका नाम क्या है ?"

"मेरा नाम वीरसेन है। आपका क्या नाम है ?"

विक्रम जरा पशोपेश में पड़कर बोला, "मेरा नाम है देवसेन।"

"बहुत खूब ! हम दोनों में बड़ा नाम-साम्य है। अब तो आप दिल खोलकर मुझसे अपनी कहानी कह सकते हैं। बताइये, आप इतनी जल्दी उरैयूर क्यों जाना चाहते हैं ? यदि रत्न-व्यापार करना ही आपका उद्देश्य है तो आपको चाहिए था कि पहले कांची नगरी जायं।"

गुप्तचर-प्रधान के प्रति जरा देर पहले विक्रम के मन में स्नेह और कृतज्ञता के भाव भर आए थे। पर ये बातें सुनकर उसके दिल में डर और संदेह के बीज उग आए थे। सोचने लगा, कहीं यह वास्तविक स्थिति जान ले और पोल खोल दे तो क्या होगा ? इसलिए मुझे चाहिए कि बड़ी सावधानी से काम लूं। उसने कहा, "मेरी मां उरैयूर में है। उससे मिलने की मेरे मन में तीव्र उत्कण्ठा है। इसीलिए इतनी जल्दी कर रहा हूं।"

"अरे यह क्या ? आपने तो मुझसे अभी कहा था कि आप चम्पक द्वीप के निवासी हैं।"

"हां, लेकिन मेरा जन्म-स्थान तो उरैयूर ही है। कुछ वर्ष पहले धनोपार्जन

के हेतु मैं चम्पक द्वीप चला गया था। पल्लव-साम्राज्य के अधीन होने के बाद तो उरैयूर की सम्पन्नता और शोभा की एक प्रकार से क्षति हो गई थी। जहां समृद्ध राज-परिवार न हो, वहां रत्न-व्यापार कहां से चलता ?"

विक्रम का विचार था कि राज-परिवार की बात उठाने पर संभव है कि वीरसेन महारानी अरुल्मोलि के विषय में कुछ कहे। लेकिन उसका उद्देश्य सफल न हुआ। क्योंकि इस बातचीत के बाद भोजन पूरा होने तक वीरसेन मौन व्रत धारण किये रहा।

भोजन के बाद विक्रम ने पुनः उस शिल्प-कला-मण्डप की कथा जानने की उत्सुकता व्यक्त की।

"क्यों देवसेनजी, आपको मृत्यु पर विश्वास है ?" गुप्तचर-प्रधान ने यह प्रश्न किया तो विक्रम की समझ में न आया कि इसका क्या उत्तर दे। उसने पूछा, "यह भी कोई प्रश्न है कि मृत्यु पर विश्वास है या नहीं ?"

"मेरे प्रश्न का यह मतलब है कि आपको इस बात पर विश्वास है कि मनुष्य मर जाते हैं ? जब हम कहते हैं कि प्राण निकल गए तो क्या सचमुच प्राण निकल जाते हैं ? या यह शरीर मात्र चला जाता है और प्राण संसार में कहीं मंडराते रहते हैं ? मृत व्यक्ति हम लोगों के बारे में क्या सोचते हैं ? हमें देखने आते हैं ? हमारे आचरण पर ध्यान रखते हैं ?"

यह सुनकर न जाने क्यों, विक्रम को एकाएक अपने पिता पार्थिव महाराज का स्मरण हो आया। उसने उन्हें जो वचन दिया था वह भी याद हो आया। वे क्या कहीं से उसके आचरण और कार्यों पर दृष्टि रखते होंगे ?

"मेरे मन में भी कभी-कभी इस प्रकार के प्रश्न उठा करते हैं। पर मेरी इन शंकाओं का समाधान करने वाला व्यक्ति आज तक कोई न मिला।" विक्रम ने कहा।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि मृत्यु मिथ्या है और मेरा यह भी विचार है कि मृत्यु पर दुःखी होना बड़ी मूर्खता है। इस घर में तीस वर्ष पहले शिल्पी आयनर और उनकी पुत्री शिवकामि रहते थे। उस जमाने में यहां पायल की झुन-झुन और टांकियों की ध्वनियां सुनाई पड़ा करती थीं। शिवकामि नृत्य-कला की अद्भुत कलाकार थी और उसी के नृत्य की मुद्राओं से प्रेरणा पाकर आयनर चित्र बनाते और मूर्तियां गढ़ा करते थे।"

"ओहो, तो दिव्य सुन्दरी क्या वही शिवकामि है ?"

"हां, तब मैं बराबर यहां आया-जाया करता था। महेन्द्र चक्रवर्ती का राज्यकाल था। उनके पुत्र की आयु उस समय आपकी जितनी रही होगी। उन्हीं के साथ—नरसिंह वर्मा के साथ मैं आता था। दूर से आते हुए हमारे कानों में नूपुरों और टांकियों की मधुर ध्वनि पड़ती थी। अब भी मेरा मन यह मानने को

नहीं करता कि आयनर और शिवकामि इस घर में नहीं हैं। मेरा त यही विचार है कि वे अब भी यही हैं और मैं अब भी अगर कान लगाकर सुन हूं तो नूपुरों और टांकियों की सुमधुर ध्वनि मेरे कानों में गूंजने लगती है।"

विक्रम की उत्कण्ठा अब आयनर और शिवकामि[1] की पूरी कहानी सुनने के लिए अत्यन्त तीव्र हो उठी। बार-बार प्रार्थना करने पर वीरसेन ने उसे विस्तार से कहानी सुनाई।

कथा सुनते-सुनते कई बार विक्रम की आंखों से आंसू निकल पड़े। नरसिंह चक्रवर्ती के प्रति उसके मन में कई गुना आदर भाव बढ़ गया। वे उसे अपने बड़े आत्मीय भी लगने लगे और पार्थिव महाराज को उसने जो वचन दिया था उसका स्मरण करके वह इस भावना को नष्ट करने और नरसिंह वर्मा को अपने कुल के वैरी के रूप में देखने का प्रयत्न करने लगा।

इधर कथा पूरी हुई, उधर शुक्र तारा उग आया। दोनों घड़ी-भर के लिए सो पाए थे। पक्षियों का प्रातः गीत सुनकर विक्रम जागा तो सोचने लगा कि पिछली रात जो घटनायें घटी थीं, वे निरा सपना तो नहीं थीं। चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो लगा की बातें सच्ची ही थीं।

प्रातःकाल के कार्यों से निवृत्त होकर विक्रम आया तो वृद्धा ने उसे अपने हाथों कलेवा कराया। विक्रम ने वीरसेन से विदा लेते हुए कहा, "श्रीमान्, मैं आपका सदा ऋणी रहूंगा, बहुत आभार मानता हूं। आपने मेरे प्राण बचाकर जो उपकार किया है, उसका बदला मैं चुका नहीं सकता। लेकिन आपसे यों ही घोड़ा ले लेने की मेरी इच्छा नहीं है। आप कृपापूर्वक घोड़े के मूल्य-स्वरूप ये रत्न स्वीकार कर लें।" इतना कहकर उसने मुट्ठी भर रत्न वीरसेन के सामने बढ़ाये।

"आपने गलत समझ लिया। मैंने अपना प्यारा घोड़ा आपको दान या दाम में नहीं, मंगनी में दिया है। उरैयूर में आपका काम पूरा हो जाय तो मुझे मेरा घोड़ा यहीं लाकर सौंप दीजिएगा।" गुप्तचर-प्रधान ने कहा।

"अच्छा, ऐसा ही करूंगा। फिर भी आपको मेरी खातिर ये रत्न लेने ही पड़ेंगे।" विक्रम ने हठ किया। वीरसेन ने उसकी बात मानकर रत्न ले लिये।

विक्रम ने घोड़े पर सवार होकर घोड़ा आगे बढ़ाया। जब तक शिल्पी का घर और गुप्तचर-प्रधान आंखों से ओझल न हुए तब तक विक्रम मुड़-मुड़कर बार-बार उन्हें देखता रहा।

विक्रम जब आंखों से ओझल हो गया तब गुप्तचर-प्रधान तुरन्त शिल्प-मण्डप

---

१. 'शिवकामिनिशपथम्' स्वर्गीय 'कल्कि' का ही एक दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें चालुक्य पुलकेशि के साथ पल्लव-नरेश के युद्ध का, शिवकामि तथा युवराज नरसिंह वर्मा के प्रेम का ज्वलन्त चित्रण है।

के अन्दर गया और थोड़ी देर तक वहां के दिव्य चित्रों को, अनुपम मूर्तियों को देखता खड़ा रहा। उसकी आंखों में आंसू भर आए। थोड़ी देर बाद उसने वृद्धा की ओर देखकर कहा, "माताजी, यह लड़का फिर कभी यहां आए तो ठहरने के लिए स्थान अवश्य देना। लेकिन मेरा भेद न बताना। मैं चार-पांच दिन बाद फिर आऊंगा।"

बुढ़िया ने उत्तर दिया, "ऐसा ही होगा, महाराज!"

उसके बाद गुप्तचर-प्रधान शिल्प-मण्डप के पीछे की तरफ गया। वहां एक-दूसरा घोड़ा था जो देखने में विक्रम को दिए गए घोड़े से बहुत मिलता था। प्रधान उसके पास गया और पीठ पर एक थपकी देकर एक छलांग में उसपर सवार हो गया। घोड़ा आगे बढ़ा। लेकिन उस मार्ग से नहीं जिस पर विक्रम गया था, बल्कि उसी पगडण्डी से होकर चलने लगा जिस रास्ते से वे लोग पिछली रात को आए थे। थोड़ी ही देर में घुड़सवार उस स्थान पर जा पहुंचा जहां पिछली रात को विक्रम पर डाकुओं ने हमला किया था।

गुप्तचर-प्रधान ने वहां पहुंचकर बड़े गौर से इधर-उधर देखा! धीरे-धीरे उसके मुख पर आश्चर्य के भाव आने लगे और ध्यान से चारों तरफ ढूंढ़ने के बाद तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। कारण यह था कि पिछली रात को जो लोग मारे गये थे उनकी लाशें वहां से गायब थीं।

प्रधान ने सोचा कि हमारे जाने के बाद अवश्य कोई यहां आया है। वह घोड़े पर से उतर पड़ा और इधर-उधर अच्छी तरह देखने लगा। अचानक उसे एक वस्तु ने अपनी ओर आकृष्ट किया। निकट जाकर देखा तो वह विस्मय में डूब गया और उसकी समझ में न आया कि उस वस्तु के क्या अर्थ हो सकते हैं? वह एक खोपड़ी थी।

जो लोग पिछली रात वहां मारे गए थे उनकी खोपड़ी तो वह हो नहीं सकती थी। क्योंकि वह तो पुरानी खोपड़ी थी इसलिए गुप्तचर-प्रधान ने सोचा कि उनके जाने के बाद जो कोई भी आया होगा वह कापालिक रहा होगा और उसी के गले की मुण्डमाल से यह खोपड़ी गिर पड़ी होगी। उसी ने या उसके साथियों ने यहां पड़ी लाशों को हटाया होगा।

इधर-उधर थोड़ा और घूमकर देखा तो एक स्थान पर कुछ रत्न पड़े मिले। सोचा कि शायद बौने ने चोट खाकर-रत्नों की गठरियां गिराई होंगी और उन्हीं में से ये रत्न बिखरे होंगे।

गुप्तचर-प्रधान रत्नों को बीनने झुका ही था कि थोड़ी दूर पर घोड़ों की टाप सुनाई दी। लगता था कि कम-से-कम चार-पांच घोड़े आ रहे हैं। रत्नों को वहीं छोड़ गुप्तचर-प्रधान तुरन्त अपने घोड़े पर जा चढ़ा और पास के जंगल में घुसकर छिप गया। थोड़ी दूर जाकर वह घोड़े पर से उतर पड़ा और घोड़ा वहीं छोड़कर

पैदल वापस लौट आया और एक घने वृक्ष की आड़ में अच्छी तरह छिपकर देखने लगा। उसे अपनी जगह से रास्ता स्पष्ट दिखाई पड़ता था।

उस स्थान पर आते ही घोड़े रोके गए। छः व्यक्ति सवार थे। जो उनका नेता-सा दीखता था उस पर दृष्टि पड़ते ही गुप्तचर-प्रधान की भौंहें तन गईं और उसके मुख पर विस्मय, घृणा और क्रोध के भाव दीखने लगे। नेता और कोई नहीं, मारप्प भूपति था।

तेज दौड़ते आने वाले घोड़ों की रास खींचकर रोकने वाला पहला व्यक्ति भी मारप्प भूपति ही था। उसी का अनुसरण करके दूसरों ने भी अपने घोड़े रोके। मारप्प भूपति नीचे उतरा। थोड़ी देर पहले गुप्तचर-प्रधान ने जैसे इधर-उधर छान-बीन की थी उसी प्रकार उसने भी की और उसका ध्यान आकृष्ट करने वाली भी वही खोपड़ी थी। फिर पिछली रात जो घटना घटी थी उसी प्रमाणों पर भी उसका ध्यान गया। जगह-जगह पर खून के धब्बे थे। लाशों को घसीटकर ले जाने से ज़मीन पर निशान बन गए थे। इनके अलावा जब उसकी दृष्टि बिखरे हुए रत्नों पर पड़ी तो उसके आनन्द का ठिकाना न रहा। जल्दी-जल्दी उसने बिखरे हुए रत्न बीन लिये और ठहाका मारकर हंस पड़ा।

उसने अपने साथियों को बुलाकर कहा, "समझो कि अब हमारी पांचों उंगलियां घी में हैं। बिल्ली के भागों छींका छूटा।" वे लोग आपस में इसी तरीके की बातें करते रहे। फिर मारप्प भूपति अपने घोड़े पर सवार हुआ, दूसरे लोग भी चढ़े और घोड़े हवा से बातें करने लगे।

मारप्प भूपति और उसके साथियों के चले जाने के बाद गुप्तचर-प्रधान अपने घोड़े के पास गया और उस पर सवार होकर जिस रास्ते से पिछली रात आया था उसी रास्ते वापस लौट चला। उस जंगली रास्ते का एक मोड़ पार करते समय घोड़ा एकदम सिहर उठा। प्रधान ने घोड़ा रोककर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। थोड़ी दूर पर एक चट्टान दीखी जिसके पीछे चीलें मंडरा रही थीं। रास्ते में पड़ी लाशों का क्या हुआ होगा—इसका भेद समझने में अब उसे अधिक देर न लगी। तो उसके और उस युवक जौहरी के जाने के बाद यहां जो लोग आए उन्होंने लाशें उठाकर चट्टान के पीछे फेंक दीं। पर वे लोग कौन रहे होंगे?

प्रधान अधिक देर न रुका, घोड़ा आगे बढ़ता चला गया। थोड़ी देर में वह मामल्लपुरम से कांची जाने के राजपथ पर जा पहुंचा। उसी समय मामल्लपुरम से राज-परिवार भी वहीं पहुंचा था। परिजनों के बीच कुन्दवि की पालकी थी। पालकी के साथ एक सफेद घोड़े पर सवार नरसिंह चक्रवर्ती का पुत्र महेन्द्र चल रहा था।

इन लोगों को देखकर प्रधान ने अपने घोड़े की चाल ज़रा तेज़ कर दी। राज-परिवार के आने की परवाह किये बिना ही वह राजपथ का चौराहा पार

करके कांची की ओर बढ़ चला। पर उसे राज-परिवार की परवाह किये बिना ही उस तरफ जाते हुए कुन्दवि और महेन्द्र दोनों ने देख लिया था।

कुन्दवि ने उत्सुक स्वर में पूछा, "भैया, वह जो घोड़े पर जा रहा है उसको तुमने देखा ? कैसी सौम्य आकृति है। वह कौन है, जानते हो ?"

"मैं तो नहीं जानता, बहन ! शक्ल-सूरत से तो लगता है कि राजवंश का कोई व्यक्ति है। उसका घोड़ा भी देखो, इतनी जल्दी कितनी दूर चला गया !" महेन्द्र ने कहा।

"मालूम पड़ता है कि वह कांची ही जा रहा है। सम्भव है कि कोई विदेशी हो। नहीं तो हमें देखने पर रुके बिना ही आगे न बढ़ जाता। सुना है, दो-चार दिन पहले जो जहाज़ बन्दरगाह पर आया था उसमें से बहुत से विदेशी उतरे हैं। यही कारण है कि इतने अपरिचित मुख दिखाई पड़ते हैं !" कुन्दवि ने कहा।

"कुन्दवि, तुमने बताया था कि चम्पक द्वीप से कोई जौहरी आया है। वह तुम्हारे पास आया कि नहीं ?" महेन्द्र ने पूछा।

"नहीं !" कहते हुए कुन्दवि के कंठ से नैराश्य की वेदना फूट पड़ी।

"पर वह कांची के महल में आये बिना वापस नहीं जायगा। विश्वास रखो, आयगा ज़रूर !"

कुन्दवि ने इसका कोई उत्तर न दिया। मौन रही। सोचने लगी कि यदि उसका संदेह ठीक था तो वह कभी महल में नहीं आ सकता।

कुन्दवि की आंखों के सामने तीन वर्ष पहले कांची राजमार्ग पर देखे हुए राजकुमार और पिछले दिन मामल्लपुरम के राजमार्ग पर देखे हुए जौहरी— दोनों के चेहरे उभर आये और दोनों एक के बाद एक करके मंडराने लगे। वे दोनों क्या एक हैं या अलग-अलग व्यक्ति हैं ? अलग-अलग हैं तो उनके मुख में कैसा अद्‌भुत साम्य है ! विधाता की सृष्टि भी कितनी विचित्र है !

कुन्दवि को मौन और उसके मुख को मलिन देखकर महेन्द्र ने स्नेह-भरे स्वर में पुकारा, "बहन !"

"क्या है भैया ?"

"खोई-खोई-सी क्यों रहती हो ?"

"कुछ नहीं, भैया !"

"मैंने एक बात सोची है, बताऊं ?"

"बताओ भैया !"

"मैं पिताजी से कहने वाला हूं कि मुझसे पल्लवों का राज-भार नहीं ढोया जायगा। वह आपको ही मुबारक हो !"

"यह क्यों भैया ?"

"उनके रहते मैं राज्य करूं ! यह तो ऐसा लगेगा कि सिंह की गद्दी पर

सियार बैठ गया। देश में लोग भी ऐसा ही सोचते हैं।"

"नहीं, नहीं, भैया !"

"इसके अलावा मुझे एक काम और भी करना है। इस बार फिर समुद्र-यात्रा पर जाना है।"

"दुबारा लंका जाने वाले हो क्या ?"

"नहीं, चम्पक द्वीप जाऊंगा।"

"यह क्या कह रहे हो, भैया ?"

"मैं पिताजी से विनती करने वाला हूं कि वे विक्रम को क्षमा कर दें फिर स्वयं चम्पक द्वीप जाकर उसे लिवा लाऊंगा। बहन, मुझे इस देश को लौटे एक वर्ष हो रहा है पर एक बार भी मैंने तुम्हें हंसते नहीं देखा। पहले तुम्हारे होंठों पर हंसी देखूं, फिर कोई दूसरा काम करूंगा—यह मैंने मन में ठान लिया है !" महेन्द्र ने कहा। कहते-कहते उसका कंठ रुंध गया।

कुन्दवि की आंखों से आंसू छलछला आए। थोड़ी देर चुप रहकर बोली, "पिताजी नहीं मानेंगे।"

"मैं मना लूंगा, कल ही इस सम्बन्ध में पिताजी से बात करना चाहता था। पर वे रात आये ही नहीं। आज अवश्य उनसे बात करूंगा।"

"पिताजी के सामने और तुम्हारे चम्पक द्वीप जाने से भी क्या लाभ ?"

"यही कि मुझे एक बहनोई मिल जायंगे !"

"यह तो असंभव है, भैया ! वह गर्वीला चोल राजकुमार पल्लव राज-कन्या से विवाह करने को कभी राजी नहीं होगा।" कुन्दवि ने कहा।

महेन्द्र खिलखिलाकर हंस पड़ा और बोला, "बहन, सच-सच बताओ ! तुमने कभी अपना चेहरा आईने में देखा है ?"

"जाओ भैया, यह भी क्या कोई दिल्लगी है ?" कुन्दवि ने लजाते हुए कहा।

"जाऊंगा बहन, जाऊंगा। चम्पक द्वीप जाऊंगा और उस चोल राजकुमार को बांध लाऊंगा; तुम्हारे सामने खड़ा करके कान पकड़वाऊंगा। नहीं तो सच मानो, मैं महेन्द्र चक्रवर्ती का पोता नहीं !" युवराज महेन्द्र ने जोर देकर कहा।

कुन्दवि और महेन्द्र कांचीपुरम के महल को लौटे और अपने-अपने कमरों की तरफ़ चले गए। कुन्दवि जब अन्तःपुर में पहुंची तब उसने देखा कि पिता के आसन पर कोई अनजान पुरुष बैठा है। आज तक ऐसी धृष्टता किसी ने नहीं की थी। इसलिए क्षण-भर के लिए कुन्दवि स्तंभित रह गई। उसे स्मरण हो आया कि यही पुरुष जगली रास्ते से राजपथ पर आया था और उनके लिए रुके बिना ही आगे बढ़ गया था। इससे आश्चर्य तो बढ़ा ही, पर अब तो कुन्दवि को अपार क्रोध भी हो आया।

"कौन हो तुम ? किसकी आज्ञा से और किस अधिकार से महल के अन्तःपुर

में चले आए !" कुन्दवि ने कड़कते स्वर में पूछा।

"देवी, मैं पल्लव-साम्राज्य का प्रधान गुप्तचर हूं। मेरा नाम वीरसेन है। आपसे एक बात पूछनी थी, सो चला आया।"— अजनबी के मुंह से इतना सुनना था कि कुन्दवि का क्रोध कौतूहल में परिणत हो गया।

"पिताजी, यह कैसा तमाशा है ?"— खुशी से चीखती हुई कुन्दवि पिता के पास दौड़ी गई और उनके कन्धों से लटक गई। उसने उनकी नकली मूंछ और दाढ़ी खींचकर फेंक दी। अब जासूसों के प्रधान की जगह पर विराजमान थे चक्रवर्ती नरसिंह वर्मा !

"आपके स्वर से मैंने पहचाना, पिताजी ! नहीं तो पहचान ही न पाती ! आप इतनी अच्छी तरह वेष कैसे बदल लेते हैं ?" कुन्दवि ने उत्साह से पूछा।

"बेटी, मेरे पिता महेन्द्र चक्रवर्ती ने मुझे अनेक विद्याएं सिखाईं और उन सबमें यह विद्या अद्‌भुत है !" चक्रवर्ती ने उत्तर दिया।

कुन्दवि की विशाल काली आंखें चकित होकर कमलिनी-सी खिल गईं। उसने पूछा, "आप क्या कह रहे हैं ? राजा-महाराजाओं को वेष बदलने की विद्या सीखने की क्या आवश्यकता है ?"

"बेटी, देश के शासक को चाहिए कि वह सब कलाएं जानता हो। खासतौर से वेष बदलने की कला में तो उसे बहुत निपुण होना चाहिए। तभी तो वह अपनी प्रजा के मन की असली जानकारी प्राप्त कर सकता है, शत्रुओं का रहस्य जान सकता है। दीन-दुःखियों का दुःख दूर कर सकता है; देश में जो अत्याचार हो रहे हैं उनकी रोक-थाम कर सकता है और···"

चक्रवर्ती बोलते जा रहे थे कि कुन्दवि ने बीच में टोककर पूछा, "बताइए, इस बार आपने किस पर होनेवाले अत्याचार की रोक-थाम करने के लिए यह वेष धारण किया था ? क्या आप मुझपर संदेह करते हैं कि मैं कोई जुर्म कर रही हूं ?" प्रश्न करते-करते उसकी दन्त-पंक्ति ऐसी खिली मानो जुही की कलियों की पंक्ति हो।

"निस्संदेह, कुन्दवि ! तुमने निश्चय ही बड़ा अपराध किया है ! तुम्हारे कारण कल रात को चार आदमी मौत के मुंह में चले गये !" चक्रवर्ती के मुंह से यह सुनकर कुन्दवि का दिल दहल गया और वह कांप उठी।

"आप यह क्या कह रहे हैं, पिताजी ? मुझे तो कुछ नहीं मालूम !"

"हां, तुम्हें कैसे मालूम होगा ! अपराध करने वाला कहीं यह कहता है कि मुझे मालूम है ? बोलो, विदेश से आए हुए जौहरी को तुमने महल में बुलाया था कि नहीं ?"

"हां, बुलाया था। वह क्या कोई अपराध है ?"

"उससे सच्ची बात छिपाकर तुमने अपने-आपको कुन्दवि की सखी बताया

था न ?"

"हां, आप ठीक कह रहे हैं, पर उससे क्या ?"

"उसीसे तो यह दुर्घटना हुई। जौहरी को बाद में किसी ने यह बता दिया कि तुम चक्रवर्ती की सुपुत्री कुन्दवि हो। वह डर गया कि दाल में कुछ काला है और शायद कोई ख़तरा न उत्पन्न हो जाय इसलिए वह उसी समय, रात और सूने पथ की परवाह किये बिना ही, वन-मार्ग से उरैयूर को चल पड़ा !"

"उरैयूर···?" कुन्दवि के स्वर में अपरिमित आश्चर्य भरा था।

"हां, पर इसमें इतना आश्चर्य करने की कौन-सी बात है ?"

"नहीं, पिताजी ! मैंने सोचा कि जौहरी कांची न आकर उरैयूर क्यों चल पड़ा ? वहां तो महल में कोई नहीं !"

"महल में कोई नहीं है तो क्या हुआ ? उसकी मां तो उरैयूर में है वह उन्हीं से मिलने चल पड़ा था।"

कुछ कहने के लिए कुन्दवि का मुंह खुला। पर उसने बरबस अपने दांतों-तले जीभ दबा ली। उसके मन में सन्देह उठा कि वह जौहरी असल में विक्रम तो नहीं ? हो सकता है कि यही सन्देह पिताजी के मन में उठा हो। इसलिए उसने निश्चय किया कि कुछ न कहे। नहीं तो कोई गलत बात मुंह से निकल गई तो उनके मन में भी इस सन्देह का बीज जम जायगा।

उसे चुप देखकर चक्रवर्ती ने पूछा, "क्या सोच रही हो, बेटी ?"

"कुछ नहीं, पिताजी। कुछ पुरानी बातें याद हो आईं। एक बार हम उरैयूर गए थे न ? उन्हीं बातों की याद···अच्छा, पिताजी ! उस जौहरी की बात बताइये !" कुन्दवि ने अपने को संभालते हुए कहा।

"रात के वक्त उसे जंगली रास्ते से अकेले जाते हुए देख चार व्यक्तियों ने घेर लिया और तलवारों से उस पर आक्रमण किया। लेकिन वह जौहरी भी कोई साधारण व्यक्ति न था। तीन को तो उसने अकेले ही सुला दिया और चौथा इस तलवार का शिकार हुआ !" कहकर चक्रवर्ती ने अपनी तलवार की तरफ़ इशारा किया।

बड़े ही विस्मय में पड़कर कुन्दवि ने पूछा, "पर उस समय आप वहां कैसे पहुंच गए ?"

"यह सब न करूं बेटी, तो इतने बड़े राज्य का शासन कैसे हो ?"

"बहुत डींग न मारिए, पिताजी ! आपकी जो कीर्ति फैली है कि नरसिंह चक्रवर्ती के राज में चोरी-डाका नहीं पड़ता, उसका क्या हुआ ? कांची और मामल्लपुरम के इतने निकट एक विदेशी व्यापारी पर कोई हाथ उठाए और लूट-मार करने की कोशिश करे तो आपकी शासन-व्यवस्था पर बट्टा नहीं लगेगा तो और क्या लगेगा ?"

"मैंने भी पहले तुम्हारी ही तरह सोचा था कि वे चोर हैं। लेकिन वास्तव में वे लोग चोर नहीं थे !"

"तो ऐसा दुस्साहस किसने किया ?"

"यह तो चोरी-डाके से भी अधिक भयंकर मामला है, बेटी !"

"क्या ?"

"तुमने उस जौहरी को ठीक तरह से देखा था न ?"

"हां, देखा था।"

"उसे देखकर तुम्हारे मन में कोई विचार आया ?"

कुन्दवि अपने मन के भावों को छिपाती हुई बोली, "कुछ भी नहीं !"

"उसके मुख पर जो राज-लक्षण थे क्या उन पर तुम्हारा ध्यान ही नहीं गया ?" चक्रवर्ती के मुंह से यह प्रश्न सुनकर कुन्दवि का दिल दहल उठा कि कहीं चक्रवर्ती ने विक्रम को पहचान तो नहीं लिया ?

चक्रवर्ती ने उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही अपनी बात आगे बढ़ाई, "ऐसे राज-लक्षणों से सम्पन्न पुरुष नर-बलि देने वालों के हाथ कभी-कदास ही लगते हैं !"

"हाय !" कुन्दवि चीख उठी, "हमारे में क्या अब भी यह प्रथा चली आ रही है ?"

"हां, बेटी ! मैं इन अन्धविश्वासों का मूल से नाश करने का प्रयत्न करता ही रहता हूं। पर अभी तक सफलता प्राप्त नहीं हुई है। एक जगह जड़ उखाड़ता हूं तो दूसरी जगह अंकुर फूट निकलता है !"

"बेचारे भोले-भाले जौहरी पर जाने यह संकट क्यों पड़ा ? आप समय पर न पहुंचे होते तो न जाने क्या हुआ होता !"

'कुछ न हुआ होता। तुम जैसा समझती हो वैसा भोला-भाला वह नहीं है, कुन्दवि ! वह भी चोर था, इसीलिए इस संकट में पड़ा। नहीं तो क्यों पड़ता ?" चक्रवर्ती ने कहा।

पल-भर के लिए कुन्दवि की सांस रुक गई। पूछा, "सच पिताजी ? वह सारे रत्न कहीं से चुराकर लाया था ?"

"नहीं, उसने रत्न नहीं चुराये थे। मामल्लपुरम में उसने एक दूसरे ही ढंग की चोरी करने की चेष्टा की थी। हमारे कुछ शिल्पियों को बहला-फुसलाकर अपने द्वीप को ले जाने का प्रयत्न किया। यह कितना बड़ा अपराध है, जानती हो बेटी ? उस अपराध का क्या दंड होता है, क्या यह भी जानती हो ?"

"जानती हूं, पिताजी !"

"उसके प्रयत्नों का भंडाफोड़ न हो जाय—इसलिए गठरी ढोने के लिए उसने एक बौने को अपना नौकर रख लिया था। लेकिन उस बौने पर मुझे पहले से ही

शक था कि वह कापालिकों के हाथ का कठपुतला है। और मेरा वह सन्देह सत्य निकला। बौने ने जौहरी को चकमा देकर उरैयूर का रास्ता बताने के बहाने जंगली मार्ग से कहीं ले जाने का प्रयत्न किया और ठीक समय पर मैं वहां न पहुंचा होता तो···" कहते-कहते चक्रवर्ती न जाने किस सोच में पड़ गए !

"फिर क्या हुआ, पिताजी ? वह जौहरी अब है कहां ?" कुन्दवि ने उद्वेलित स्वर में पूछा।

चक्रवर्ती ने सारी कथा बताकर कहा कि अपने ही घोड़े पर मैंने उसे उरैयूर भेज दिया है।

कुन्दवि थोड़ी देर चुप रही। फिर बोली, "जौहरी ने आपको पहचान तो नहीं लिया कि आप कौन हैं ?"

"नहीं, उसने मुझे नहीं पहचाना। पर यह तुम क्यों पूछ रही हो ?" चक्रवर्ती ने पूछा।

"यों ही—यह जानने के लिए कि आप का वेष बदलना कितना सफल रहा !" कुछ क्षणों के मौन के बाद कुन्दवि ने फिर कहा, "पिताजी, मैं आपसे एक बात पूछना चाहती थी।"

"कौन-सी बात, बेटी ?"

"पिताजी, भाई ने अभी तक उरैयूर नहीं देखा है। इसलिए हम दोनों वहां जाने की सोच रहे हैं। आपकी क्या राय है !"

"जाओ, खुशी से जाओ—हां, उरैयूर की बात उठने पर एक बात याद हो आई। मैंने कल मारप्प भूपति को मामल्लपुरम में देखा। वह इधर क्यों आया है ? इस बात का तुम्हें कुछ पता है ?"

"हां, है क्यों नहीं ? मारप्प भूपति को मैंने और भाई ने ही उरैयूर से बुलाया था।"

"किस काम से ?" चक्रवर्ती ने आश्चर्य से पूछा।

"सेनापति अच्युत वर्मा ने समाचार भेजा था कि उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता जा रहा है। शासन-भार संभालना उनके लिए मुश्किल हो रहा है। इसपर भाई ने मारप्प भूपति को बुलाकर उसे फिर से चोल देश के सेनापति का पद सौंप दिया है।"

"अच्छा !" चक्रवर्ती के मुंह से बस इतना ही निकला। फिर वे एकदम बड़े सोच में पड़ गए। कुन्दवि ने देखा कि अब उनसे बातें करने से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। इसलिए वह हाथ में वीणा लेकर बैठ गई और एक करुण धुन बजाने लगी।

तेईस

महेन्द्र चक्रवर्ती के ज़माने में ही नहीं, नरसिंह वर्मा के ज़माने में भी तमिष्-नाडु में शैव और वैष्णव धर्म दोनों खूब पनप रहे थे। ये दोनों धर्म प्रेम और जीवों पर करुणा के सिद्धान्तों पर खड़े थे। उस समय जैन और बौद्ध धर्म का जोर घट रहा था। लेकिन उनके जो अच्छे अंश थे वे शैव तथा वैष्णव धर्मों में भी स्थान पा चुके थे। इन सिद्धान्तों के साथ शिव-भक्ति और कृष्ण-प्रेम की भावनाएं मिलकर तमिष् देश को दिव्यभूमि का-सा रूप दे रही थीं। अप्पर, संबंधर-जैसे शैव धर्म के आचार्यों और आलवार-जैसे वैष्णव धर्म के संतों ने देय-भाषा तमिष् में सुन्दर गीत रचकर भक्ति-मार्ग का प्रचार किया था। शिवालय और विष्णु-मंदिर शिल्प-कला के अनुपम स्वप्नों की भांति जगह-जगह पर साकार होकर तमिष् प्रदेश की शोभा बढ़ाते थे।

महेन्द्र पल्लव के काल में पुलिकेशि उत्तर के वातापि से दक्षिण की तमिष् भूमि पर बढ़ आया था। उसकी सेनाओं के साथ कुछ भयंकर प्रथाएं भी तमिष् देश में प्रविष्ट हुईं। एक बार पुलिकेशि के दक्षिण से लौटने के बाद और एक बार नरसिंह वर्मा के वातापि पर चढ़ाई करने के समय तमिष् प्रदेश में भयंकर अकाल पड़े थे। इनसे प्रजा को अत्यधिक कष्ट हुआ था और इन्हीं नर-बलि पर विश्वास रखने वाले मत-मतान्तरों का जोर बढ़ गया था।

नरसिंह चक्रवर्ती इन प्रथाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने का बड़ा प्रयत्न करते थे। वे यह जानते थे कि धार्मिक अंधविश्वासों को दूर करने के लिए दंड का उपाय मात्र लाभप्रद सिद्ध नहीं होगा। अपनी गर्दन पर आप ही छुरी चलाने के लिए तैयार रहने वालों को दंड देकर किस प्रकार दबाया-धमकाया जा सकता है? इसीलिए दो वर्षों से अपने पुत्र के हाथ राज-काज सौंपकर वे छद्म-वेष में घूमने और इसका पता लगाने में लगे थे कि ये प्रथाएं कितनी दूर तक फैली हैं और इनके केन्द्र और मठ कहां-कहां हैं? यही कारण था कि जब विक्रम पर विपत्ति आई तो चक्रवर्ती उसे समय से बचा पाए।

लेकिन विक्रम ने यह नहीं जाना कि उस पर जो विपत्ति आई थी वह किस प्रकार की थी। उसका तो यही ख्याल था कि चोरों ने उस पर आक्रमण किया था। गुप्तचर-प्रधान से विदा लेकर और उनके घोड़े पर चढ़कर विक्रम जाने लगा तो उसके मन में तरह-तरह की विचार-लहरियां उठकर तूफान मचा रही थीं। मां को देखने की लालसा का स्थान प्रथम था। गुप्तचर-प्रधान का शानदार घोड़ा यद्यपि बहुत तेजी से दौड़ रहा था तो भी विक्रम को लगता था कि यह और तेज क्यों नहीं चलता।

सहसा पूर्वी आकाश स्याह हो गया। काले-काले बादल उमड़ आए। धूल

उड़ाती हुई ठंडी हवा चलने लगी। दूर से पानी बरसने के बाद की गीली मिट्टी की भीनी महक हवा में उड़ती हुई आई। कुछ देर बाद यहां भी पानी बरसने लगा। वर्षा कोई साधारण बूंदा-बांदी नहीं थी। चारों दिशाओं में अंधेरा छा गया था, बिजली की कड़क कान भेद रही थी, और बार-बार बिजली चमकने से आंखें चौंधिया जाती थीं। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ऐसा लगता था मानो आसमान फट गया हो और बहुत दिनों से संचित पानी भूमि पर उंडेल रहा हो।

विक्रम एकदम तर-ब-तर हो गया था। ठंड से उसका शरीर कांपने लगा था। थोड़ी देर के लिए वह एक पेड़ के नीचे जाकर रुका। किन्तु पानी तो रुकने का नाम न लेता था। दिन ढलने लगा और रात का समय निकट आने लगा। घनघोर वर्षा के साथ रात्रि का अंधकार भी मिल जायगा तो क्या होगा? विक्रम ने सोचा कि पानी से बचने के प्रयत्न से तो बेहतर यह होगा कि आगे बढ़ चले और कहीं कोई गांव या मन्दिर पड़े तो उसमें जाकर रात बिताए। यह सोचकर उसने घोड़ा आगे बढ़ा दिया।

थोड़ी दूर चलने के बाद एक जंगली नदी पड़ी। देखने से तो लगता था कि पानी घुटनों तक ही होगा। पर जंगली नदियों का तो कोई विश्वास नहीं कि उनमें कब पानी बढ़ जाय। इसलिए जितनी जल्दी हो सके इसे पार कर लेना ही ठीक होगा। विक्रम ने यह सोचकर घोड़ा पानी में उतार दिया। जरा दूर जाने पर नदी की धारा तेज हो गई। घोड़ा नदी को पार न कर सकने के कारण, प्रवाह के साथ बहने लगा। नदी का पानी पल-पल बढ़ रहा था। आगे बढ़े या पीछे मुड़ चले—विक्रम कुछ निर्णय न कर पाया। इतने में उसने देखा कि घोड़ा भी ख़तरे में पड़ गया है और वह नदी में कूद पड़ा।

घोड़े पर से कूदने के बाद थोड़ी देर के लिए विक्रम घबरा गया। बहुत ही तेज बहती नदी ने उसे हतप्रभ कर दिया। लेकिन अपना सारा बल और बुद्धि लगाकर विक्रम ने किसी तरह अपने को संभाला और धारा का प्रवाह देखकर उसी के अनुसार तैरने लगा।

इधर-उधर देखने पर उसे लगा कि दोनों ओर के तट समान दूरी पर हैं। इसलिए वापस लौटने का विचार छोड़कर उसने उस पार जाने का निश्चय किया। पानी के उस तेज प्रवाह के कारण सीधे उस पार पहुंचना असंभव जानकर पूर्व की तरफ़ खड़े पीपल के वृक्ष को लक्ष्य करके वह तैरने लगा।

सहसा उसे घोड़े की याद हो आई। हाय, घोड़ा पानी में बह गया तो क्या होगा? उसके मन को धक्का-सा लगा। किन्तु गर्दन घुमाकर देखा तो बहुत दूर पर, जहां वह घोड़े पर से कूद पड़ा था, वहीं घोड़ा प्रवाह से जूझता दीख पड़ा।

उसके दिल को तसल्ली हुई कि चलो, घोड़ा बच तो गया। पर उसे अपने बचने और पार पहुंचने की आशा क्षीण होती दिखाई दी। प्रवाह का वेग इतना

प्रबल था कि हाथी या चट्टान भी उसके सामने न ठहर पाते। बेचारा विक्रम कर ही क्या सकता था ? उसके हाथ-पैर थकान से चूर हो गए थे। उसे निश्चय हो गया कि तैरकर नदी पार करना असंभव है। ओह ! विधि की कैसी विडंबना है। उसने कैसे-कैसे सपने देखे थे, आशा-आकांक्षाएं मन में संजोई थीं। उन सबका क्या यही अंत होना था ?

विक्रम के हाथ अब बिलकुल बेकाम हो गए थे। उसका शरीर लोहे-सा भारी लगने लगा था···नहीं, अब नहीं, एक क्षण के लिए भी नहीं चल सकता···वह पानी में बहती हुई काली-सी क्या वस्तु आ रही है ? शायद धारा में कोई पेड़ बहता आ रहा है। भगवान् का भला हो कि इस समय सहारे के लिए इसे भेजा। ···पर अरे यह क्या ? यह तो उधर बह गया। ···उसीके साथ आशाएं भी चली गईं। विक्रम की आंखों के सामने घना अंधेरा छा गया।

उस समय उसे अचानक नाविक पोन्नन का स्मरण हो आया। बचपन में कावेरी नदी में तैरना सीखते हुए कभी-कभी वह इसी प्रकार थक जाया करता था और डूबने को हो जाता था। तब ऐसे मौकों पर पोन्नन हाथ का सहारा देकर उसकी सहायता करता था। वैसे ही पोन्नन अब भी आ जाता तो कितना अच्छा होता···पर यह कैसा पागलों-जैसा विचार है···पोन्नन यहां क्यों आयगा ···पर वह किनारे पर कोई आदमी खड़ा है···कौन होगा ?···शायद पोन्नन ही हो···पर यह क्या पागलपन है···निरा भ्रम···।

"अम्मा, अम्मा !" एक उठती हुई बड़ी लहर का धक्का विक्रम को लगा और वह अचेत हो गया।

धीरे-धीरे विक्रम की चेतना लौटी तो किसी के पुकारने का स्वर कानों में पड़ा, "महाराज ! महाराज"—स्वर इतना धीमा था मानो कहीं दूर से या जैसे गड्ढे में से आ रहा हो। पर यह स्वर है किसका ? परिचित-सा लगता है। अरे, यह तो नाविक पोन्नन का ही स्वर है। यह सब सच है या स्वप्न ? धीरे-धीरे विक्रम को जंगली नदी में कूदने और तैरते हुए थककर पानी में डूबने तक की सारी बातें याद हो आईं और उसने सोचा कि वह मर गया है और परलोक में उसे यह स्वर सुनाई पड़ रहा है। अभी तक विक्रम की आंखें मुंदी थीं। बड़े प्रयत्न के बाद आंखें खोलकर उसने देखा तो नाविक पोन्नन का चेहरा ही सामने था। वर्षा में भीगने और नदी में तैरते रहने से उसका सारा शरीर तर हो गया था, पानी की बूंदें उसके शरीर से टपक रही थीं और नेत्र भी शरीर से होड़ लगाते आंसू टपका रहे थे।

"पोन्नन, तुम···? तुम्हीं हो ? यह सब सच है कि सपना ?" विस्मय में पकड़कर विक्रम ने पूछा।

"महाराज, मैं भी यही पूछना चाहता था। सचमुच आप ही हैं ?" यह सच

है या सपना ? क्या सच ही मैंने विक्रम महाराज को पानी से निकाला है ? मुझसे बातें करने वाले आप ही हैं ? मुझे तो किसी भी बात का विश्वास नहीं हो रहा है।"

विक्रम झट से उठ बैठा ! "पोन्नन, मैं सचमुच विक्रम ही हूं। एक अजीब बात बताऊं। नदी की तेज धार में डूबते-डूबते मेरे मन में किसका विचार आया था, जानते हो ? तुम्हारा। कावेरी में तैरना सीखते हुए हाथ-पांव थक जाने के कारण मैं न जाने कितनी बार डूबने को हो आया था और तुमने ही मुझे उठाकर नाव पर बिठाया था। ये बातें मुझे याद आईं तो सोचा कि अब भी तुम आ जाओ तो कितना अच्छा हो। उसी समय किनारे पर कोई दिखाई दिया तो तुम्हीं मेरी आंखों के सामने आये। पर तुम हो नहीं सकते, यह मेरा निरा भ्रम है—सोचते-सोचते मैं अचेत हो गया। पर अब देखता हूं कि सचमुच तुम्हीं थे। कैसा विचित्र संयोग है ! ऐसे ठीक समय तुम यहां कहां आ पहुंचे ?" विक्रम ने पूछा।

"मुझे भी तो आश्चर्य हो रहा है, महाराज !···वह देखिए, उस मंडप को।" पोन्नन ने उंगली उठाकर दिखाया, थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा मंडप था।

"जोर से पानी बरसने लगा तो मैंने उसी मंडप की शरण ली। नदी में बाढ़ आई तो मैं यह दृश्य देखता रहा। उस पार एक घोड़ा आता दिखाई दिया। मैं यह सोच ही रहा था कि इस समय नदी में उतरना ख़तरे से खाली नहीं होगा, तब तक आप झट से नदी में उतर पड़े। मैं यह नहीं जानता था कि वह आप ही हैं। आपको घोड़े पर से पानी में कूदते और तैरकर इस पार आने का प्रयत्न करते हुए देखा तो यहां आकर खड़ा हो गया। हाथ-पांव थक जाने से आप जब डूबने लगे तो मुझसे न रहा गया और मैं पानी में कूद पड़ा। महाराज उस समय—कहने में संकोच हो रहा है, पर मेरे मन में हल्का-सा विचार उठा था कि बाढ़ में मैं भी बह गया तो क्या होगा ! लेकिन झट से उस विचार को दूर करके मैं पानी में कूद पड़ा। अगर कुछ आगा-पीछा सोचकर मैं न कूदा होता तो···!" इतना कहकर पोन्नन ने आंखें बन्द कर लीं। उस बात के स्मरण-मात्र से उसका सारा शरीर थर-थर कांप उठा।

"पोन्नन उस बात को अब क्यों ध्यान में लाते हो ? हमारे कुल देवता मुरुगन ने ही तुम्हें उस समय सुबुद्धि और हिम्मत प्रदान की थी। नहीं, नहीं ! स्वर्गीय पार्थिव महाराज की ही अदृश्य शक्ति सहायक बनकर विपत्ति के समय मेरी रक्षा किया करती है।—न जाने, मैं क्या-क्या बातें कर रहा हूं—पोन्नन ? यह तो बताओ, महारानी कुशल से तो हैं न ?" विक्रम ने बड़ी उत्कण्ठा से पूछा।

महारानी का नाम सुनते ही पोन्नन ने दोनों हाथों से आंखें बन्द कर लीं और फूट-फूटकर रो पड़ा उसे देखते ही विक्रम का कलेजा धक हो गया। डरते हुए उसने पूछा, "हाय, पोन्नन ! कौन-सी विपत्ति आ पड़ी ? क्या महारानी नहीं रही ?"

"नहीं, महाराज ! महारानी कहीं-न-कहीं ज़रूर हैं ! पर इस बात का पता

नहीं, कि हैं कहां !" पोन्नन ने उत्तर दिया।

विक्रम की कुछ जान में जान आई। "पर यह कैसे ? मैं तो महारान को तुम्हारी देख-रेख में छोड़ गया था। तुम इतने असावधान कैसे हो गए ?..."

"महाराज, ये सारी बातें ज़रा विस्तार से बतानी होंगी। लगता है कि वर्षा और ज़ोर पकड़ेगी और आप पहले से भीगे हुए हैं। ठंडी हवा भी चल रही है। आइये, उस मंडप में चलें, वहीं बैठेंगे। बहुत-सी बातें कहनी हैं और बहुत-सी सुननी हैं। रात भी निकट आ गई है !" पोन्नन ने कहा। दोनों उठकर मंडप की ओर चल दिए।

चौबीस

विक्रम और पोन्नन के मंडप में पहुंचते-पहुंचते खूब अंधेरा हो चला था। निर्जन स्थानों में यात्रियों के रहने-सहने के लिए ये मंडप बनवाये गए थे। महेन्द्र चक्रवर्ती के ज़माने में उनके आदेश पर ये मंडप बने थे और इसीलिए ये महेन्द्र-मंडप के नाम से विख्यात थे।

मंडप के बाहर जो चबूतरा था, उस पर विक्रम को बिठाकर पोन्नन अंदर गया और वहां उसके जो सूखे कपड़े रखे थे उन्हें उठा लाया। विक्रम ने उन्हें लेकर पहन लिया। बरसात की उस अंधेरी रात में रास्ता चलना बहुत मुश्किल होगा। इसलिए दोनों ने निश्चय किया कि रात उसी मंडप में बिताएं।

तब पोन्नन ने विक्रम को महारानी अरुल्मोलि के बारे में बताया : विक्रम जब काले पानी की सज़ा पाकर जहाज़ से समुद्र पार के देश को भेज दिया गया तो महारानी को अपना जीवन भारी लगने लगा। फिर भी वे इसी आशा और विश्वास पर जीवित थीं कि कभी पुत्र को दुबारा देखने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। लेकिन बसंत-महल में, जहां वह पहले पति के और बाद में पुत्र के साथ रह चुकी थीं, अकेली रहते हुए बड़ी वेदना अनुभव करती थीं। उस समय पार्थिव महाराज के परम मित्र और पल्लव-साम्राज्य के भूतपूर्व सेनापति परंज्योति अपनी धर्मपत्नी के साथ तीर्थाटन करते हुए उरैयूर आए। उन्होंने बसंत-महल में आकर महारानी अरुल्मोलि को बहुत समझाया-बुझाया। महारानी ने उन दोनों के साथ तीर्थयात्रा पर जाने का विचार प्रकट किया तो वे उन्हें भी साथ लेकर तीर्थाटन करने यात्रा पर निकल पड़े।

दो वर्ष का तीर्थाटन समाप्त करके परंज्योति अपने निवास स्थान तिरुच्चेंकाट्टानकुटि वापस आए। उसी वर्ष पौष की अमावस्या के दिन महोदय पुण्यकाल था। इसके अतिरिक्त सूर्य-ग्रहण भी लगने वाला था। इसलिए कावेरी संगम में पर्व-स्नान करने देश के चारों ओर से लोग आए थे। हम लोग भी काफ़ी दिनों का

लम्बा रास्ता तय करके कावेरी-संगम पर आए थे।

पर्व के दिन सवेरे परंज्योति, उनकी धर्मपत्नी तिरुवेण्काट्टू नंगे, महारानी अरुल्मोलि, पोन्नन और वल्लि सब एक साथ कावेरी-संगम को चल पड़े थे। उस दिन संगम पर कल्पनातीत भीड़ थी। लगता था कि संसार-भर के तमाम लोग वहीं आकर इकट्ठे हो गए हों। नदी-संगम में लहरें ज़ोरों से उठ रही थीं और तट से ऐसी टकराती थीं मानो ताली बजा-बजाकर आनन्दित हो रही हों।

उस भीड़ के बीच परंज्योति और महारानी अरुल्मोलि आदि स्नान करने उतर पड़े थे। उसी समय सूर्य-ग्रहण लगना शुरू हुआ था। धीरे-धीरे सूर्य का प्रकाश मंद हो गया और समुद्र की हिलोरों का शोर अत्यन्त बढ़ गया।

दिन के समय, स्वच्छ नीले आकाश में सहसा सूर्य के प्रकाश को घटते और अंधकार को बढ़ते देखकर लोग भयभीत हो उठे। भक्तजन सृजन, पालन और संहार करने वाले परम ब्रह्म भगवान् की लीला का स्मरण करके आनन्द-विभोर हो रहे थे। परंज्योति भी भक्ति-भाव में लीन थे। रानी अरुल्मोलि आंखें बन्द करके ध्यानावस्थित दशा में थीं।

उस समय वल्लि ने पोन्नन से कहा, "मुझे तो डर लग रहा है। चलो, हम किनारे पर चलें।"

"बस, इसी साहस को लेकर इतनी दूर आई थी!" पोन्नन ने वल्लि की हंसी उड़ाई। उसने अपनी बात खत्म न की थी कि एक अत्यन्त दुःखमयी घटना अप्रत्याशित रूप से घट गई।

रानी अरुल्मोलि ने अपनी बन्द आंखें खोलीं और बोलीं, "बेटा विक्रम! मैं अभी आई!" रानी की चीख समुद्र की उत्ताल तरंगों की गर्जना को दबाकर गूंज उठी तथा पोन्नन और वल्लि के कानों में पड़ी। दूसरे ही क्षण महारानी समुद्र में कूद पड़ीं और पलक मारते एक बड़ी लहर ने उन्हें अपनी चादर में समेट लिया।

पोन्नन और वल्लि एकदम चिल्ला उठे। परंज्योति का ध्यान टूटा और उन्होंने आंखें खोलकर पूछा, "क्या बात है?" पोन्नन ने दुःख-भरे स्वर में उत्तर दिया, "हाय, महारानी पानी में बह गईं।" परंज्योति ने अपनी धर्मपत्नी और वल्लि को आदेश दिया कि वे दोनों तुरन्त घाट पर चली आयं। उस समय पूर्ण सूर्य-ग्रहण लग चुका था। आकाश नक्षत्र दीखने लगे थे। अंधेरे के बीच भयभीत जनों के मुंह से चीख-पुकार उठ रही थी तो भक्त-जनों के कंठ से "हर-हर शंभो महादेव" की जय-ध्वनि गूंज रही थी। ग्रहण के उस अंधकार में परंज्योति और पोन्नन ने अरुल्मोलि की खोज में सारा समुद्र छान डाला।

विक्रम ने जब यह सुना कि 'बेटा विक्रम, मैं अभी आई' चिल्लाती हुई अरुल्मोलि समुद्र में कूद पड़ी थीं तो उसकी आंखों से आंसुओं की धारा फूट पड़ी। उसने सोचा कि समुद्र पार के किसी अज्ञात देश में रहने वाले अपने पुत्र की याद

आई तो मां की ममता और न सह सकी, पुत्र-प्रेम से पागल होकर महारानी समुद्र में कूद पड़ीं !

पोन्नन अपने और परंज्योति के प्रयत्नों का वर्णन करने लगा तो विक्रम ने बीच में टोककर आतुरता से पूछा, "पोन्नन, यह बताओ कि महारानी मिलीं या नहीं ?"

"नहीं महाराज, नहीं मिलीं। फिर महारानी के दर्शन करने का सौभाग्य इन पापी आंखों को नहीं मिला !" कहते-कहते पोन्नन भी आंसू बहाने लगा।

फिर वह जो कुछ जानता था विस्तारपूर्वक सुनाया। लहरों के बीच घने अन्धकार में परंज्योति और पोन्नन ने महारानी को ढूंढ़ निकालने में कोई कसर न उठा रखी। पर वे न मिलीं।

परंज्योति ने निराश होकर कहा, "पोन्नन, देवी को समुद्रराज उठा ले गए।" पोन्नन का दिल टूट गया और वह फूट-फूटकर रो पड़ा। उसके बाद उन दोनों ने यही सोचा कि अगर रानी मिलेंगी भी तो उनका निष्प्राण शरीर ही हाथ लगेगा ! निष्प्राण शरीर को समुद्र की लहरें किनारे पर ले ही आयंगी, अब और ढूंढ़ने से कोई लाभ नहीं है। यह सोचकर दोनों जने किनारे पर चढ़ आए। उस समय सूर्य धीरे-धीरे ग्रहण से मुक्त हो रहा था। अन्धकार को दूर करता हुआ सूर्य का प्रकाश फैलने लगा था। लगता था मानो वर्षा की कोई संध्या हो। परंज्योति और पोन्नन के किनारे पर आते ही परंज्योति की पत्नी और वल्लि व्यग्रता से चीख उठीं, "आइए, जल्दी आइए।" दोनों जल्दी से उनके पास पहुंचे तो बोलीं, "अभी कोई एक हाथ वाला आदमी समुद्र से किनारे पर चढ़ा है। उसके कन्धों पर बेहोशी की हालत में एक औरत थी। धुंधले प्रकाश में वह अरुल्मोलि महारानी-जैसी ही लगती थीं। हम चिल्लाने लगीं तो वह आदमी भीड़ में कहीं छिप गया।" सारी बात जानने-समझने में कुछ समय लग गया। फिर पोन्नन और परंज्योति ने महारानी को उस भीड़ के बीच ढूंढ़ना शुरू किया। लेकिन सारे प्रयत्न विफल हुए। उस विशाल जन-समुदाय में न तो वे उस एक हाथ वाले आदमी का पता लगा पाए और न महारानी अरुल्मोलि का। रत्ती-रत्ती भूमि छान डालने पर जब कुछ पता न चला तो परंज्योति को अपनी पत्नी और वल्लि की बातों पर अविश्वास-सा होने लगा। उन्होंने सोचा कि शायद उन दोनों को भ्रम हुआ हो। पर वे दोनों अपनी बात पर अड़ी रहीं और ज़ोर देकर बोलीं कि हमने निश्चयपूर्वक उस आदमी को और महारानी को देखा है। ये सारी बातें सुनने के बाद पोन्नन ने बताया कि अब भी उसे महारानी के जीवित रहने की बात पर विश्वास क्यों है ?

वल्लि और पोन्नन कुछ दिनों के लिए तिरुच्चेंकाट्टांकुटी में ठहरे रहे और महारानी के सम्बन्ध में बिना कुछ जाने ही उरैयूर वापस आए। उनके उरैयूर पहुंचने के कुछ दिन बाद शिवयोगी आए थे। महारानी की बातें सुनकर वे बहुत

दुखी हुए। उन्होंने पोन्नन से पूछा—"जानते हो एक हाथ वाला वह आदमी कौन है ?"

"नहीं, महाराज,"—पोन्नन ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो शिवयोगी ने कहा, "वह कपाल रुद्रभैरव है, कापालिक धर्मावलम्बियों का प्रधान पुजारी तमिष् प्रदेश में नर-बलि की भयंकर परम्परा फैलाने में वही सूत्र-धार का काम कर रहा है। मैं उसे रोकने का प्रयास करता आ रहा हूं। कहीं किसी गुप्त स्थान में उसने रणभद्र काली के मन्दिर का निर्माण किया है। हम उस स्थान का किसी तरह पता लगा पायं तो शायद वहीं महारानी मिल जायंगी।"

यह सुनकर पोन्नन एकदम घबरा उठा था और भय से चीखकर बोला था, "हाय, हाय ! काली माता की सन्निधि में उसने महारानी को बलि चढ़ाई हो तो···?" इस पर शिवयोगी ने कहा, "नहीं, पोन्नन ! केवल एक बलि चढ़ाने के लिए कपाल भैरव इतने मुश्किल काम को सिर पर न लेता। इसमें उसका कोई और ध्येय अवश्य होगा और इसलिए रानी के प्राण बड़े यत्न से बचाना होगा। हमें रणभद्र काली के मन्दिर का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।"

शिवयोगी और पोन्नन ने निश्चय किया कि पल्लव और चोल प्रदेशों को दो टुकड़ों में बांटकर एक-एक प्रदेश में दोनों जने ढूंढें। पोन्नन ने अपनी पत्नी वल्लि को बुआ के घर पहुंचा दिया और चोल देश-भर में घूमा। फिर कावेरी के इस पार आकर ढूंढ़ने लगा था। महीनों की दौड़-धूप का फल अभी चार दिन पहले हाथ लगा। उस जंगली नदी के किनारे होकर चार-पांच कोस की दूरी तक पोन्नन गया तो एक पहाड़ी की तराई मिली। वहां से जंगली नदी के उद्गम को लक्ष्य करके आगे बढ़ने लगा। धीरे-धीरे नदी छोटी होती गई और उसका रूप एक झरने का-सा रह गया। उसके पास से पहाड़ पर चढ़ना कोई सरल काम न था।

दोपहर तक चढ़ते-चढ़ते पोन्नन थककर एक चट्टान पर बैठ गया। उसके मन में विचार आया कि अब आगे बढ़ने की अपेक्षा नीचे उतर जाने में ही भलाई है। अगर कहीं रात को इन वन-प्रदेश में फंस जायगा तो संभव है कि हिंसक पशुओं का शिकार हो जाय। इस बारे में वह कुछ निर्णय न कर पाया था कि अचानक उसे मानव-स्वर सुनाई पड़ा। पोन्नन एकदम घबरा गया और साथ ही यह सोच-कर प्रसन्न भी हुआ कि शायद अब उसके प्रयास सफल होने को हैं। किन्तु साव-धानी तो अवश्य ही बरतनी चाहिए। यह सोचकर चट्टान की आड़ में छिपकर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद ऊपर से दो आदमी नीचे की तरफ उतरते दिखाई दिये। लेकिन वे क्या सचमुच आदमी ही थे ? एक तो देखने में मनुष्य-सा दीखता था, किन्तु इतनी भयंकर मुखाकृति पोन्नन ने अपने जीवन में कभी नहीं देखी थी। उस भयंकर रूप की सबसे भयंकर चीज़ थी, लाल-लाल पैनी आंखें। उसका मोटा

तगड़ा लम्बा शरीर, बड़ी-बड़ी मूछें, सिर के घुंघराले बाल, माथे पर लगा लाल तिलक सभी उसके रूप को डरावना बना रहे थे। वह एक काला-सा कम्बल ओढ़े था। एक चट्टान से दूसरी चट्टान फांदने में उसका कम्बल खिसक पड़ा। पोन्नन के मुख से चीख उठी। पर डर के मारे कंठ में ही दब गई। उस आदमी का एक हाथ कटा हुआ था।

पोन्नन के मन में तुरन्त विचार उठा कि हो न हो, यही वह व्यक्ति है जो महारानी अरुल्मोलि को कन्धे पर उठा ले गया था। दोनों महिलाओं ने जो वर्णन दिया था उससे इसकी हुलिया बिल्कुल मिलती-जुलती थी और शिवयोगी के बताए हुए कपाल रुद्र भैरव का रूप भी इसका-सा था।

उसकी सूरत ने भी पोन्नन को भय-मिश्रित विस्मय में डाल दिया था। वह एक बड़ा विचित्र-सा बाना था। देखने में तो दस वर्ष का लड़का लगता था, पर चेहरा अधेड़ पुरुष का था। बौना होते हुए भी वह बड़ी तेज़ी से कपाल रुद्र भैरव का पदानुकरण कर रहा था।

पोन्नन के मुख से यह बात सुनकर विक्रम ने बड़ी उत्कण्ठा से कहा कि उस बौने की सूरत-शक्ल का और विस्तार से बयान करो। पोन्नन ने सब बताया और फिर पूछा, "महाराज, क्या बात है? ऐसे किसी आदमी को आपने भी कहीं देखा है क्या?"

विक्रम ने कहा, "हां, पोन्नन! उसके सम्बन्ध में मैं फिर कभी फुरसत से बताऊंगा। पहले तुम अपनी बात पूरी करो।"

"अब तो और अधिक कुछ नहीं, महाराज! झरने के किनारे-किनारे वे दोनों दूर उतर गए तो मैं ऊपर चढ़ने लगा। मन में यह आशा लिये था शायद उनके निवास-स्थान और काली माता के मन्दिर का पता लग जाय और सम्भव है कि महारानी के भी दर्शन हो जायं। लेकिन थोड़ी ही देर में आशा मिट गई। क्योंकि कुछ आगे जाने पर देखा कि झरना बड़ी ऊंचाई से ऊपर से नीचे गिर रहा था। चट्टान भी वहां ऊंची और सीधी खड़ी थी। वहां पर चढ़ना या उतरना एक अकेले व्यक्ति के लिए असम्भव था। उन दोनों के लिए ऊपर से किसी ने रस्सा फेंका होगा और उसी से वे नीचे उतरे होंगे, या फिर कहीं कोई गुप्त मार्ग होगा। मैंने इस विचार से सारा वन-प्रदेश छान डाला, पर कोई फल न निकला। फिर यह सोचकर कि जो गए हैं वे लौटेंगे ही, पहाड़ी की तराई में उनकी प्रतीक्षा में तीन दिन तक ठहरा रहा। पर वे लोग नहीं लौटे और फिर मैं यह विचार कर चला आया कि आखिर कितने दिन प्रतीक्षा करूं? जाकर शिवयोगी से सलाह क्यों न लूं? और यहां पहुंचा भी कैसे मौके पर!" पोन्नन की बात पूरी हो गई।

विक्रम ने पूछा, "तुम्हें विश्वास है पोन्नन, कि महारानी कहीं-न-कहीं उसी पहाड़ पर हैं?"

"हां, महाराज ! पहले जब शिवयोगी ने कहा था तब मुझे इतना विश्वास नहीं था। लेकिन एक हाथ वाले उस भैरव को देखकर विश्वास करने को जी करता है कि महारानी अवश्य ही जीवित हैं और यहीं कहीं हैं !" पोन्नन ने कहा।

उसी समय अंधेरे मण्डप के बाहर दो व्यक्तियों के बोलने की आवाज़ सुनाई पड़ी। आवाज़ निकट आती जान पड़ी तो पोन्नन ने विक्रम से मंडप के कोने में छिप जाने को कहा और स्वयं द्वार पर आकर आड़ में खड़ा हो, अत्यन्त सतर्कता से झांककर देखने लगा। दो व्यक्ति उधर ही आते दीख पड़े। लेकिन अंधकार में उनका चेहरा स्पष्ट नहीं था। संयोग से कहीं बिजली चमक उठी और दोनों को देखकर पोन्नन सिर से पैर तक कांप उठा। उनमें एक मारप्प भूपति था और दूसरा कपाल रुद्रभैरव।

दोरों पानी से बचने के लिए मंडप के द्वार पर आ खड़े हुए। उनकी बातें कुछ स्पष्ट, कुछ अस्पष्ट भीतर सुनाई पड़ीं।

एक स्वर विक्रम ने झट पहचान लिया और वह चौंककर उठा तो पोन्नन ने उसका हाथ पकड़कर बिठा दिया।

"महाप्रभु, काली माता ने मुझे और कौन-सी आज्ञा दी है ? कृपा करके बताइए।" मारप्प भूपति ने अत्यन्त विनम्र भाव से पूछा।

उत्तर देने वाला स्वर इतना कर्कश था कि सुनकर रोमांच हो उठता था। "माता रणचंडी तुम पर बहुत प्रसन्न हैं और तुम्हें बड़े-बड़े पदों पर बैठाने वाली हैं। पर वे तुमसे बड़ी-बड़ी आशाएं भी रखती हैं। माता बड़ी प्यासी हैं, राजवंश का रक्त चाहती हैं।"

"मैंने बड़ा प्रयत्न किया था, प्रभु ! वर्षों पुराने राजवंश में उत्पन्न राजकुमार को काली माता की सन्निधि में अर्पण करने का प्रयास किया था। न जाने कैसे वह अवसर हाथ से निकल गया और मेरा वह षड्यंत्र सफल नहीं हुआ।"

"तुम्हारे ही कारण वह काम बिगड़ गया। उस राजकुमार के लिये मैं स्वयं आया था। तुमने बीच में दखल देकर सारी बात बिगाड़ दी।"

"प्रभु, क्षमा हो।"

"अच्छा, जाने दो। जो हो गया सो हो गया। माता ने तुम्हें क्षमा कर दिया। लेकिन वह प्यास की रट लगाये हैं। राजवंश का रक्त चाहती हैं। यह अमावस्या तो चली गई। कम-से-कम तुला-रवि में माता की प्यास बुझा ही देनी चाहिए। किसी तरह से ढूंढ़-ढ़ांढकर पकड़ ही लाना चाहिए।"

"पकड़ लाऊं तो···"

"बड़े-बड़े पद तुम्हें ज़रूर मिलेंगे।"

"अच्छा !" कहकर मारप्प भूपति चुप हो गया। थोड़ी देर के लिए वहां मौन छाया रहा।

"लेकिन ऐसा बड़ा पद आसानी से नहीं मिलेगा। याद रखना ! तुम्हें काली माता के नाम उसके योग्य भेंट चढ़ानी होगी।"

"इस अकिंचन दास से माता किस बात की आशा रखती हैं ?"

"पहले पार्थिव के पुत्र को किसी तरह पकड़ लाना चाहिए।"

"अच्छा, ज़रूर लाऊंगा···और···?"

"आगामी तुला विषु के दिन···"

"बताइये, प्रभु !"

"काली माता की सन्निधि में तुम्हें आना चाहिए।"

"आकर···"

"अपना सिर अपने हाथों काटकर काली माता को चढ़ाना चाहिए।"

"हाय !" मारप्प भूपति चीख पड़ा।

"चढ़ाओ तो अगले जन्म में कांची राज्य के चक्रवर्ती नरेश हो सकते हो। नहीं तो···"

"नहीं तो, क्या प्रभु ?"

"आत्म-बलि के बराबर की एक महाबलि चढ़ानी होगी। चढ़ा सको तो इसी जन्म में चक्रवर्ती का जन्म पा सकते हो।"

"वह कौन-सी बलि है, स्वामी ?"

"उस रुद्राक्षधारी शिवयोगी को पकड़ लाओ—बलि चढ़ाने के लिए।"

"प्रभु, आपने तो कहा था कि माता राजवंश का रक्त चाहती हैं। अब आप कहते हैं कि रुद्राक्षधारी शिवयोगी को पकड़ लाओ। ऐसा क्यों ?" मारप्प भूपति ने पूछा।

"भूपति, तुम्हारा ज्ञान बहुत कम है। वह वेशधारी शिवयोगी कौन है, जानते हो ?"

"कौन है प्रभु ?" चकित होकर मारप्प भूपति ने पूछा।

"भूपति, यह तो एक बड़ा रहस्य है। ऐसा रहस्य जिसे न कोई जानता है, न जान सकता है। हवा के कानों में भी उसकी भनक न पड़नी चाहिए। इसलिए पास आओ, तुम्हारे कानों में बताऊंगा।"

विक्रम और पोन्नन आश्चर्य और भय के साथ उपर्युक्त वार्तालाप सुन रहे थे। अब तो और भी चौकन्ने हुए कि वह रहस्य जान लें। पर उनके कानों में कुछ भी न पड़ा। वह रहस्य उनके लिए रहस्य ही रह गया।

उसी समय थोड़ी दूर पर घोड़ों की टाप और आदमियों का शोर सुनाई पड़ा। पोन्नन ने दबे पांव बढ़कर बाहर झांककर देखा। चार-पांच घुड़सवार मशालें लिये आते दिखाई दिए। उसका दिल धक-धक करने लगा और अपना सिर उसने झट से अन्दर खींच लिया।

तब मारप्प भूपति ने कहा, "महाप्रभु, मेरे आदमी मुझे खोजते हुए आ गए हैं, मैं जाऊं ?"

"अच्छा, मैं भी छिप जाता हूं। माता की आज्ञा स्मरण रहे।"

"अवश्य। हम फिर कहां मिलेंगे ?"

"पहले जहां मिले थे, वहीं। चित्रगुप्त तुम्हारी राह देखता होगा।"

इसके बाद थोड़ी देर तक बातचीत की कोई आवाज़ नहीं आई। सहसा थोड़ी दूर पर जय-घोष सुनाई पड़ा, 'जय हो, चोल सेनापति मारप्प भूपति की !' पोन्नन और विक्रम ने मंडप के अन्दर से बाहर आकर देखा तो मशालों की रोशनी में उरैयूर के राजमार्ग पर बड़ी तीव्र गति से घोड़े जाते दिखाई दिए।

'महाराज, हम बाल-बाल बचे।" कहकर पोन्नन ने ठंडी सांस ली।

अभ्यासवश विक्रम का हाथ तलवार ढूंढ़ता कमर पर गया ! वह बोला, "पोन्नन, कैसा दुर्भाग्य है मेरा ! जिस घोड़े पर आया था, वह बाढ़ में बह गया। रत्नों का जो थैला लाया था, वह भी पानी में समर्पित हो गया। इन सबकी मुझे कोई विशेष चिन्ता न थी। पर जान से प्यारी मेरी तलवार भी तो चली गई, अब क्या करूं ?"

"महाराज !"

"क्या है, पोन्नन ?"

"एक बात याद आती है। महारानी तीर्थाटन के लिए जब चलने लगीं तो आपको देने के लिए मेरे हाथ में एक पेटी दे गई थीं !"

"पेटी ? कैसी पेटी ? जल्दी बताओ, पोन्नन !"

"उस पेटी में आपके कुल की तलवार है। उसकी मूठ रत्नों से जड़ी है। मैंने अपनी आंखों से देखा है।"

"सच पूछो तो पोन्नन, उसी तलवार को पाने लिए मैं खास तौर से मातृभूमि को लौटा हूं। जब मेरे पिताजी युद्ध के लिए चले थे, तब उस पेटी को खोलकर उसमें जो तलवार और 'तिरुक्कुरल' की पोथी थी, उन्हें दिखाकर कहा था, 'मैं यही कुल-धन तुम्हें सौंपता हूं।' वह तलवार मेरे अजेय पूर्वजों की निशानी है। उसी के प्रताप से मेरे पूर्वजों ने समुद्र-पार के देशों में भी अपनी धाक जमाई थी। उसी तलवार का उपयोग हमारे वंश में यशस्वी पूर्वज करिकाल चोल ने किया था। पोन्नन, उसे तुमने सुरक्षित रखा है न ?"

"हां, महाराज !"

"कहां पर ?"

"बसंत-द्वीप में गाड़कर रखा है।"

"वहां क्यों रखा ?"

"और कहां रखता, महाराज ?"

"तो पोन्नन, हमें जल्दी ही बसंत द्वीप चलकर वह तलवार लानी है। मेरे पिताजी ने क्या कहा था, जानते हो ? नौ साल पहले की उनकी वह बात मुझे कल की-सी लगती है। उन्होंने कहा था, 'बेटा विक्रम, करिकाल चोल की यह अजेय तलवार तुम अपने उन हाथों से नहीं छू सकते जिनसे तुम किसी राजा को कर देते हो। यही कारण है कि मैंने अपने जीवन में इसको हाथ नहीं लगाया। जब तुम—चप्पा भर भूमि के ही सही—स्वाधीन शासक बनो तभी इसे धारण करना।' पोन्नन, चूंकि अब मैं चम्पक द्वीप का स्वाधीन राजा हो गया हूं, इसलिए वह तलवार धारण कर सकता हूं।"

"महाराज, केवल चम्पक द्वीप के क्यों, चोल देश के भी तो आप ही राजा हैं ?" पोन्नन उत्साह-भरे स्वर में बोला।

"पोन्नन, अभी वह समय नहीं आया है। लेकिन निकट भविष्य में वह भी हो जायगा। दो काम हमें तुरन्त करने हैं। एक तो वह अजेय तलवार और 'तिरुक्कुरल' लेनी है और दूसरे उस भयंकर नर-बलि वाले झुंड के हाथों से महारानी को छुड़ाकर लाना है। अब हमें यह निश्चय करना चाहिए कि इनमें से कौन-सा काम पहले करें और कौन-सा उसके बाद !"

सोच-विचारकर उन्होंने यही निश्चय किया कि पहले उरैयूर जाकर बसंत द्वीप से वह अजेय तलवार ले लेनी चाहिए। फिर शिवयोगी का पता लगाकर उनकी सहायता से महारानी को ढूंढ़ना चाहिए। दोनों बहुत ही थक गये थे। इसलिए यह भी निश्चय किया कि उस मंडप में रात बिताई जाय और सवेरे उठकर उरैयूर चला जाय। लेकिन उनको उस समय यह पता न था कि विक्रम को ज्वर हो आया है और भोर होते-होते उसकी दशा इतनी नाजुक हो जायगी कि वह एक कदम भी न उठा सकेगा। इसलिए दूसरे दिन उनका रात्रि में किया गया निश्चय कार्यान्वित न हो सका।

पच्चीस

कुन्दवि बचपन से ही पिता की लाडली होकर पली थी। नरसिंह चक्रवर्ती ही उसके पिता, माता, गुरु और मित्र रहे थे। लेकिन इधर तीन वर्षों से पिता-पुत्री के बीच एक पर्दा-सा खिंच गया था। देश निकाले का दंड पाए हुए चोल-राजकुमार की बात कुन्दवि के मन से दूर नहीं हुई। उसे भुला देने का उसने बड़ा प्रयत्न किया, पर असफल रही। राजकुमार के सम्बन्ध में कुन्दवि बातें करना चाहती थी। लेकिन करती तो किससे ? इतने दिनों तक तो वह दिल की बातें, आशाएं और अभिलाषाएं अपने पिता से कहा करती थी। किन्तु चोल राजकुमार के सम्बन्ध में वह उनसे बातें नहीं कर पाती थी। कभी कुछ कहती या पूछती तो वे ऐसा उत्तर

देते मानो उसकी इच्छा क्या है, यह समझे न हों। इसलिए कुन्दवि अब माता का अभाव महसूस करने लगी थी।

अभाव की पूर्ति के विचार से ही उसने विक्रम की माता से मिलना चाहा और उनके निकट पहुंचना चाहा। किन्तु विधि की विडम्बना कुछ ऐसी हुई कि जिस दिन उसकी मुलाकात महारानी अरुल्मोलि से हुई, उसी दिन वे परंज्योति के साथ तीर्थाटन को निकल पड़ीं। घूमते-घूमते वे एक बार मामल्लपुरम भी आई थी और कुछ दिन उस कला-क्षेत्र में ठहरी थीं। कुन्दवि भी उस समय मामल्लपुरम में थी। कई बार वह महारानी अरुल्मोलि से भी मिली थी। रानी का व्यवहार बड़ा स्नेह-पूर्ण था लेकिन फिर भी दोनों एक-दूसरे के निकट नहीं पहुंच पाईं। और यह संभव भी कैसे था? महारानी अरुल्मोलि का दिल इस बात से क्षुब्ध रहता था कि उसके इकलौते पुत्र को कुन्दवि के पिता ने देश-निकाले का दंड देकर किसी दूरवर्ती अज्ञात द्वीप को भेज दिया है। कुन्दवि को इसमें पिताजी का दोष न दीखता था। उसे अपने पिता पर अतुल प्रेम ही नहीं, अपार गर्व भी था। पिता के प्रति उसका प्रेम-भाव और आदर भाव एक-से-एक बढ़कर था। उसकी यही अवस्था थी कि उसके पिता इतिहास में प्रसिद्ध सूर्य-वंश और चन्द्र-वंश के चक्रवर्तियों की भांति बड़े गौरववान पुरुष हैं। उत्तर में नर्मदा तक जाकर दिग्विजय करके लौटने वाले महान् योद्धा हैं, राक्षस पुलिकेशि पर विजय प्राप्त करके वातापि को मिट्टी में मिलाने वाले पराक्रमी वीर हैं। ऐसे महान् चक्रवर्ती की अधीनता स्वीकार करके करद राजा बनकर रहना उस चोल राजकुमार के लिए भी गौरव का विषय था। क्या दो सौ वर्षों से चोलवंशी राजा पल्लव चक्रवर्ती के आधीन करद राजा होकर नहीं रहे थे? अब क्या हो गया कि इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे?

दोनों के विचारों में अन्तर होने के कारण वे आपस में हिल-मिल न पाईं, खुलकर बातें न कर पाईं। पर इसमें सन्देह नहीं कि दोनों का एक-दूसरे के प्रति लगाव था, स्नेह-भाव था। किन्तु मन का एक प्रमुख हिस्सा एक-दूसरे के लिए बन्द था।

एक दिन महारानी अरुल्मोलि ने किसी हद तक अपना दिल खोला था। उन्होंने बताया था कि बहुत पहले उनका विवाह कुन्दवि के पिता से होने की बात चली थी। पर उन्होंने स्वयं इसे रोककर पार्थिव महाराज से ब्याह कर लिया था। विक्रम के बचपन में उसका ब्याह कुन्दवि से करने का भी विचार उनके मन में आया था। बात सुनकर कुन्दवि का मन पुलकित हो उठा। लेकिन महारानी ने तब तक बात आगे बढ़ा दी, "वह सब तो निरा सपना हो गया। तुम किसी भाग्य-शाली राजकुमार से ब्याह करके सुखी रहो, बेटी!" कुन्दवि खीझ उठी।

"नहीं, माता जी। मेरा गृहस्थाश्रम से लगाव नहीं है। मैं तो माया-मोह का संसार त्यागकर शिवव्रता बनने वाली हूं।" कुन्दवि की इस बात का गूढ़ अर्थ

महारानी न समझ पाईं।

एक बार और कुन्दवि ने बातों के सिलसिले में कहा था, "युवराज विक्रम यदि पल्लव-साम्राज्य को कर देना स्वीकार कर लें तो अब भी लौट आ सकते हैं और चोल देश के राजा हो सकते हैं !" महारानी अरुल्मोलि का चेहरा घृणा से सिकुड़ आया था। बोलीं, "इससे अच्छा समाचार तो यही होगा कि विक्रम मर गया।"

मामल्लपुरम में जब महारानी अरुल्मोलि ठहरी थीं तो एक बार शिवयोगी उनसे मिलने आये थे। महारानी से बातें करके जब वे लौट रहे थे तभी कुन्दवि ने उन्हें देखा था। उसे सारी पुरानी बातें याद हो आई थीं। रानी के पास जाकर उसने पूछा था, कि वे शिवयोगी कौन हैं। पर रानी यह न बता सकीं कि वे कौन हैं ! बस, इतना ही कहा कि वे कोई पहुंचे हुए साधु-महात्मा हैं और वे ही उनके पति की वीर-मृत्यु के बाद उनके कुल देवता हैं। कुन्दवि ने मन-ही-मन सोचा कि कुल के देवता नहीं, कुलनाशी हैं। बाद में जब यह खबर उनके कानों में पड़ी कि अरुल्मोलि देवी कावेरी के संगम पर समुद्र में डूब गई थीं और उनको कोई उठा ले गया तो उसने मन में यही निश्चय कर लिया था कि वही कपट वेषधारी शिवयोगी उन्हें उठा ले गया होगा। जाने किस बुरी नियत से इतने दिन महारानी के पीछे पड़ा रहा।

इस दुर्घटना के कुछ ही दिन पहले कुन्दवि का भाई लंका विजय करके लौटा था। अपनी बहन से वह बहुत स्नेह करता था। कुन्दवि उससे अपने दिल की कुछ बातें बता सकी। अपनी बहन के मन की बात जानकर महेन्द्र ने निश्चय किया कि वह स्वयं चम्पक द्वीप जाकर किसी बहाने से विक्रम को स्वदेश लौटा लाने की कोशिश करेगा। इस विचार से उसने चक्रवर्ती से शावक, काम्बोज आदि द्वीपों पर धावा बोलने की अनुमति मांगी। चक्रवर्ती ने उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और कहा कि वे स्वयं उन द्वीपों को जाने का विचार कर रहे हैं, इसलिए महेन्द्र को युवराज का पद ग्रहण करके राज्य का शासन-भार अपने हाथ में ले लेना चाहिए। महेन्द्र इनकार न कर सका, उसके मन की बात मन में रह गई।

तभी कुन्दवि के बहुत जोर देने पर महेन्द्र ने मारप्प भूपति को चोल प्रदेश का सेनापति बनाया और उसे मामल्लपुरम बुला लिया। मारप्प भूपति को आदेश हुआ कि वह शिवयोगी का पता लगाये और उन्हीं के द्वारा रानी अरुल्मोलि देवी का भी पता करे। इसके अलावा उसे यह भी बताया गया कि कुन्दवि और महेन्द्र कुछ समय के लिए उरैयूर के बसंत-महल में आकर ठहरने वाले हैं, वह उनकी सुख-सुविधाओं का भी प्रबन्ध करे।

चक्रवर्ती ने सहर्ष उसको उरैयूर जाने की अनुमति दे दी और एक दिन महेन्द्र और कुन्दवि अपने परिजनों सहित उरैयूर की तरफ चल पड़े। विक्रम जिस दिन

जंगली नदी की बाढ़ में फंसकर बाल-बाल बचा था, उसके दूसरे दिन मध्याह्न के समय उस जंगली नदी से लगभग एक कोस की दूरी पर ये लोग आ रहे थे। कुन्दवि पालकी पर थी और युवराज महेन्द्र घोड़े पर।

महेन्द्र बहन को अपनी लंका-यात्रा और वहां के युद्ध के सम्बन्ध में बताता हुआ पालकी के साथ चल रहा था। उसने लंका की जल-थल संपत्ति का भी वर्णन किया। कुन्दवि बड़े चाव से सब सुन रही थी। फिर भी बीच-बीच में उसके मन का पंछी चंपक द्वीप के जौहरी की याद में उड़ जाता था और वह सोचती कि वह जौहरी यदि उरैयूर में मिल जाय तो कितना अच्छा रहे!

कुन्दवि उस समय अष्टावधानी हो गई थी। उसका मन जौहरी की याद में मंडरा रहा था, कान महेन्द्र की बातें सुनने का बहाना कर रहे थे। मुंह बहाने-बाज़ कानों का साथ देने के उपक्रम में हां-हूं कर रहा था और आंखें रास्ते पर लगी थीं। अचानक सामने जो दीखा, उसने कुन्दवि को एकदम चौंका दिया और उसका अष्टावधान छुड़वाकर उसे एकावधानी बना दिया। सामने से जीन कसे बढ़िया किस्म का एक घोड़ा बिना सवार के दौड़ा आ रहा था। पर उसे देखकर कुन्दवि को चौंक पड़ने की क्या ज़रूरत थी? कुन्दवि को स्वयं भी बात समझ में न आई। घोड़ा और पास आया तो स्पष्ट हुआ कि वह उसके पिता का घोड़ा है। उस पर कई बार उसने पिता को आते हुए देखा है। यह घोड़ा यहां कहां से आया? शायद पिता जी···नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि वे लोग कांची में पिताजी से विदा लेकर ही तो चले थे। उनके पहले वे यहां कैसे पहुंच सकते थे? और अगर यह भी मान लें कि पहुंच सके हैं तो घोड़ा अकेला क्यों आ रहा है?···अचानक कुन्दवि को एक बात का स्मरण हो आया। उसके पिताजी ने उसे बताया था कि मैंने जौहरी को अपना घोड़ा दिया था। घोड़े के बदले में उसने उन्हें जो रत्न दिये थे, वे भी उन्होंने उसे दिखाये थे। अवश्य यह वही घोड़ा होगा जिस पर जौहरी गया था। लेकिन यह अकेला क्यों लौट रहा है? जौहरी कहां है? उस पर क्या बीती है?···कुन्दवि को लगा कि उसकी सांस रुक रही है और दम घुट रहा है। उसका चेहरा एकदम फीका पड़ गया।

कुन्दवि के मुख पर यह भाव-परिवर्तन देखकर महेन्द्र से न रहा गया, पूछा "क्या है, बहन?"

"भैया, घोड़ा किसका है, जानते हो?"

"नहीं तो; किसका है?"

"पिताजी का।"

"पिताजी का? सच?"

"हां, इसी तरह के दो घोड़े पिताजी के पास हैं। यह पुष्पक है और दूसरा है

पारिजात।"

"अच्छा ! यह यहां कहां मारा-मारा फिर रहा है ? हम तो पिताजी से विदा लेकर ही कांची से चले थे। इसलिए मेरा ख़याल है कि वे इस घोड़े पर न आए होंगे। इतनी जल्दी आ भी नहीं सकते।"

"पिताजी ने बताया था कि उन्होंने चम्पक द्वीप के जौहरी को अपना एक घोड़ा दिया है।"

"ओ हो !"

इतने में घोड़ा बहुत निकट आ गया। महेन्द्र के आदेश पर साथ के सैनिकों में से एक ने घोड़ा पकड़ लिया। कुन्दवि ने घोड़े को पास लाने को कहा और उसकी पीठ पर हाथ फेरा, घोड़ा शरीर को झटका देकर हिनहिनाया। घोड़े को उन लोगों ने अपने साथ ही कर लिया।

"भैया, घोड़ा तो अकेला आया है। उस जौहरी का क्या हुआ होगा ?" कुन्दवि ने चिंतातुर होकर पूछा।

महेन्द्र को यह पता न था कि कुन्दवि का अनुमान है कि वह जौहरी विक्रम ही है। इसलिए उसने बड़ी लापरवाही से कहा, "पल्लव साम्राज्य के चक्रवर्ती को अपनी पीठ पर स्थान देने वाला घोड़ा कहीं एक क्षुद्र व्यापारी को अपनी पीठ पर बिठायेगा ? उसे कहीं नीचे गिराकर गड्ढा खोदकर गाड़ आया होगा, और क्या ?" महेन्द्र ठठाकर हंस पड़ा।

कुन्दवि का मन तड़प उठा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसके मन को सान्त्वना मिली। सचमुच यह घोड़ा अगर अपने सवार को गिराकर आया होगा तो वह चोल-राजकुमार नहीं, साधारण जौहरी ही होगा। लेकिन पिताजी ने तो उस जौहरी के वीर-पराक्रम और युद्ध-निपुणता की प्रशंसा के पुल ही बांध दिए थे··· हाय, उस जौहरी का क्या हुआ होगा ? इतने समझदार जानवर को भगवान ने बोलने की शक्ति क्यों नहीं प्रदान की ? इस घोड़े में वह शक्ति होती तो इस रहस्य को खोल देता कि जौहरी पर क्या बीती है। कोई अद्भुत शक्ति अकस्मात् पुष्पक में बोलने की शक्ति भर दे तो कितना अच्छा हो। बार-बार यही इच्छा करती हुई और बार-बार उस घोड़े की पीठ पर हाथ फेरती हुई कुन्दवि चल रही थी।

इस प्रकार रास्ता कट रहा था। कुछ देर बाद आस-पास के दृश्यों में परिवर्तन दिखाई दिया। ज़मीन गीली थी। जगह-जगह गड्ढों में पानी जमा था। पेड़-पौधे धुले चमक रहे थे। हवा भी ठंडी-ठंडी बह रही थी।

"बहन, कल इधर खूब पानी पड़ा है। कांची में तो एक बूंद भी नहीं पड़ी।" महेन्द्र ने कहा।

कुन्दवि भी यही सोच रही थी। उसने पिछले दिन की घटनाओं का अनुमान भी कर लिया था। पिछली शाम को इस प्रदेश में ज़ोरों का आंधी-पानी आया

होगा, उसमें पुष्पक और जौहरी फंस गये होंगे और घोड़ा किसी तरह जान बचाकर भाग आया होगा पर जौहरी बेचारा···हाय, रास्ते में कहीं इस बात का पता लगेगा कि क्या हुआ ? यह पुष्पक उस स्थान को दिखा सकेगा, जहां विपत्ति आई हो ? कौन जाने कहीं उसका निष्प्राण शरीर ही देखने को मिले···शिव, शिव ! इस असहनीय विचार मात्र से कुन्दवि ने घबराकर आंखें मूंद लीं।

वर्षा से भीगे इस प्रदेश में वे आधा कोस बढ़े होंगे कि रास्ते में जंगली नदी पड़ी। सूरज डूबने में घड़ी-भर की देरी थी। पिछली शाम उस जंगली नदी ने जो दृश्य उपस्थित किया था अब उसका उल्टा उपस्थित कर रही थी। आज तो वह ऐसा सुन्दर दीख पड़ा मानो प्रलय के बाद नवलोक का मनमोहक ढंग से सृजन हुआ हो। जंगली नदी में केवल घुटनों तक का पानी कल-कल करता बह रहा था।

किन्तु कुन्दवि के मन में तो पिछले दिन का वही आंधी-पानी प्रलय मचाए था। उसने अनुमान किया कि पिछले दिन जंगली नदी में बड़ी बाढ़ आई होगी। नदी किनारे के वृक्षों के तनों पर पानी के नए निशान बने थे। झुकी डालियों में बहकर आने वाले घास-फूंस फंसे थे। जंगली नदी की बाढ़ का कौन कह सकता है कि कब उठेगी और कब घटेगी। संभव है कि अकस्मात् बाढ़ आई हो। कुन्दवि ने अनुमान किया कि यदि ऐसा हुआ होगा तो जौहरी की क्या गति हुई होगी। जंगली नदी की बाढ़ से अपरिचित होने के कारण वह पानी में उतरा होगा और उतरने के बाद अचानक प्रवाह बढ़ गया होगा। घोड़ा किसी तरह जान बचाकर किनारे लग गया होगा। अरे-रे ! अपनी मां से मिलने की उमंग में जो जौहरी पिताजी से कह गया कि मैं उरैयूर जा रहा हूं, उसकी क्या यही दशा होनी थी !

कुन्दवि इस प्रकार सोच-विचार में डूबी थी कि पालकी पानी की धारा के निकट आ गई। सब पानी में उतरे। लेकिन पुष्पक पानी में उतरने से हिचका। सबने देखा कि नदी-तट पर आते ही उसका संकोच बढ़ गया।

उसकी लगाम पकड़कर लाने वाले सैनिक ने पानी में उतरने के लिए उसे मजबूर किया। घोड़ा विवश होकर उतरा। पर दूसरे ही क्षण वह किसी प्रकार से उसके हाथ से छूट गया और जिस किनारे आया था उसी किनारे पर चढ़कर धनुष से छूटे बाण की तरह द्रुत गति से सरपट भागने लगा और देखते-देखते कांची जाने वाले मार्ग पर दृष्टि से ओझल हो गया।

"पिताजी ने इसका नाम पुष्पक रखा तो ठीक ही रखा ! इसके पैर तो ज़मीन पर पड़ते ही नहीं !" महेन्द्र ने आश्चर्य से हंसते हुए कहा।

छब्बीस

राज-परिवार तथा उनके परिजनों ने उसी जंगली नदी के किनारे भोजन किया। कुन्दवि और महेन्द्र के सामने तरह-तरह के पकवान रखे गए। महेन्द्र ने बड़े चाव से खाया, पर कुन्दवि को कुछ भी नहीं रुचा।

भोजन के बाद कुछ विश्राम करके वे आगे बढ़े तो कुन्दवि के मन में एक बात आई। उसने लोगों को यह कहते सुना था कि जिनकी अकाल मृत्यु हो गई हो उन लोगों की आत्मा जहां वे मरते हैं, वहीं मंडराती रहती है। क्या यह सच है? तो उस युवक जौहरी की आत्मा को भी चाहिए कि इसी नदी के किनारे मंडराती फिरे। क्या वह यहां आधी रात के वक्त भयंकर चीत्कार करेगी?—कुन्दवि यह सोच ही रही थी कि कहीं बहुत दूर से एक दीन आर्त्त स्वर सुनाई दिया। उसे लगा कि कोई मां-मां कहकर पुकार रहा है। कुन्दवि का शरीर सिहर उठा। यह उसके चित्त का भ्रम था या सचमुच जौहरी की मृत आत्मा की चीत्कार थी? भाई से पूछने को मुंह खोला तो जीभ ही नहीं उठी। यह कैसी अजीब बात है? जैसे-जैसे पालकी आगे बढ़ रही है, वैसे-वैसे वह स्वर ऊंचा सुनाई दे रहा है? मृतक जौहरी की आत्मा उसका पीछा तो नहीं कर रही?

और कुछ दूर आगे बढ़ने पर मां-मां की वह पुकार स्पष्ट सुनाई देने लगी। अब वह मनुष्य का स्वर जान पड़ा। कुन्दवि ने अपने को किसी तरह संभालकर पूछा, "भैया, सुनते हो, किसी के पुकारने की आवाज़ सुनाई पड़ रही है?"

"हां, बहन! कोई मां-मां पुकार रहा है।" कहकर महेन्द्र ने घोड़े पर बैठे-बैठे ही चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।

"मालूम होता है कि उस मंडप से आवाज़ आ रही है।"

सामने ही वह महेन्द्र-मंडप था, जिसमें विक्रम ठहरा था। रास्ते पर बढ़ते हुए उस मंडप के निकट पहुंचे तो स्पष्ट हो गया कि आवाज़ मंडप के अन्दर से आ रही है। कुन्दवि ने पालकी ढोने वालों को आदेश दिया कि पालकी मंडप की ओर ले चलें। उसका दिल धक-धक कर रहा था कि कोई अजीब बात दीखने वाली है, किसी बड़े रहस्य का पता लगने वाला है।

यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं कि मंडप से आने वाली आवाज़ विक्रम को ही थी। उस दिन सवेरे पोन्नन ने देखा कि उसके उठने के पहले ही विक्रम उठ बैठा है। "पोन्नन, चलें क्या?" विक्रम ने पूछा। दोनों यह निश्चय करके चल पड़े कि धूप निकलने के पहले ही पैदल आगे बढ़ते जायं और रास्ते में कहीं गाड़ी मिल जाय तो ले लें। लेकिन विक्रम ने उठकर कुछ ही क़दम बढ़ाए होंगे कि उसके क़दम डगमगा गए। पोन्नन ने देखा तो सन्न रह गया और कुछ पूछने ही जा रहा था कि तब तक विक्रम ज़मीन पर बैठ गया। पोन्नन तीर की तरह विक्रम के पास

पहुंचा और कहने लगा, "हाय-हाय महाराज ! क्या हो गया आपको ?"

"सिर में बड़े ज़ोर का दर्द हो रहा है, पोन्नन ! एक कदम भी उठाता हूं तो लगता है कि सिर पर हथौड़े की मार पड़ रही है। पैर भी लड़खड़ा रहे हैं। न जाने मेरे शरीर को क्या हो गया है ?" विक्रम ने कहा।

पोन्नन ने उसके शरीर पर हाथ रखकर देखा तो बोला, "हाय, महाराज ! शरीर तो तप रहा है। रात को अच्छी तरह सोये या नहीं ?"

"नहीं। न जाने क्या-क्या विचार मन में उठते रहे ! ठीक तरह से नींद ही नहीं आई।"

"ज्वर के कारण ही रहा होगा, महाराज ! मैं पापी कुम्भकरण की तरह पड़ा सोया रहा। मुझे जगाया तो होता। इस तेज़ बुखार में आप एक क़दम भी नहीं चल सकते। आइए,"—कहकर पोन्नन ने विक्रम का हाथ पकड़कर उठाया और सहारा देकर मण्डप के अन्दर पहुंचाया। उसके बाद पोन्नन दौड़ा हुआ जाकर नदी किनारे से फूल इकट्ठे करके ले आया और उन्हें बिछाकर उन पर विक्रम को लिटा दिया।

दोनों विचार करने लगे कि अब आगे क्या करें। निश्चय किया कि सड़क पर जाती कोई बैलगाड़ी मिले तो उस पर पास के गांव को चला जाय और वहां चिकित्सा कराकर कुछ आराम मिलने पर उरैयूर के लिए रवाना हों। इसके अतिरिक्त उन्हें और कोई रास्ता न सूझा।

पोन्नन के मन में बार-बार विचार उठता था कि इस समय यहां वल्लि होती तो कितना अच्छा होता ! किसी मत्र-शक्ति के द्वारा वह अब भी यहां आ जाती तो कैसा भला होता ! ज्वर-ग्रस्त विक्रम की सेवा किस प्रकार की जाय, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था और वह बहुत परेशान था।

थोड़ी देर बाद विक्रम 'पानी-पानी' की रट लगाने लगा। मंडप के पिछवाड़े खाना पकाकर छोड़े हुए मिट्टी के कुछ बरतन पड़े थे। पोन्नन उनमें से एक हांडी उठाकर नदी से पानी भर लाया। विधि के इस विधान को देखकर कि जो सोने के बरतनों में पानी पीते थे वे मिट्टी की हांडी में पानी पीएं, पोन्नन का मन बहुत खिन्न हुआ।

दिन चढ़ रहा था। ज्वर भी बढ़ रहा था। पोन्नन को भूख सता रही थी। उसका मन बहुत परेशान था कि क्या किया जाय ? महाराज की चिकित्सा का कोई प्रबन्ध न हो और वह भी बिना खाए भूखा पड़ा रहे तो दोनों वहीं समाप्त हो जायंगे। आखिर बहुत सोचने-विचारने के बाद पोन्नन एक निष्कर्ष पर पहुंचा। उसने निश्चय किया कि पास के किसी गांव में जाकर वैद्य को बुला लाना चाहिए और साथ ही एक गाड़ी भी लानी चाहिए। तब तक विक्रम को चोल वंश के कुल देवता मुरुगन के ही भरोसे छोड़ देना पड़ेगा। दूसरा चारा न देखकर जब विक्रम

भी इस बात के लिए राजी हुआ तो पोन्नन वहां से चल पड़ा। बहुत दूर तक मुड़-मुड़कर वह विक्रम को देखता रहा।

पोन्नन के जाने के बाद विक्रम का ज्वर-ताप और भी बढ़ गया। कुछ देर बाद वह अपने होश-हवाश खो बैठा। मन में न जाने क्या-क्या उधेड़-बुन थीं, मुंह से न जाने कितनी बातें निकल रही थीं, असहनीय पीड़ा से शरीर टूट-सा रहा था। धीरे-धीरे कमज़ोरी बढ़ती गई और फिर उसके मुख से दीन स्वर में केवल मां-मां की रट निकलने लगी।

ऐसे ही समय कुन्दवि की पालकी मंडप के द्वार पर आकर रुकी। कुन्दवि जल्दी से पालकी से उतरी और द्वार पर खड़ी होकर अन्दर झांककर देखा। हां, उसका वह जौहरी ही लेटा था। उसका सुन्दर गोरा चेहरा ज्वर के ताप से बिम्ब-फल की तरह लाल हो गया था। उसकी आंखें खुलतीं, इधर-उधर बिना कुछ देखे-समझे दृष्टि डालतीं और फिर बन्द हो जातीं। मां-मां की रट निरन्तर जारी थी।

इस दृश्य को देखकर कुन्दवि के मन में भावों का तूफान मचा, उसका वर्णन करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। विस्मय, आनन्द, दुःख, आशंका, करुणा आदि तरह-तरह की भावनाएं एक साथ उमड़ रही थीं। इनमें उद्विग्नता की भावना सबसे तीव्र थी।

"भैया, भैया ! यह वही जौहरी है। बहुत अस्वस्थ मालूम पड़ता है। वैद्यजी को बुलाओ।" कुन्दवि ने चिन्तातुर होकर कहा।

राज-परिवार के साथ राज-वैद्य भी आए थे। उन्होंने आकर नाड़ी देखी और कहा, "यह तो कड़ा ज्वर है। तुरन्त चिकित्सा शुरू कर देनी चाहिए। इन्हें ठीक होने में दस दिन से अधिक लग जायंगे।"

"भैया, इस बेचारे को क्या हम अपने साथ ले चलें ? चम्पक द्वीप के बारे में हमें इससे कुछ पूछना भी तो है।" कुन्दवि ने कहा।

बाद के कार्य होने में देर न लगी। राज-वैद्य जाकर अपनी पेटी से कोई दवा निकाल लाये और विक्रम को दी। फिर विक्रम को धीरे-से उठाकर कुन्दवि की पालकी पर बड़े आराम से लिटा दिया गया। कुन्दवि एक घोड़े पर सवार हुई और यात्रा जारी रखी गई।

सत्ताईस

वैद्य और गाड़ी लाने के लिए पोन्नन पास के गांव में गया तो दोनों में से एक भी आसानी से न मिले। वैद्य का पता लगाने और गाड़ी ठीक-ठाक करके जुतवाने में उसे बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ी और उन्हें लेकर जब वह महेन्द्र-मंडप पहुंचा तब तक चारों ओर शाम का धुंधलका छा गया था। पोन्नन मन-ही-मन परेशान हो

रहा था कि न जाने महाराज की हालत कैसी होगी। वह दबे पांव अन्दर आ गया तो मंडप सूना नज़र आया। उस पर तो वज्रपात-सा हुआ। उस सूने महेन्द्र-मंडप में भीतर और बाहर वह विक्रम को ऐसी उद्विग्नता से खोजने लगा, जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चों को न पाकर चीं-चीं करती हुई पंख फड़फड़ाकर इधर-उधर खोजती है। उसकी समझ में ही न आया कि महाराज कहां और कैसे चले गए ? उसे लगा कि पिछली शाम विक्रम को जंगली नदी से बचाकर लाने के बाद जो घटनाएं घटीं, वे सब शायद स्वप्न थीं।

इस बीच उसे वैद्य और गाड़ीवान ने तंग करना शुरू कर दिया था। आड़े वक्त में काम आने के लिए उसने अपने पास जो स्वर्ण-मुद्राएं रखी थीं उनमें से एक निकालकर उन्हें दी और विदा किया।

ज्वर बहुत बढ़ जाने के कारण सन्निपात की दशा में युवराज उठकर कहीं भाग तो नहीं गए होंगे ? यह विचार आते ही उसका दिल धक से बैठ गया। उन्मत्त की तरह वह इधर-उधर दौड़ने लगा। दौड़ता हुआ नदी किनारे तक पहुंचा, वहां किनारे-किनारे ढूंढ़ता हुआ घूमा। फिर वहां से महेन्द्र-मंडप वापस लौटा और धड़कते दिल से अन्दर झांककर देखा कि युवराज वापस तो नहीं लौट आए हैं। उसका मन इतना विचलित हो गया था कि उसे इस बात का भी ध्यान न रहा कि हम कर क्या रहे हैं ! विक्रम जिस फूंस की शैया पर लेटा था उस तक को उसने उलट-पलटकर देखा। बाहर आकर उरैयूर के मार्ग पर कुछ दूर गया, फिर उलटे पांव लौटा। परेशानी की हालत में काफी देर तक यही क्रम जारी रखा।

ऐसे ही एक बार जब वह मंडप की ओर आ रहा था तो देखा कि मंडप से थोड़ी दूर पर महुए का जो बड़ा पेड़ था, उसके पीछे कोई छिपा खड़ा है। उसका कद बहुत ही नाटा था। पोन्नन के स्मृति-पटल पर तुरन्त वे भयंकर आकृतियां आईं जिन्हें उसने कोल्लिमलै प्रदेश में झरने के किनारे देखा था। पिछली रात जो बातें सुनी थीं वे भी उसे याद हो आईं। हे राम ! महाराज नर-बलि करने वाले दल के हाथ तो नहीं फंस गए हैं—इस विचार का उठना था कि उसके क्रोध और क्षोभ का कोई पार न रहा। सारा क्रोध उस बौने पर उतारने के लिए पोन्नन लपका हुआ महुए के पेड़ के पास पहुंचा। आड़ में छिपे बौने को इसका पता न चला कि पोन्नन उसे पकड़ने बढ़ रहा है। बिजली की तरह वेग से झपटकर पोन्नन ने उसे पकड़ लिया और दो-तीन बार झकझोर डाला।

पहले तो बौना ठिठककर भौंचक्का रह गया फिर अपने को संभालकर बोला, "अरे भाई, क्या बात है ? क्या कर रहे हो ? अपना यह क्रोध किस पर उतार रहे हो ?"

"अबे बौने ! महाराज कहां हैं ?" पोन्नन गरज उठा।

"महाराज ? कौन महाराज ?"

पोन्नन को झट अपनी भूल का ख़याल हो आया। संभलकर बोला, "उस मंडप में जो लेटे थे, वे कहां हैं ?"

बौने ने अपनी धोती की टेंट खोलकर एक झटका दिया और व्यंग्य से बोला, "हाय-हाय ! मैंने तो गिरह में बांधकर रखा था ! न जाने कहां खो गया !" पोन्नन को अच्छा नहीं लगा। और उसने उसकी ख़बर लेने के लिए हाथ उठाया। डांड पकड़ने वाले उन दृढ़ हाथों की मार बौने पर पड़ी होती तो न जाने क्या हुआ होता ! लेकिन तब तक बौने ने किसी प्रकार पोन्नन के हाथों से अपने को छुड़ा लिया और एक ही छलांग में आंखों से ओझल हो गया। पोन्नन आग-बबूला होकर उसके पीछे दौड़ा। पर अंधेरा छा जाने के कारण दस कदम की दूरी के आगे कुछ भी न सूझता था और वहां चारों ओर झाड़ियां-ही-झाड़ियां थीं। पोन्नन बौने का पता न लगा पाया। निराश होकर लौटने लगा तो महुए के पेड़ पर से उल्लू के बोलने की आवाज़ आई। पोन्नन ने चौंककर ऊपर की ओर सिर उठाकर देखा तो घनी डालियों के बीच में बौने की सूरत दिखाई दी। उसी के मुंह से फिर उल्लू के बोलने की आवाज़ निकली।

पोन्नन को अत्यंत क्रोध आया। उसने सोचा कि भीम की तरह वह भी इस पेड़ को जड़ से उखाड़कर फेंक सकता तो कैसा रहता ! तभी बौना बोला, "अरे अक्ल के दुश्मन ! महाभद्रकाली के भक्त का तू क्या बिगाड़ सकता है ?"

पोन्नन के मन में एक बात आई और वह उस पर सोच-विचार कर ही रहा था कि बौने ने कहा, "अरे मूर्ख, क्या तू भी महाकाली का भक्त बनेगा ? तेरे सारे कष्ट दूर हो जायंगे।"

"ओ हो, तू मुझे उपदेश देता है कि काली का भक्त बनूं ?" कहकर पोन्नन जोर से हंस पड़ा।

"अरे हंसता क्यों है ? सावधान ! तुझ पर काली का कोप पड़ेगा।"

तब पोन्नन ने कहा, "अरे भाई, मैं तो कभी का काली-भक्त हो चुका। पर उससे क्या ? कपाल भैरव के आदेश का पालन करने से रह गया। हाय, हाय ! उन्हें मैं क्या जवाब दूंगा ?"

बौने ने बड़े आश्चर्य में पड़कर पूछा, "अच्छा ? तुझे उन्होंने कौन-सा आदेश दिया था ?"

"इस मंडप में जो लेटा था, उसे बड़ी सावधानी से कोल्लिमलै लाने का आदेश दिया था। कल रात यहीं पर मुझे यह आज्ञा दी थी उन्होंने, हाय-हाय, मैं तो चूक गया ! अब क्या करूं ?" पोन्नन रो पड़ा।

"अरे रे, तूने पहले ही बताया होता···अभी तेरे आने से थोड़ी देर पहले कांची नरेश के पुत्र और पुत्री इसी मार्ग से गए थे। वे उस मंडप के पास कुछ देर

के लिए ठहरे भी थे। मंडप में से किसी को उठाकर बाहर लाये और पालकी पर लिटाकर ले गए। मैं नहीं जानता कि वह कौन हैं? क्या तू जानता है?" बौने ने उत्सुकता दिखाई।

फिर बौने की बातें पोन्नन के कानों में नहीं पड़ीं। वैद्य और बैलगाड़ी को लाते हुए. रास्ते में उसने घोड़े, पालकी और परिजनों आदि को देखा था और उन्हें रास्ता देने एक ओर जा खड़ा हुआ था। घोड़े पर कुन्दवि देवी को देखा तो गाड़ी के पीछे ही जा छिपा कि उसके सामने न पड़ जाय। पालकी पर उसने ध्यान नहीं दिया। ये सारी बातें उसे याद हो आईं और उसे लगा कि बौने की बात सच ही होगी।

"अरे, चुप क्यों हो गया? बोल, क्या सोच रहा है?" बौने ने पेड़ पर से ही पूछा।

"सोच क्या रहा हूं? यही कि तुझे काली माता की बलि कैसे बनाऊं?" कहते हुए पोन्नन ने नीचे से एक पत्थर उठाया और बौने को लक्ष्य करके ज़ोर से दे मारा।

बस, बौने ने तुरन्त दोनों हाथ होंठों पर ले जाकर एक अजीब दीर्घ बेसुरा स्वर मुंह से निकाला—वैसा ही; जैसा उस समय निकला था जब विक्रम ने म्यान से तलवार खींची थी। उस भयंकर ध्वनि को सुनते ही पोन्नन के रोंगटे खड़े हो गए और वहां से उरैयूर की तरफ़ बेतहाशा दौड़ा।

जंगली नदी के किनारे-किनारे करीब एक कोस की दूरी पर परांतकपुरम नाम के गांव पहुंचते-पहुंचते रात का पहला प्रहर बीत चुका था। लेकिन वहां मशालों की रोशनी की और गाने-बजाने की खूब धूम-धाम थी। पोन्नन ने पूछ-ताछ की तो मालूम हुआ कि चक्रवर्ती के सुपुत्र और सुपुत्री उरैयूर जाते हुए मार्ग में वहां पधारे हैं, मन्दिर में उनका स्वागत हो रहा है और गांव के बाहर उनके खेमे ताने गए हैं।

पोन्नन ने सोचा कि इस समय जब वे लोग मंदिर में हैं तो यही अपनी खोज-बीन के लिए उपयुक्त समय होगा। इस विचार को कार्यान्वित करने के लिए वह तुरन्त डग भरता हुआ खेमों की ओर गया।

उस समय चूंकि युवराज महेन्द्र और कुंदवि देवी मंदिर में थे, इसलिए खेमों में कोई भीड़-भाड न थी। कुछ प्रहरी अवश्य इधर-उधर खड़े थे। नौकर-नौकरानियाँ पलंग आदि बिछाने के काम में लगे थे। मैदान के एक ओर ऊंचा-सा बाड़ा था। पोन्नन उस बाड़े के किनारे होकर चला।

एक खेमे में से कुछ शोर सुनाई दिया तो उसने अन्दर झांककर देखा। मशाल की रोशनी में उसे साफ दिखाई पड़ा कि विक्रम खाट पर लेटा है और वैद्य पास बैठकर नाड़ी देख रहे हैं। कुछ देर पोन्नन वहीं खड़ा होकर उन्हें देखता रहा। फिर वहां से चल दिया।

अट्ठाईस

पोन्नन परान्तकपुरम की गली पार कर रहा था कि उसी समय राजपरिवार अपने खेमों को लौटता दिखाई पड़ा। पोन्नन एक ओर जा खड़ा हुआ। मशालों की रोशनी में पालकी पर बैठी कुंदवि को देखा तो उसके मन में ऐसी भक्ति-भावना जगी, जो पहले कभी नहीं जगी थी।

उस रात पोन्नन गांव के मंदिर के प्राकार में लेटा-लेटा अपने आगे के कार्यक्रम के संबंध में सोचने लगा। युवराज तो उचित संरक्षण पा गए हैं। कुंदवि से अच्छी उनकी देख-भाल वह किसी भी हालत में नहीं कर सकता। युवराज जहां जाना चाहते थे वही कुंदवि देवी उन्हें लिये जा रही हैं। ऐसा लगता है कि सभी काम चोल-वंश के कुल-देवता की इच्छा के अनुकूल ही सम्पन्न हो रहे हैं। युवराज को पूर्ण रूप से स्वस्थ होने में और कुछ दिन अवश्य ही लगेंगे। तब तक वह उनसे न मिल सकेगा। उनके स्वस्थ होने तक वह क्या करे? उनके पीछे जाने और उरैयूर में जाकर बैठ जाने से कोई लाभ नहीं। इससे हज़ार गुना अच्छा तो होगा, रानी अरुल्मोलि देवी का पता लगाकर उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करना। इसके लिए शिवयोगी से जाकर मिलना चाहिए और उनकी सलाह लेनी चाहिए। उन्होंने तो कह भी रखा है कि अरुल्मोलिदेवी के संबंध में कुछ पता लगे तो तुरंत आकर मुझे बताना। यह भी बताया है कि उनसे कहां मिला जा सकता है? मामल्लपुरम के पास घने जंगल के बीच में एक शिल्पी का घर है, पता लगाकर वहां पहुंचने पर वे मिलेंगे। उसने निश्चय किया कि वहां जाकर उनसे मिले और सारी बातें विस्तार से बताकर उनकी सलाह के अनुसार काम करे।

पोन्नन वहां से तुरन्त चल पड़ा।

पोन्नन के पैर मामल्लपुरम की ओर बढ़ रहे थे, पर मन उस पालकी के साथ था जिसमें लेटे हुए युवराज उरैयूर की ओर जा रहे थे?

उसके मन में बार-बार यह बात आ रही थी कि युवराज का कुन्दवि की देख-रेख में रहना ख़तरे से खाली नहीं है। कुन्दविदेवी को इस बात का पता लगे कि ज्वरग्रस्त व्यक्ति वास्तव में चोल-राजकुमार है तो क्या होगा? सन्निपात के वेग में युवराज कुछ बकें तो सारे रहस्य का भंडाफोड़ न हो जायगा? पोन्नन ने अपने मन को सान्त्वना दी कि भगवान् की कृपा से ऐसा कुछ नहीं होगा। कुन्दवि को इस बात का पता लग भी जाय तो भी वे युवराज को किसी तरह बचाने का ही प्रयत्न करेंगी। जब युवराज को देश से निकालने का दंड दिया गया था तो सुना है कि उन्होंने युवराज की ओर से गिड़गिड़ाकर अपने पिता से क्षमा-याचना की थी। शिवयोगी महारानी अरुल्मोलि से उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे।

पोन्नन को एक और बात का भी बड़ा आश्चर्य था। युवराज ने उससे कहा

था कि गुप्तचर-प्रधान ने उसकी रक्षा करके उस रात उसे एक शिल्पी के घर ठहराया था। शिवयोगी ने पोन्नन से कहा था कि जंगल के बीच स्थित शिल्पी के घर आकर मुझसे मिलो। कहीं यह वही घर तो नहीं है ? तो क्या गुप्तचर-प्रधान और शिवयोगी में कोई सम्बन्ध है ?

शिवयोगी पर पोन्नन की बहुत आस्था थी। वह यह कभी नहीं भूल सकता था कि उन्होंने एक बार उसे मारप्प भूपति के हाथ फंसने से बचाया था और इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि महारानी अरुल्मोलि उन पर पूर्ण विश्वास रखती थीं।

लेकिन तो भी उन पर सन्देह करने के कई आधार भी थे कि वे सचमुच कोई शिवयोगी नहीं, कपट वेषधारी हैं। वल्लि ने उन पर सन्देह ही नहीं किया, बल्कि अनुमान भी लगाया था कि वे कौन हैं ! उसका अनुमान था कि वे असल में पार्थिव महाराज हैं, जो रणक्षेत्र में मरे नहीं और अकेले जीवित लौटने की बात को दूसरों को पता न कराने के कारण शिवयोगी का वेष धारण किए हैं। यद्यपि पोन्नन को उसकी बुद्धि पर बहुत विश्वास था तो भी वह नहीं मान सका कि वल्लि का अनुमान सही है।

एक और घटना हुई थी जिसने संदेह और बढ़ा दिया था। महारानी अरुल्मोलि के तीर्थाटन पर जाने के बाद पोन्नन का दिल बहुत उदास हो गया था। नौका-घाट में कुछ दूर पर जंगल में ऐयनार का एक मंदिर था। वहां वह मनौती मानने और प्रार्थना करने के लिए गया। वहीं रखा हुआ मिट्टी का एक हाथी टूटकर गिर पड़ा था। उत्सुकतावश पोन्नन उसके पास गया तो उसके पेट के अंदर कपड़ों की एक गठरी दिखाई दी। कौतूहलवश उसने गठरी खोली तो उसके अंदर बाघ-चर्म, रुद्राक्ष, नकली जटा-जूट आदि रखे थे। उसके विस्मय का कोई ठिकाना न रहा। सोचते-सोचते वह इस निर्णय पर पहुंचा कि हो न हो, यह सब शिवयोगी के छद्मवेष की ही सामग्री है।

वे कौन हैं ? भले या बुरे ? उन पर भरोसा किया जा सकता है या नहीं ? उस भयंकर महाकपाल भैरव ने मारप्प भूपति के कानों में शिवयोगी के सम्बन्ध में न जाने क्या कहा ? पोन्नन इन बातों का कोई समाधान न निकाल सका। लेकिन उसने एक बात का पक्का निश्चय कर लिया कि इस बार शिवयोगी से मिलने पर वह साफ-साफ पूछेगा कि स्वामी, आप कौन हैं ? यदि वे सन्तोषजनक उत्तर देंगे तो उन्हें बतायगा कि युवराज लौट आए हैं और महारानी अरुल्मोलि के निवास स्थान का कितना पता उसे चला है। उचित उत्तर से यदि उसका संदेह दूर न किया गया तो वह चुपचाप कुछ भी बताये बिना लौट आयगा। फिर युवराज के स्वस्थ होने पर उनसे मिलने का प्रयत्न करेगा और आगे के काम, उनकी सलाह लेकर करेगा।

इस प्रकार मन की उथल-पुथल से उलझता पोन्नन पैदल रास्ता तय करने लगा। कहीं कोई गाड़ी मिल जाती तो उस पर बैठ लेता। जंगल के बीच स्थित शिल्पी के घर पहुंचने का एक सरल उपाय उसे शिवयोगी ने बताया था। पोन्नन दृष्टि गड़ाकर देखता हुआ चला कि उनके बताए चिह्न दीखते हैं या नहीं ! पोन्नन चला जा रहा था कि सामने थोड़ी ही दूर पर, एक घोड़ा आता दिखाई दिया। उसने देखा कि घोड़ा जंगल के बीच घुस रहा है। लेकिन वह जान नहीं पाया कि घुड़सवार ने उसे देखा है या नहीं। युवराज ने जो बताया था, उससे पोन्नन ने अनुमान लगाया कि यह शायद वही गुप्तचर-प्रधान होगा।

मोड़ आया तो पोन्नन को शिवयोगी के बताए चिह्न साफ-साफ दिखाई देने लगे। घोड़ा भी उसी जगह मुड़ा था। पोन्नन भी पीछे-पीछे चलने लगा। घने झाड़-झंखाड़ों के बीच घोड़ा आगे बढ़ रहा था और उसकी पद-चाप साफ सुनाई दे रही थी। थोड़ी देर आगे बढ़ने के बाद एक खुला मैदान दिखाई दिया। उसमें एक सुन्दर शिल्प-गृह खड़ा था। घर के सामने वही घोड़ा था जो पोन्नन को उस मार्ग पर आते हुए दिखाई पड़ा था। उसी समय शिवयोगी घर के अन्दर से बाहर आए और उन्होंने मुस्कराकर पोन्नन का स्वागत किया। लेकिन पोन्नन अपार विस्मय से उन्हें एकटक घूरने लगा।

आश्चर्य की बात तो थी ही। घोड़े पर से उतरकर घर के अन्दर जाने वाला व्यक्ति एक वेष में था और बाहर आकर उसका स्वागत करने वाला व्यक्ति दूसरे वेष में था। क्या इसका मतलब ? दोनों एक ही थे या अलग-अलग ?

पोन्नन के मुख पर यद्यपि आश्चर्य और संदेह के भाव प्रकट थे तो भी बातों से उसने कुछ प्रकट न होने दिया। वास्तव में तो उसे अपनी बात कहने का मौका ही न मिला। क्योंकि उसे देखते ही स्वयं शिवयोगी बोलने लग गए। उन्होंने कहा, "पोन्नन, बिल्कुल ठीक समय पर आए तुम ! अभी-अभी मैं तुम्हारी ही याद कर रहा था। उरैयूर जाने वाला था। तुम और थोड़ी देर बाद आये होते तो हम दोनों की भेंट न हुई होती।"

दोनों वहीं चबूतरे पर बैठ गए। फिर शिवयोगी ने पूछा, "पोन्नन, जल्दी बताओ, क्या ख़बर लाये हो ? एक ज़रूरी काम आ पड़ा है और उसके बारे में मैं बाद में बताऊंगा।...हां तुम यह बताओ कि महारानी अरुल्मोलि के संबंध में तुम्हें कोई नयी ख़बर मिली है क्या ?"

पोन्नन ने कहा, "हां महाराज, मिली है।" फिर उसने अपने कोल्लिमलै की तराई पर जाने, झरने के किनारे-किनारे की पगडंडी से ऊपर चढ़ने और रास्ते में उस एक हाथ वाले आदमी और बौने को देखकर अपने चट्टान के पीछे छिपने का विवरण विस्तारपूर्वक सुनाया। लेकिन जंगली नदी की बाढ़ से विक्रम को बचाने से लेकर बाद की बातें उसने जान-बूझकर नहीं बताई। उसका विचार था कि

शिवयोगी के वास्तविक रूप को जानने के बाद वे बातें बतानी चाहिएं।

शिवयोगी ने एक हाथ वाले व्यक्ति की सूरत-शक्ल का विस्तार से वर्णन करने का आग्रह किया तो पोन्नन ने जो कुछ उसे याद था सब बताया और पूछा, "साधु महाराज, क्या आप जानते हैं कि वह कौन है ?"

"पोन्नन, पार्थिव महाराज की पत्नी निस्संदेह कोल्लिमलै के इस प्रदेश में ही कहीं रहती है। अब तक जिन बातों का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया था, उनमें कई बातों का अर्थ अब मेरी समझ में आ रहा है। तुम यही जानना चाहते हो न कि वह आदमी कौन है ? हम दोनों मिलकर सारे रहस्य का जल्दी ही पता लगा लेंगे।"

"महाराज, इन कामों में आपका साथ देने के पहले मुझे आपसे कुछ बातें पूछ लेनी हैं।" पोन्नन ने स्वर में दृढ़ता लाकर कहा।

"क्या ?" शिवयोगी ने अत्यन्त आश्चर्य में भरकर पूछा, मानो उन्हें अपने ही कानों पर विश्वास न हो रहा हो।

"हां, मुझे आपसे कुछ बातें मालूम करनी हैं। खास तौर से पहले तो आपको यह बताना होगा कि आप हैं कौन ?" पोन्नन का स्वर और दृढ़ हो गया।

शिवयोगी के मुख पर मुस्कराहट आई। बोले, "अच्छा ! अवश्य ही बताना पड़ेगा क्या ?"

"हां। थोड़ी देर पहले आपको सड़क पर घोड़े पर आते हुए देखा। तब आप दूसरे वेष में थे। अब घर के अन्दर से दूसरे वेष में निकले हैं। लेकिन मुझे लगता है कि ये दोनों ही आपके असली रूप नहीं हैं। शक तो महाराज, मेरे मन में बहुत दिनों से है। अब ऐसा समय आया है कि आपसे पूछ-ताछकर सच्चा हाल जानूं। आप कौन हैं ?—साफ-साफ बताएं तो···"

"बताऊं ?"

"महाराज, एक ऐसा बड़ा ही महत्त्वपूर्ण समाचार मुझे मालूम हुआ है जिसे आप अवश्य ही जानना चाहेंगे। उसे जानने की इच्छा हो तो मुझे बताइये। नहीं तो मैं जाता हूं।"

शिवयोगी थोड़ी देर विचार-मग्न रहे। पोन्नन के मन की दृढ़ता उसके मुंह पर साफ प्रकट थी। बोले, "पोन्नन, तुम अवश्य ही जानना चाहते हो कि मैं कौन हूं।"

"हां, महाराज !"

'तो मैं बताऊंगा। पर तुम्हें मुझको एक वचन देना होगा। यह बात और किसी पर प्रकट न होने पाए। रहस्य ही बनी रहे।"

"ऐसा ही होगा, महाराज !"

"रणक्षेत्र में वीर गति को प्राप्त करने वाले पार्थिव महाराज की कसम खाकर कहोगे ?"

"पार्थिव महाराज की कसम है, महाराज !"

"तो यह देखो।" शिवयोगी ने उस दिन रणक्षेत्र में पार्थिव महाराज को जिस प्रकार अपनी दाढ़ी-मूंछ हटाकर अपना रूप दिखाया था, वैसा ही किया।

"प्रभु आप हैं ?" पोन्नन ने उनके पैरों में गिरकर साष्टांग दंडवत् किया। फिर उसने जंगली नदी से विक्रम को बचाने से लेकर कुन्दविदेवी के पालकी पर उन्हें ले जाने तक का सारा विवरण विस्तार से सुनाया।

शिवयोगी जो अब तक किसी भी बात के लिए आश्चर्य प्रकट करते न दीखे थे, विस्मय से भरे पोन्नन की बातें सुनते रहे। फिर बोले, "पोन्नन, तुम्हारे युवराज की चिन्ता अब दूर हुई। विक्रम सुरक्षित स्थान पर ही है। अब हमें किसी तरह महारानी अरुल्मोलि का पता लगाकर शीघ्र ही उन्हें छुड़ा लाने का प्रयत्न करना चाहिए।"

उनतीस

एक सप्ताह से विक्रम जीवन का संघर्ष कर रहा था। तरह-तरह के स्वप्न उसके मस्तिष्क में डूबते-उतराते रहे। इनके बीच वह अपने को कभी स्वर्ग के निकट पाता और कभी नरक के गर्त्त में।

चारों ओर आग की भयानक ज्वाला धधक रही है। पार्थिव महाराज विक्रम का हाथ पकड़कर खींचते हैं, "बेटा, जन्म-भूमि के लिए तुम इस आग में कूदने को तैयार हो ?" पास ही महारानी अरुल्मोलि आंखों में आंसू भरे खड़ी हैं। "कूद पड़ूंगा, पिताजी !" विक्रम बड़े साहस के साथ उत्तर देता है। पिता का हाथ ढीला पड़ता है और विक्रम आग में उतर जाता है। शरीर तप रहा है, झुलस रहा है, जल रहा है। लेकिन चेतना जैसी-की-तैसी है। "हाय, इस तरह कब तक जलता रहेगा ? प्राण क्यों नहीं निकल जाते ? यह शरीर जैसे-का-तैसा क्यों बना है ?" विक्रम तड़प उठता है। सहसा एक शीतल कोमल हाथ उसके जलते हाथ को अपने हाथ में लेता है। दूसरा शीतल हाथ उसके दहकते शरीर पर हाथ फेरता है। आग की लपटों के बीच से रक्ताभ सहस्रदल कमल के समान सुन्दर मुख प्रकट होकर उस पर करुणापूर्ण दृष्टि डालता है। थोड़ी देर बाद वह सुन्दरी आग से बाहर निकालती है। हाथ पकड़कर आग की नदी से बाहर निकालने वाली उस देव-कन्या को वह अपना आभार प्रदर्शन करना चाहता है। पर वह देव-कन्या न जाने क्यों फिर नहीं दीखी !

विक्रम एक विशाल तपती मरुभूमि पर चल रहा है। धूप की उग्रता उससे सही नहीं जाती। तपन से पैर झुलस जाते हैं। शरीर-भर में आग-सी लगती है। जीभ

एकदम सूख गई लगती है। अत्यन्त तीव्र प्यास से वह तड़प उठता है। दृष्टि जहां तक जाती है, वहां तक पेड़-पौधे या किसी छाया का कोई नामो-निशान नहीं है। कहीं बहुत दूर तक पानी से भरी एक झील दिखाई देती है। उसे लक्ष्य करके वह तेज़ी से कदम बढ़ाता है। पर वह कितनी ही तेज़ क्यों न चले, झील उतनी ही दूर चलती जाती है।

सोचता है, लोग इसी को तो मृग-मरीचिका नहीं कहते ? इस विचार के आते ही उससे आगे चला नहीं जाता। अचानक आंखों के सामने अंधियारा छा जाता है। वह गश खाकर भूमि पर लोट जाता है। उस समय उसके मन में विचार आता है कि मैं ये सारे कष्ट अपने पिता की बात रखने और अपनी जन्म-भूमि की उन्नति की खातिर ही तो उठा रहा हूं। तब उसे ऐसा महसूस होता है कि तपती रेत में पड़े हुए उसको कोई अपने कोमल हाथ का सहारा देकर उठा रहा है। सहारा देने वाला कौन है ?—यह देखने के लिए वह आंखें खोलने का प्रयत्न करता है। आंखें तो पहले से ही खुली हुई हैं। पर देखने की शक्ति ही चली गई। 'इस कड़ी धूप में मैं कहीं अंधा तो नहीं हो गया ?' इस विचार से उसके हृदय में शूल-से चुभते हैं। इसी बीच उसे सहारा देने वाले कोमल शैया पर उसे लिटाते हैं और उसके मुंह में अमृत-जैसा मीठा जल डालते हैं। वह सोचता है—आहा, यह तो कावेरी का-सा मीठा जल लगता है।—और तभी चारों ओर का वातावरण हरा-भरा और रमणीक लगने लगता है। उसे कावेरी नदी के तट पर ठंडक पहुंचाने वाले पेड़ों की छाया में रहने का भान-सा होता है।

थोड़ी देर बाद वह महसूस करता है जैसे उसे उठाकर अमृत-पान कराकर जीवन दान देने वाला उसके मुंह के पास झुककर उसे देख रहा है। जूही के फूलों की भीनी-भीनी महक उसे चारों ओर से घेर लेती है। उसकी आंखों की दृष्टि झट लौट आती है। उसे अपने समीप ही जो मुख दीखता है, वह अनारकली-जैसे अपने लाल-लाल होंठों में मुस्कान भरकर, विशाल सुन्दर आंखों से प्रेम-विह्वल होकर उसे एकटक देख रहा है। अरे, यह तो उसका पहले देखा हुआ सुपरिचित चेहरा है। जन्म-जन्मान्तर से उसके साथ अटूट नाता जोड़ने वाली, कितनी ही विपत्तियों से उसकी रक्षा करने वाली देव-कन्या का मुख ! उन सुन्दर मुख को छूने की इच्छा होती है तो विक्रम अपना हाथ ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है, पर उठा नहीं पाता। हाथ लोहे-सा भारी लगता है। फिर आंखें बन्द हो जाती हैं और दृश्य बदल जाता है।

इसी प्रकार स्वर्ग के सुख और नरक की यातना के बीच तैरने-उतराने के बाद अंत में एक दिन विक्रम की चेतना लौट आई। धीरे-धीरे उसे सारी पुरानी बातें याद हो आईं। पोन्नन का भी स्मरण आया। पर वह अब है कहां ?

सन्निपात की दशा में उसने जो कड़वे-मीठे सपने देखे थे, उनके भी धुंधले

चित्र उसके स्मृति-पटल पर आये। उसे इस बात का विश्वास था कि उन तरह-तरह के सपनों में बार-बार जिस सुन्दरी का मुख उभर आता था वह सपना नहीं, सत्य ही होगा।

नौकर-चाकरों से पूछ-ताछ करने का उसका मन हुआ। वे तो गूंगों की तरह आते थे और अपना-अपना काम करके लौट जाते थे। किसी ने उससे कोई बात नहीं की।

इस प्रकार एक दिन बीता। रात सोकर कट गई। दूसरे दिन सवेरा होने पर विक्रम को वहां लेटे रहने का मन नहीं हुआ। उसने देह में नई स्फूर्ति-सी महसूस की। उठकर इधर-उधर चला तो थकावट नहीं लगी।

धीरे-धीरे चलकर वह कावेरी के किनारे पहुंचा और एक पेड़ के नीचे बैठ गया। वहां उसका मन शान्ति और सुख का अनुभव कर रहा था।

कावेरी नदी के जल-प्रवाह को विक्रम एकाग्रचित्त से देख रहा था। पानी में एक सुन्दर चेहरा प्रतिबिम्बित हुआ। वह उसी देव-कन्या का चेहरा था। कांची और मामल्लपुरम में उस पर करुणा और स्नेह से परिपूर्ण दृष्टि डालने वाला चेहरा। सन्निपात की दशा में उसके स्वप्नों में शान्ति और शीतलता प्रदान करने वाला मुख। उस सुन्दरी को फिर से देखने का सौभाग्य क्या कभी मुझे मिलेगा? विक्रम ने ठंडी आह भरी। उसी समय कुन्दवि चुपचाप उसके पीछे से आकर एक पेड़ के तने से टिकी खड़ी हो गई।

कुन्दवि थोड़ी देर तक वैसे ही पेड़ के तने से टिकी खड़ी रही। विक्रम उसकी ओर मुड़कर देखने का नाम भी न लेता था। कावेरी के जल-प्रवाह से उसने अपनी आंखें ऊपर उठाई ही नहीं। कुन्दवि ने एक छोटा-सा कंकड़ उठाकर पानी में फेंका। 'छटाक्' की आवाज़ करता हुआ कंकड़ पानी में डूब गया, छोटी-छोटी बूंदें उठकर विक्रम के लगीं।

कुन्दवि की युक्ति कारगर हुई। विक्रम ने मुड़कर देखा। उसकी आंखें विस्मय में फैल गईं। एकटक उसकी ओर देखता रहा, मानो आंखों में वह रूप भर लेगा। होंठ कुछ खुले और लगा कि वह कुछ कहने जा रहा है, पर मुंह से कोई शब्द न निकला।

एक लम्बी सांस छोड़कर वह मुड़ा और फिर से कावेरी के प्रवाह को निहारने लगा। कुन्दवि थोड़ी देर वहीं खड़ी रही। फिर आकर विक्रम के पास बैठ गई।

विक्रम दो-तीन बार उसकी ओर उन्मुख हुआ। हर बार थोड़ी देर उसे देखता रहता, फिर मुंह दूसरी ओर को कर लेता था।

कुछ देर बाद कुन्दवि यह कहती हुई उठी, "अच्छा, मैं जाती हूं।"

विक्रम अत्यन्त आश्चर्य में भरकर उसकी ओर मुड़ा और पूछा, "तुम कुछ बोलीं क्या?"

"मैं कोई गूंगी तो हूं नहीं कि न बोलूं।" कुन्दवि ने उत्तर दिया।

विक्रम आश्चर्य से उसी तरह उसको देखता रहा। कुन्दवि फिर वहां से चलने को हुई।

"जा क्यों रही हो?" विक्रम ने स्निग्ध स्वर से पूछा।

"तुम तो कुछ बोलते नहीं, बैठने से क्या लाभ? इसलिए जा रही हूं।" कहती हुई कुन्दवि फिर विक्रम के निकट आकर बैठ गई।

"मुझे डर लगता था!" विक्रम ने कहा।

"डर किस बात का? एक अबला नारी से डरने वाले आप अकेले रास्ते कैसे चल पड़े?"

"तुम्हें देखकर नहीं डरा मैं।"

"तो फिर?"

"सोचा कि मैं जो देख रहा हूं वह सपना या भ्रम तो नहीं है? डरना इसलिए था कि बोलने से शायद यह स्वप्न भंग हो जाय।"

कुन्दवि ने मुस्कराते हुए पूछा, "अब क्या लगता है? निरा स्वप्न या चित्त-भ्रम?"

"अब भी कुछ संदेह है। तुम नाराज़ न हो तो···"

"क्या करोगे?"

"इस बात का निश्चय कर लूंगा कि सचमुच तुम कौन हो?" यह कहता हुआ विक्रम अपने हाथ कुन्दवि के कपोलों के निकट ले गया। सन्निपात की दशा में, स्वप्नों में वह मुख जैसे अदृश्य हो जाया करता था, वैसा नहीं हुआ। कुन्दवि ने अपना मुख हटाने का प्रयत्न भी न किया। विक्रम कुन्दवि के फूल-जैसे कोमल कपोलों पर हाथ फेरने लगा। विक्रम को हाथ हटाने की इच्छा ही न हुई, कुन्दवि ने बरबस हटाकर उसी की गोद में रख दिये।

कुछ क्षणों के बाद वह मुस्कराती हुई बोली, "अब तुम्हारा संदेह दूर हो गया। कुछ निश्चय कर पाए?"

'हां, संदेह दूर हो गया और कई बातें स्पष्ट भी हो गईं।" विक्रम ने उत्तर दिया।

"कौन-कौन-सी?"

"एक तो यह कि सचमुच तुम्हीं यहां बैठी हो। यह निरा भ्रम या स्वप्न नहीं है।"

"और···?"

"दूसरा यह कि तुम न तो स्पर्श से परे देव-कन्या हो और न जीव-चेतनहीन सुवर्ण प्रतिमा हो। तुम साधारण मानवी हो।"

"और कुछ?"

"हां। तुमसे बिछुड़कर जीना मेरे लिए अब सम्भव नहीं है।"

कुन्दवि ने अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया और आंखें पोंछ लीं। फिर विक्रम को देखकर पूछा, 'तुम्हें मेरी याद है?"

"याद? अच्छा सवाल किया तुमने। इससे अच्छा होता यदि तुमने यह सवाल किया होता कि मेरे अतिरिक्त और किसी की भी याद है? दिन या रात में, यात्रा या युद्ध-क्षेत्र में, सुख या दुख में तुम्हारा मुंह मेरी आंखों से कभी दूर नहीं हुआ। तीन वर्षों से मैं जहां जाऊं, जो कुछ करूं, मेरे मन में तुम्हारी सूरत सदा विद्यमान रहती थी···"

"क्या कह रहे हो तुम? अभी दस दिन पहले ही तो मैं मामल्लपुरम में तुमसे मिली थी! तीन साल कहां हुए?" कुन्दवि ने कपट हंसी हंसकर अविश्वास के भाव से पूछा।

विक्रम कुछ हतप्रभ होकर मौन हो गया। फिर बोला, "जो हो, अभी दस दिन ही हुए हैं?"

"तो क्या तीन वर्ष ज्वर में पड़े थे?"

"अच्छा, अच्छा। ज्वर के कारण मुझे कुछ भ्रम हो गया होगा। लगता है कि हमारा-तुम्हारा स्नेह वर्षों पुराना है।"

"क्या तुमको ऐसा याद पड़ता है कि मुझे मामल्लपुरम की सड़कों पर देखने के पहले भी कहीं देखा था?" कुन्दवि ने पूछा।

विक्रम कुछ सोचने के बाद बोला, "मेरी स्मरण-शक्ति अभी ठीक से लौटी नहीं है। मन में तरह-तरह की बातें उलझी हुई हैं। और···" विक्रम कुछ हिचका।

"और क्या?" कुन्दवि ने उत्सुकता दिखाई।

"तुम्हारे विशाल नयनों को देखता हूं तो मेरी सारी बुद्धि अटपटा जाती है। मैं अपने को भूल जाता हूं और अपने सब कामों को भूल जाता हूं। सारी दुनिया भूल जाता हूं। यही क्यों, सब-कुछ भूल जाता हूं। फिर वर्ष, मास, तिथि—ये सब कहां से याद रहें?"

"अभी तुम्हारा ज्वर नहीं उतरा। इसीलिए यह सब बकवास कर रहे हो। तुम्हें यहां अकेले नहीं आना चाहिए था।"

"नहीं, मुझे तो अब बिलकुल ज्वर नहीं है। चाहो तो मेरा हाथ छूकर देख लो।" कहकर विक्रम ने अपना हाथ बढ़ाया।

कुन्दवि ने धीरे से उसका हाथ छुआ और कहा, "उफ्, यह तो एकदम जल रहा है।"

"हो सकता है; पर ज्वर के कारण नहीं।"

"अच्छा, मेरी तरफ देखकर दूसरी ओर देखो और ठीक से याद करके बताओ कि तुम कौन हो, कहां से आए और क्यों आए हो? यह सब तुम्हें याद है? या सब

कुछ भूल गए ?" कुन्दवि ने पूछा।

"हां। यहां नदी-किनारे बैठकर मैं ये ही सारी बातें याद कर रहा था। चम्पक द्वीप से जहाज पर आया था, रत्न-व्यापार करने···"

"क्या यह भी याद पड़ता है कि मामल्लपुरम के राजमार्ग पर मुझे देखा था ?"

"हां, याद पड़ता है।"

"मैंने कहा था कि महल में आना तो राजकुमारी रत्न खरीदेंगी, सो याद है तुम्हें ?"

'हां, कुछ-कुछ याद पड़ता है।"

"फिर तुम आए क्यों नहीं महल में ? बिना किसी से कुछ कहे-सुने रात को ही वहां से अकेले क्यों चल पड़े ?"

विक्रम कुछ सोचकर बोला, "सच्ची बात बताऊं ?"

"जौहरी सच्ची बात कहने के आदी होते हों तो बताओ।"

"सच मानो, तुम्हें और एक बार देखने जाता तो फिर मेरा मन तुमसे बिछुड़ने के लिए तैयार न होता। इसी कारण मैं वहां से चला आया। अब तो लगता है कि मेरा डर बहुत ही ठीक था।"

"चम्पक द्वीप में पुरुष ऐसी ही बातें करके स्त्रियों को छला करते हैं ? क्या वहां छल भी एक कला है ?" कुन्दवि ने व्यंग्य किया।

"तुम एक बात भूल जाती हो। यद्यपि मैं चम्पक द्वीप से आया हूं, मैं इसी चोल देश में पैदा हुआ और यहीं पलाहूं। इसी पुण्य-सलिला कावेरी के किनारे मैं खेला हूं। इसी नदी के प्रवाह में मैंने तैरना सीखा है। इसी सुंदर चोल देश की अमराइयों और नारियल के वनों में मैं घूमा-फिरा हूं। चम्पक द्वीप में रहते हुए न जाने कितनी बार मैंने अपनी जन्म-भूमि की याद की है। इस कावेरी के तट की याद करके आंसू बहाए हैं। अपने प्यारे देश को फिर से देखने की कितनी लालसा मेरे मन में रही है ! वह लालसा अब जाकर पूरी हुई है और सो भी तुम्हारे कारण पूरी हुई है। जब मैं सोचता हूं कि यह मेरे प्यारे देश की मिट्टी है और मैं कावेरी नदी के तीर पर बैठा हूं तो आश्चर्य में पड़ जाता हूं। अब और कोई विचार मेरे मन में नहीं है। तुम यह बताओगी कि मैं यहां कैसे आ पाया ?" विक्रम ने पूछा।

कुन्दवि ने उत्तर दिया, "कांची से उरैयूर आने वाले मार्ग पर एक महेन्द्र-मंडप में ज्वर के वेग से तुम बेहोश पड़े थे।···पर तुम पहले यह बताओ कि तुम वहां कैसे पहुंचे ? उसके पहले तुम पर क्या बीती ? तब मैं पीछे की बातें बताऊंगी।"

विक्रम ने अपने पर जो कुछ बीता था, संक्षेप में सुनाया। कुन्दवि ध्यान से सुनती रही। फिर बोली, "चक्रवर्ती के ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र और कुन्दवि देवी कांची से उरैयूर जा रहे थे। देवी के साथ मैं भी थी। जंगली नदी पार करके हम लोग

इधर आए तो महेन्द्र-मंडप में मां-मां के पुकारने की आवाज़ आ रही थी। मैंने उस मंडप के अन्दर जाकर देखा तो पहचान लिया कि तुम वही जौहरी हो जो मामल्लपुरम में मिले थे। फिर कुन्दवि देवी के पास जाकर तुम्हें भी साथ ले चलने की अनुमति मांगी। उन्होंने दया करके अपनी सहमति दे दी। यही नहीं, पूर्ण स्वस्थ होने तक तुम्हें यहीं रखने और दवा-दारू करने की अनुमति भी उन्होंने प्रदान की है।"

"बुखार की बेहोशी में मैंने बार-बार तुम्हारा मुंह देखा था। अब लगता है कि सपना नहीं था, बल्कि सचमुच मैंने तुम्हीं को देखा था।"

"हो सकता है। जब तुम ज्वर में पड़े थे, तो मैं बार-बार आकर तुम्हें देख जाती थी। पर वास्तव में तो इस सबके पीछे कुन्दवि देवी की दया भावना है।"

विक्रम न जाने किस सोच में पड़ गया! कुन्दवि ने पूछा, "चक्रवर्ती की कुमारी के सम्बन्ध में मैं इतनी बातें कर रही हूं, पर तुम एक शब्द भी आभार-प्रदर्शन नहीं करते? तुम्हारा दिल पत्थर का है क्या?"

"पल्लव-कुल से सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति का मैं आभार-प्रदर्शन नहीं कर सकता।"

"कुन्दवि देवी का सामना हो जाता तो तुम ऐसी बातें मुंह पर न लाते। यही नहीं, फिर मुझे भी एकदम भुला देते!"

"कभी नहीं! सच पूछो तो सहस्रों कुन्दवि देवियां भी तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकतीं। अच्छा, यह बताओ, वे दोनों इसी महल में हैं क्या?"

"कौन दोनों?"

"भाई और बहन।"

"युवराज महेन्द्र अब यहां नहीं हैं। वे लौटकर कांची चले गए हैं। चीन देश के यात्री आए हैं जो भारत का भ्रमण करते हुए कांची भी पधार रहे हैं। ह्वेनस्यांग—विचित्र-सा नाम है उनका। चक्रवर्ती को कोई ज़रूरी काम आ पड़ा है। इसलिए खबर आई कि ह्वेनस्यांग का स्वागत-सत्कार करने युवराज तुरन्त चले आएं। यहां आने के दूसरे ही दिन महेन्द्र वापस लौट गए। देखा, हमारे पल्लव-चक्रवर्ती की सुकीर्ति पर्वतों और समुद्र को पार करती हुई दूर देशों में भी कैसी फैली है! तुम जिन देशों में घूमे हो, वहां भी क्या यही हालत है?" कुन्दवि ने पूछा।

"हां, हां। वहां भी पल्लव-चक्रवर्ती की सुकीर्ति खूब फैली है।"

"तो बताओ, ऐसे चक्रवर्ती के अधीन रहना चोल देश के लिए गौरव की बात नहीं है? सुना है, चोल देश का राजकुमार पल्लव-चक्रवर्ती को कर देने से इन्कार करके चम्पक द्वीप में जाकर रहने लगा है। क्या तुम उसके इस काम को न्यायपूर्ण मानते हो? तुम्हारी क्या राय है?" कुन्दवि ने उत्सुकता से विक्रम के मुख पर

अपनी दृष्टि गड़ा दी।

विक्रम ने सिर उठाकर उसे देखा और गम्भीर होकर बोला, "मुझसे पूछो तो मैं तो कहूंगा कि इस चोल देश में पराधीन शासक रहने की अपेक्षा चम्पक द्वीप में स्वाधीन प्रजा बनकर रहना हज़ार गुना अच्छा है।"

"सच ? क्या मेरे लिए भी तुम यहां नहीं रुकोगे ?" कुन्दवि ने प्रश्न किया तो विक्रम ने कातर होकर कहा, "कृपापूर्वक मुझे ऐसी अग्नि-परीक्षा में न डालो।"

दोनों एक-दूसरे को भली-भांति पहचान रहे थे। और साथ-ही-साथ अनजाने बने रहने का अच्छा-खासा अभिनय कर रहे थे। पर हां, यह नाटक इस तरह लुके-छिपे कितने दिन तक चल सकता था ?

तीस

उदित होते सूर्य की सुनहरी किरणों ने कोल्लिमलै के पर्वतीय प्रदेश को बड़ा ही मनोहर बना दिया था। चट्टानों और वृक्षों पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था और वृक्षों के नीचे घनी छाया थी। धूप-छांह का एक अनोखा दृश्य उपस्थित था।

इसी समय उस प्रदेश के निकट दो सफेद शानदार घोड़े आते दीख पड़े। उन पर सवार थे शिवयोगी और पोन्नन। वे उस जंगली नदी के किनारे-किनारे आ रहे थे। शिवयोगी ने थोड़ी दूर पर पड़ी एक चट्टान की ओर इशारा करके पूछा, "पोन्नन, वह देखो चट्टान को ! देखने में क्या लगता है तुम्हें ?"

"कुछ भी नहीं महाराज, एक गंजी चट्टान है, बस !"

"मुझे कैसा प्रतीत होता है, जानते हो ? वह मुझे उन्नत-सिर घुटनों के बल बैठे हुए नंदी भगवान् की याद दिलाती है।"

पोन्नन ने देखा तो चकित होकर कहा, "हां, महाराज ? बिलकुल नंदी ही लगता है !"

"साधारण दृष्टि और शिल्पी की दृष्टि में यही तो भेद है, पोन्नन ! शिल्पी कोई चट्टान देखता है तो उसमें हाथी, सिंह या किसी दैवी प्रतिमा का रूप देखता है। शिल्पी के मन में तुरन्त कल्पना साकार हो उठती है और वह सोचने लगता है कि किस प्रकार वह रूप चट्टान में से उभर सकेगा···"

पोन्नन बीच में बोल उठा, "महाराज, आप···"

"हां, मैं एक शिल्पी ही हूं। संसार के सारे कामों में मुझे शिल्प-कला ही सबसे अधिक प्रिय है।···क्यों पोन्नन, तुमने मामल्लपुरम देखा है ?" शिवयोगी ने पूछा।

"सिर्फ़ एक ही बार देखा है, महाराज !"

"कैसा लगा तुम्हें ?"

"लगा कि किसी स्वप्न-लोक में विचर रहा हूं।"

"लेकिन वे कृतियां तो स्वप्न नहीं हैं। वे तो हम-तुमसे भी ज्यादा सच्ची हैं। पत्थर पर खुदी ये कला-कृतियां हमारे बाद भी हज़ारों वर्षों तक अक्षुण्ण बनी रहेंगी। सहस्रों वर्षों के बाद हमारे वंश इन्हें देखकर आनंदित होंगे और आश्चर्य से चकित रह जायंगे। एक समय, पोन्नन, मैं यह सपना संजोये था कि मामल्लपुरम की ही भांति इस सारे तमिष् प्रदेश को शिल्प-कला के सर्वोत्तम उदाहरणों से सुन्दर बना दूं।"

"क्या आप भी सपना देखते थे?" पोन्नन ने विस्मय से पूछा।

"हां, क्या तुम सोचते हो कि केवल तुम्हारे पार्थिव महाराज ही सपने देखा करते थे? उन्होंने तो केवल चोल-देश की उन्नति का सपना देखा था। लेकिन मैं तो सारी तमिष् भूमि की उन्नति का सपना देखता था। पोन्नन, हमारा यह पुण्य भरतखंड उत्तर और दक्षिण दो भागों में बंटा है। कथा-कहानियों, काव्य और पुराणों तथा इतिहास में उत्तर ही आदिकाल से विख्यात रहा है। उत्तर के राजा-महाराजाओं के नाम ही प्रसिद्ध रहे हैं। पाटिलपुत्र के चन्द्रगुप्त, अशोक चक्रवर्ती और विक्रमादित्य के समान दक्षिण में कौन प्रतापी राजा हुए हैं? हमारे इस काल को ही ले लो, उत्तर के हर्षवर्धन चक्रवर्ती की कीर्ति जैसे संसार-भर में फैली थी, वैसे क्या हम गर्व कर सकते हैं कि महेन्द्र पल्लव की कीर्ति भी फैली थी? दक्षिण के इस तरह पिछड़े रहने का क्या कारण है? यही कि यह दक्षिण भाग आदिकाल से ही चोल देश, चेर देश और पाण्ड्य देश के छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया था। बड़े राज्य न हों तो बड़े कार्य नहीं साधे जा सकते। बड़े कार्य साधे बिना बड़ा नाम नहीं पाया जा सकता। उत्तर में हर्ष चक्रवर्ती का साम्राज्य दो सौ कोस तक फैला है। दक्षिण में तो दस कोस की दूरी के अन्दर हम तीन राज्य तय कर लेते हैं। यह अच्छा नहीं है। इस समूचे तमिष् प्रदेश को एक बड़ा राज्य बन जाना चाहिए और तमिष् भूमि की कीर्ति समस्त संसार में फैलनी चाहिए। महेन्द्र पल्लव की यही कामना थी। मैं भी वैसा ही सपना देखा करता था और दिल से चाहता था कि मेरे जीवन-काल में वह सपना साकार हो जाय। पर मेरा स्वप्न एक व्यक्ति की पवित्र वीरता के सामने न टिक सका और टूट-फूटकर बिखर गया।"

"महाराज, आप किसकी बात कर रहे हैं?" पोन्नन ने पूछा।

"और किसकी? तुम्हारे पार्थिव महाराज की। वेण्णारु के तट का वह रण-क्षेत्र अब भी मेरी आंखों के सामने तैर जाता है। कैसा युद्ध था? कैसा भयंकर युद्ध था! वेण्णारु उस दिन खून की नदी होकर बही थी। उस रात जबकि पूनम का चांद दुग्ध-श्वेत चांदनी बरसा रहा था, वह रणक्षेत्र कितना भयंकर लगा था! उरैयूर से लड़ाई में आए हुए दस हज़ार सैनिकों में से एक भी युद्ध के समाचार

देने के लिए जीवित नहीं लौटा। इसी से समझ लो कि युद्ध कैसा रहा होगा !" बोलते-बोलते आवेश से शिवयोगी का गला भर आया।

थोड़ी देर बाद वे लोग उस स्थान पर पहुंचे, जहां वह जंगली नदी छोटे झरने का रूप धारण कर लेती थी। उसके आगे घोड़े पर जाना उनके लिए असम्भव था। इसलिए वहीं घने पेड़-पौधों के बीच अपने घोड़े छोड़कर वे लोग आगे बढ़े।

रास्ते में छोटी-बड़ी चट्टानों और ऊबड़-खाबड़ भूमि को आसानी से पार करते हुए शिवयोगी चल रहे थे। साथ चलते-चलते पोन्नन ने पूछा, "महाराज, पार्थिव महाराज के कारण आपके कार्य में विघ्न क्यों पड़ा ?"

"वातापि से लौटते हुए मैं यही विचार कर रहा था कि समूचे दक्षिण को मिलाकर एक बड़ा साम्राज्य बना लेना चाहिए, इस छोटे से तमिष् प्रदेश के लिए एक राजा और एक ही राज्य हो। मैं मन में संकल्प कर रहा था कि चेर, चोल, पाण्ड्य राज्यों को मिटा दूं और समूचे तमिष् प्रदेश को पल्लव-साम्राज्य में मिलाकर एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर दूं। पर क्या करता ? पार्थिव की पवित्र वीरता ने मेरा संकल्प चकनाचूर कर दिया। उसके पुत्र को पालने-पोसने और स्वतंत्र, वीर-पुरुष बना देने का मैंने उसे वचन दे दिया। वचन को झूठा कैसे करता ? अब स्वाधीन चोल राज्य की स्थापना करने का भार मुझ पर पड़ गया है इसीलिए रात-दिन उसी के प्रयत्नों में लगा रहता हूं। अब तो मेरे सामने वही एक विचार है और वही एक काम।"

पोन्नन और शिवयोगी इसी तरह बातें करते-करते पहाड़ पर चढ़ते जा रहे थे। झरने के दोनों ओर बड़े गौर से देखने पर भी किसी पहाड़ी रास्ते का कोई नामोनिशान न दीखा। दोनों ओर लम्बी दीवार की तरह सीधी चट्टानें खड़ी थीं। घने, कंटीले झाड़-झंखाड़ उगे थे। इधर-उधर हाथ से उन्हें हटाते हुए अन्त में शिवयोगी झरने के उद्गम पर जा पहुंचे। झरने की धारा जहां गिर रही थी, वहां एक तालाब-सा बना था। तालाब के एक ओर की चट्टानों की दीवार का सहारा लेते हुए और कहीं चट्टानों पर पांव रखकर गढ़े पार करते हुए, कहीं पानी में उतरकर चलते हुए और कहीं तैरते हुए वे आगे बढ़े। पोन्नन भी उनके पीछे-पीछे चला। शिवयोगी जैसे-जैसे आगे बढ़े वैसे-वैसे गिरता-पड़ता वह भी बढ़ा और उनके निकट जा पहुंचा। फिर बड़ी सावधानी से वे दोनों एक-एक कदम आगे रखकर चलने लगे।

चार ही पांच कदम आगे बढ़े होंगे कि शिवयोगी एक जगह पर ठिठक गए और चट्टान की दीवार की ओर इशारा किया। उस जगह एक बड़ा-सा गोल छेद था।

पोन्नन को अपने पीछे चलने का संकेत करके शिवयोगी छेद में से होकर आगे बढ़ने लगे। हाथ-पैर दोनों का उपयोग करके उस पार जा खड़े हुए। पोन्नन

भी उसके पीछे-पीछे आ गया था। उस खुली जगह में पहाड़ी चट्टान पर खड़े होकर उसने इधर-उधर दृष्टि डाली तो विस्मय से अभिभूत हो गया। आहा, वहां पर कैसा अद्‌भुत दृश्य उपस्थित था !

वे दोनों उस चट्टान के कगार पर खड़े थे, जिसमें होकर झरना झर रहा था। वहां कुएं का-सा एक गड्‌ढा था। उस गड्‌ढे के बीचों-बीच गुहा-मार्ग शुरू होकर नीचे की ओर जा रहा था। तीनों ओर पर्वतमालाएं दीवार की तरह खड़ी थीं। बीच में विशाल समतल भूमि थी। उस भूमि पर जहां तक दृष्टि जाती, पीतवर्ण पुष्पों से ढंके देवदारु के वृक्ष दिखाई पड़ते थे। जहां देखो पुष्प-ही-पुष्प, स्वर्ण-पुष्प नज़र आ रहे थे !

"पोन्नन, बहुत दिनों से जो जानना चाहता था, वह आज जान पाया। महाकपाल भैरव का निवास-स्थान पर्वतमालाओं से घिरी इसी घाटी में कहीं है। उसका ठीक-ठीक पता लगाकर ही मैं यहां से लौटूंगा। तुम···"

"मैं भी वही करूंगा, महाराज ! क्या आप समझते हैं कि मैं आपको अकेला छोड़कर यहां से चला जाऊंगा ?"

"नहीं, पोन्नन ! तुम्हें जाना ही चाहिए। और भी काम हैं जो तुम्हारे लिए बहुत ज़रूरी हैं।"

"महारानी का पता लगाने से भी बढ़कर ज़रूरी हैं, महाराज ?"

"उसके लिए तो मैं आया हूं, पोन्नन ! लेकिन रानी को बचाना मात्र पर्याप्त है क्या ? वे पूछें कि मेरा बेटा कहां है तो क्या उत्तर देंगे ? युवराज भी तो बड़े खतरे में हैं। मारप्प भूपति और महाकाल भैरव में जो बातें हुई थीं, उनका तो स्मरण करो। मारप्प भूपति को अगर पता लग गया तो न जाने क्या करेगा ?"

"हाय, हाय !"

"इसलिए कहता हूं कि तुम्हें उरैयूर वापस जाना चाहिए।"

"लेकिन आपको यहां खतरे में अकेला छोड़कर कैसे जाऊं ? अब मेरी समझ में आता है कि महाकाल भैरव ने आपको बलि के लिए पकड़ लाने को क्यों कहा था !"

"मेरी चिन्ता न करो, पोन्नन। मैं तो अपने जीवन में ऐसे कितने ही खतरों में फंस चुका हूं। मैं तो चाहता हूं कि उस कालभैरव से अकेले में मेरा सामना हो जाय। और यह भी चाहता हूं कि उसके सम्बन्ध में मेरे मन में जो शंका है, उसका भी समाधान हो जाय। तुम निश्चिन्त होकर जाओ। मैं संभाल लूंगा," शिवयोगी ने कहा।

"कौन-सी शंका है, महाराज ?" पोन्नन ने उत्सुकता दिखाई।

"समय आने पर तुम्हें बताऊंगा, पोन्नन ! अब तुम उसी रास्ते वापस चले जाओ जिस रास्ते हम आये थे। हां, सीधे उरैयूर चले जाओ। युवराज के सम्बन्ध में किसी को कुछ संदेह न हुआ हो तो वे वहीं रहें। पर यदि खतरे की कोई

सम्भावना हो तो तुम सावधानी से उन्हें लेकर मामल्लपुरम के निकट उस शिल्प-मंडप में चले जाना, जहां हमारी मुलाकात हुई थी। मैं वहीं आकर तुम लोगों से मिलूंगा।"

"आप न आए तो···?"

"अगली पूर्णिमा तक देखना। तब तक मैं तुम्हें उरैयूर में या मामल्लपुरम के निकट उस शिल्प-मंडप में आकर न मिला तो तुम मुझे ढूंढ़ते हुए आ सकते हो।"

"जैसी आज्ञा, महाराज !" कहकर पोन्नन ने बड़ी अनिच्छा से शिवयोगी से विदा ली और छेद के रास्ते उतरकर नीचे चला।

इकतीस

मार्ग में बिना किसी आपत्ति या अड़चन के पोन्नन उरैयूर जा पहुंचा। पहला काम उसने यह किया कि अपनी बुआ के घर जाकर वल्लि से मिला। "आओ, आओ", कहकर वल्लि बड़े उल्लास से उसका स्वागत करने उठी और अपने हाथ में उसका हाथ लेकर बोली, "मैं तो डर गई थी कि कहीं तुम भी युवराज की तरह जहाज़ पर चढ़कर समुद्र-पार के किसी देश को तो नहीं चले गए? या किसी ने तुम्हें पकड़कर काली माता के सामने बलि तो नहीं चढ़ा दिया? इसलिए रोज़ काली माता के मन्दिर में जाकर प्रार्थना कर आती थी कि हे माता, मेरी जान ले ले, पर मेरे पति को लौटा दे। अच्छा हुआ कि तुम लौट आए। बोलो, क्या खबर लाये हो? अच्छी ही है न?"

"अच्छी-बुरी मिली-जुली लाया हूं। पर अभी नहीं बताऊंगा। इस समय तो मुझे भूख सता रही है। तुम्हारे हाथ की ज्वार की रोटी खाए हुए अरसा हो गया। पहले चूल्हा जलाओ, तब बताऊंगा !" पोन्नन ने कहा।

वल्लि चूल्हा जलाकर रसोई बनाने बैठी। इस बीच पोन्नन ने सारा वृत्तान्त सुनाया। वल्लि बोली, "चार दिनों के अन्दर मारप्प भूपति यहां पांच बार आ चुका है। कहता है कि आजकल वही चोल देश का सेनापति है। क्या कहने हैं उसकी अकड़ के ! वसन्त-द्वीप में कोई जौहरी आया है। 'जानती हो वह कौन है? सुना है कि चम्पक द्वीप से आया है। तुम्हें पता है कि वह कौन है?'—ऐसी बातें करके मुझे बहला-फुसलाकर मेरा मुंह खुलवाना चाहता था। मैं भी अड़ी रही। बस, इतना ही कहती कि मुझे कुछ नहीं मालूम। फिर बार-बार आकर पूछने लगा कि तुम लौटे या नहीं? संभव है कि वह आज भी आये।"

सुनकर पोन्नन सोच में पड़ गया। फिर बोला, "यह विलम्ब करने का समय नहीं है। आज ही शाम को मुझे वसन्त-द्वीप जाना चाहिए।"

पोन्नन और वल्लि जल्दी-जल्दी खाना खाकर उठे और उरैयूर से कावेरी

नदी के मार्ग पर चल दिए। नौका-घाट की कुटिया पर पहुंचकर किवाड़ खोला और दोनों मिलकर अन्दर से नाव बाहर उठा लाये और उसे पानी में डाला। पोन्नन नाव पर चढ़कर डांड चलाते-चलाते बोला, "शाम होते-होते लौट आऊंगा ! चिन्ता न करना।"

बहुत दिनों के बाद फिर कावेरी नदी में नाव चलाते हुए पोन्नन ने अत्यंत उल्लास और आनन्द का अनुभव किया। वह विचारों में खोया हुआ नाव खे रहा था। उसे इस बात का भान नहीं हुआ कि किनारे के इतने निकट आ गया है। नाव जहां किनारे लगी थी वह वसन्त-द्वीप का एक कोना था और बड़ा निर्जन स्थान था। वहां नाव बांधकर उसने निश्चय किया कि द्वीप के अंदर जाकर सावधानी से सारी बातों का पता लगाये।

यह निश्चय करके जब उसने दुबारा किनारे पर दृष्टि दौड़ाई तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास ही न हुआ। वहां स्वयं विक्रम महाराज खड़े थे।

पोन्नन एक ही छलांग में नाव पर से किनारे पर कूद पड़ा। विक्रम लपककर उससे गले मिला। "महाराज, फिर से आपको इस प्रकार देखने का सौभाग्य तो मिला !" कहकर पोन्नन आनन्द के आंसू बहाने लगा।

विक्रम ने कहा, "पोन्नन, समय-संजीवी तो तुम्हीं को कहना चाहिए। यहां खड़े होकर मैं तुम्हारी ही कुटिया देख रहा था। दो-तीन दिनों से बराबर ही आकर देखता रहा हूं। आज तुम्हारी नाव न देखी होती तो शायद मैंने तैरकर उस पार जाने की कोशिश की होती। अरे ! देखो पोन्नन, नाव बही जा रही है। उसे बांध तो दो पहले।"

पोन्नन दौड़ा हुआ गया और नाव को एक पेड़ की जड़ से अच्छी तरह बांध आया। दोनों किनारे के पास ही एक पेड़ के नीचे बैठ गए।

"पोन्नन, बोलो क्या समाचार है ? उस जंगली नदी के किनारे जो घटनाएं घटी थीं, वे सब मुझे स्वप्न-सी लगती हैं। अब भी मुझे संदेह हो रहा है कि मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं। या सचमुच ही अपनी प्यारी कावेरी मां के तीर पर बैठा हूं। तुम मुझसे कब अलग हुए और क्यों अलग हुए ?" विक्रम ने पूछा।

"हाय महाराज, मैं बहुत प्रयत्न करके जब एक वैद्य को ला पाया तो आपको वहां नहीं पाया। मेरे दिल पर क्या बीती, जानते हैं ?"

"वैद्य को बुलाने गए थे ? कब और क्यों ? सारा हाल साफ़-साफ़ बताओ हमें।"

पोन्नन ने सारा वृत्तान्त सुनाया। पोन्नन के मुख से शिल्प-मंडप में शिवयोगी से उसके मिलने की बात सुनी तो विक्रम के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बोला, "उसी शिल्प-मंडप में तो मैं भी गुप्तचर-प्रधान के साथ रात-भर ठहरा था। आश्चर्य है कि तुम वहीं शिवयोगी से मिले। पोन्नन, मुझे एक बात का संदेह हो

रहा है।"

"किस बात का संदेह, महाराज ?"

"वह गुप्तचर-प्रधान ही शायद हमारे शिवयोगी हों।"

"हां, महाराज ! गुप्तचर-प्रधान स्वयं ही शिवयोगी हैं। मैं मामल्लपुरम के मार्ग से उस शिल्प-मंडप के रास्ते पर मुड़ा तो देखा कि मेरे आगे एक घुड़-सवार जा रहा है। आपके किये वर्णन से मैंने अनुमान लगाया कि वे ही वीरसेन होंगे। वे उस शिल्प-मंडप के अंदर जाकर बाहर लौटे तो जटा-मुकुटधारी शिवयोगी के रूप में आये।"

"हाय, हाय ! तो पल्लव-चक्रवर्ती के जासूस को इस बात का पता है कि मैं सचमुच कौन हूं ? लेकिन वे ही तो हैं आरम्भ से हमारी मदद करने वाले। अब क्या वे मुझे फंसायेंगे ? मेरा भंडाफोड़ करेंगे ?"

"कभी नहीं, महाराज। वे पल्लव-चक्रवर्ती के जासूस-प्रधान होने पर भी रण-क्षेत्र में आपके पिता को वचन दे चुके हैं कि वे आपका बाल भी बांका न होने देंगे। उनसे आपको खतरा नहीं है। लेकिन···"

"लेकिन क्या, पोन्नन ?"

"एक दूसरा बड़ा खतरा यहीं पर है। अब मारप्प भूपति चोल देश का सेना-पति है। जानते हैं न ? उन्हें किसी तरह यह संदेह हो गया कि आप यहां आए हैं। इसलिए महाराज, हमें यहां से शीघ्र ही चला जाना चाहिए।"

"यहां रहने से उससे भी बहुत बड़े एक खतरे की सम्भावना है। इसलिए पोन्नन, हमें अभी यहां से चल पड़ना चाहिए।" पोन्नन ने देखा कि यह कहते हुए विक्रम के मुख पर भावों का तूफान उमड़ आया है।

"कौन-सा खतरा है, महाराज ?" पोन्नन ने पूछा।

"एक सुन्दरी युवती की विशाल काली आंखों के आकर्षण का ख़तरा मालूम पड़ता है।" कहकर विक्रम कावेरी नदी को निहारने लगा। थोड़ी देर वहां मौन छाया रहा। उसे विक्रम ने ही तोड़ा और कहा, "तीन दिन से मेरे मन में एक बड़ा द्वन्द्व मचा है, पोन्नन ! कहानियों में मैंने सुना है और काव्यों में मैंने पढ़ा है कि कितने ही लोग नारी के मोह में बुरी तरह फंस गए हैं। लगता है कि मेरी भी वही गत होगी। मेनका के मोह में पड़कर विश्वामित्र ने अपना तपोबल खो दिया था न ? डर लगता है कि कहीं मेरा भी यही हाल न हो जाय ? उस सुन्दरी ने मुझे मोहपाश में ऐसा जकड़ लिया है कि क्या कहूं ? ऐसे भी कुछ मनुष्य हुए हैं, जो नारी के प्रेम के कारण देवता-तुल्य बने हैं। वे भाग्यवान हैं। लेकिन कुछ ऐसे देवता भी रहे हैं जो नारी के प्रेम में पड़कर अपने देवत्व को खो बैठे है और मनुष्य से भी बदतर हो गए हैं। मैं वैसा ही अभागा हूं। मेरा हृदय चुराने वाली नारी भी वैसी ही है। उसका प्रेम मुझे अपने धर्म से च्युत और प्रतिज्ञा से विमुख हो जाने की ओर

खींच रहा है ज्वार के उतरने के बाद से मुझे उस सुन्दरी की याद के अतिरिक्त और किसी बात का स्मरण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है, उससे अलग होकर मैं एक क्षण के लिए भी जीवित न रह सकूंगा। उसके लिए तो स्वर्ग तक को त्यागने का जी करता है। चोल देश और स्वातंत्र्य का क्या मूल्य है! उसके साथ जीवन बिताने का भाग्य प्राप्त करने के लिए कांची नरेश को मैं कर दे भी दूं तो क्या हर्ज होगा?"

"हाय, आप यह क्या कह रहे हैं? उरैयूर के चित्र-मंडप में आपने पार्थिव महाराज के सामने जो शपथ ली थी, सो याद है?" पोन्नन ने पूछा।

"याद है, पोन्नन! अभी भूला नहीं मैं। लेकिन कौन जाने कितने दिन याद रहेगी? दिन-पर-दिन मेरे मन की दृढ़ता ढीली पड़ती जा रही है। इसलिए कहता हूं कि हमें तुरन्त यहां से चल पड़ना चाहिए। इसी समय, अभी तुम्हारे साथ चलने को प्रस्तुत हूं। कहो तो चलूं।"

"चलेंगे, महाराज! लेकिन उसके पहले द्वीप में हमें एक काम भी है। महारानी ने जो पेटी दी थी उसे यहीं गाड़ रखा है।"

"देखो, मैं तो भूल ही गया था। और दो दिन यहां रह जाऊं तो संभव है कि यह भी भूल जाऊं कि मैं किस मतलब से यहां आया था। यही क्यों, मैं अपने-आप को भी भूल जाऊंगा। आज उस सुन्दरी के आने के पहले हमें यहां से चल पड़ना चाहिए। बोलो, पेटी कहां रखी है?" विक्रम ने बड़ी उतावली से पूछा।

"समीप ही में, महाराज!"

"खोदकर निकालनी है क्या?"

"हां। उसके लिए फावड़े-जैसे साधन साथ लाया हूं।" कहकर पोन्नन नाव से वे चीज़ें उठा लाया।

दोनों तेज़ क़दम उठाते हुए घनी अमराई के अन्दर घुस पड़े।

उसके जाने के थोड़ी देर बाद पास के एक पेड़ की आड़ से कुन्दवि बाहर आई। चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर अच्छी तरह से देख लेने के उपरान्त जहां नाव बंधी थी, वहां पहुंची। और एक बार अपनी दृष्टि दौड़ाकर पेड़ की जड़ से बंधी नाव की रस्सी खोल दी। नाव पहले धीरे-धीरे चली फिर उसने कुछ तेज़ रफ्तार पकड़ी। थोड़ी देर बाद तो वह नदी की धारा में भंवरों में फंसकर चक्कर काटती हुई बहने लगी। उसे देखकर कुन्दवि के होंठों पर एक विद्रूप-भरी हंसी खेल गई।

बत्तीस

घने वृक्षों की अमराई में छाया का साम्राज्य था। पोन्नन आगे-आगे चला और विक्रम पीछे-पीछे। एक पेड़ के पास पहुंचकर पोन्नन ने भूमि पर बिखरे हुए

सूखे पत्तों को हटाया और फिर वहां खुदाई शुरू की। विक्रम उसी पेड़ के नीचे जड़ पर बैठ गया। उसके मन में विचारों की लहरें उठ रही थीं और वह खोया-खोया-सा उन्हीं में डूबा था।

"महाराज !" पोन्नन के पुकारने की आवाज़ सुनी तो विक्रम हड़बड़ाकर उठा। गढ्ढे में खड़े पोन्नन के हाथों में चमड़े से लिपटी एक पेटी थी। पोन्नन ने चमड़ा अलग किया तो सुन्दर बेल-बूटेदार उत्तम कारीगरी का एक छोटा-सा संदूक उसके हाथ में दिखाई दिया।

विक्रम कूदकर पोन्नन के पास पहुंचकर और उसके हाथ से पेटी लेकर अत्यन्त उत्सुकता के साथ उसे खोलने लगा। अन्दर एक पोथी थी, जो ज़रा भी मलिन नहीं हुई थी। उसे माथे से लगाकर विक्रम ने वापस पेटी में ही रख दिया। फिर चमचम चमकती हुई तलवार हाथ में ली और पोन्नन की ओर देखकर बोला, "पोन्नन, कुछ देर पहले मेरे मन में न जाने कैसे-कैसे विचार उठे थे ! इस चोल देश के प्रति घृणा-सी पैदा हो गई थी। सोचता था कि यह देश मुक्त कैसे होगा ? सदा-सर्वदा पल्लवों के अधीन रहना ही इसके भाग्य में लिखा है। सोचते-सोचते यह विचार भी आया कि मैं इतनी सारी विपत्तियों की परवाह किये बिना ही इतना कष्ट झेलकर यहां क्यों आया ? पर वह सारी उथल-पुथल इस तलवार को देखते ही दूर हो गई। पोनन्न, इस गौरवशाली तलवार ने एक ज़माने में इस पृथ्वी पर राज्य किया है। करिकाल चोल और नेडुमुडि किल्ली ने इसी तलवार के बल पर समुद्र-पार के देशों पर भी विजय पाकर चोल-साम्राज्य की स्थापना की थी। करिकाल चोल के ज़माने में चम्पक द्वीप में जो लोग जा बसे थे, उन्हीं के वंशज आज भी वहां निवास करते हैं। उनके जैसे महान् वीर पुरुषों के वंश में मेरा जन्म हुआ है। इस अजेय तलवार ने उनके हाथों की शोभा बढ़ाई थी। उनके द्वारा जो कार्य सम्भव हो सका वह मेरे द्वारा क्यों नहीं हो सकता ? पोन्नन, इस तलवार के साथ मेरे पिता ने तमिष् वेद की जो पोथी दी है, वह क्या कहती है, जानते हो ? प्रयत्न सफल होकर रहते हैं !—मैं कैसे उस पुनीत उपदेश को भूल गया था ? मन में शिथिलता को क्यों मैंने स्थान दिया ? न जाने इस चोल देश को क्या हो गया है ? यहां जो हवा बहती है वही, लगता है, तन और मन को शिथिल बनाती है। यहां अब एक क्षण भी नहीं ठहरूंगा। चलो, यहां से अभी चलें।"

विक्रम के मुंह से ये बातें सुनकर पोन्नन ने उसकी ओर देखा तो देखता ही रह गया। उस समय विक्रम के मुंह पर एक अलौकिक तेज था।

पोन्नन की तन्द्रा टूटी तो वह जल्दी-जल्दी मिट्टी डालकर गड्ढा भरने लगा। फिर वहां टूटे पत्ते बिछाकर दोनों कावेरी नदी की ओर गए। नदी-किनारे जाकर देखा तो नाव ग़ायब थी। दोनों का दिल धक् से रह गया।

"ज़रा ठहरिए, महाराज ! मैं जाकर देख आता हूं कि नाव कहीं प्रवाह में

बह तो नहीं गई !" कहकर पोन्नन नदी के किनारे-किनारे दौड़ा।

पोन्नन के जाने के कुछ ही क्षण बाद सूखे पत्तों की चरमर सुनी तो विक्रम ने चौंककर पीछे देखा। कुन्दवि पेड़ों की आड़ से निकलकर चली आ रही थी। दोनों ने एक-दूसरे को देखा और थोड़ी देर मौन खड़े रहे।

कुन्दवि ने ही मौन तोड़ते हुए कहा, "चोल देश वालों की नीयत, शिष्टता और योग्यता का मुझे अच्छी तरह पता चल गया ! इस तरह बिना कहे-सुने कहीं कोई भागता है ?"

विक्रम ने कोई उत्तर न दिया, न दे सका; चुप ही खड़ा रहा।

"तिरुवल्लुवर ने क्या इतना ही कहा है कि प्रयत्न सफल होकर रहते हैं ? मैंने तो सुना है कि उन्होंने यह भी कहा है कि उपकार भूल जाना अच्छा नहीं। मैंने ग़लत तो नहीं सुना !"कुन्दवि के मुंह से यह सुना तो विक्रम चौंक उठा।

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ! शायद तुमने···!" आगे वह कुछ न बोल पाया।

"हां, मैं तुम लोगों को गड्ढा खोदकर कुछ निकालते हुए देख रही थी और तुम्हारी बातें भी सुन रही थी।"

"सच !"

"हां, मैंने आपका छद्म-वेश भी जान लिया।"

विक्रम कुछ सोचने के बाद बोला, "तो फिर अब इसमें कौन-से आश्चर्य की बात है कि मैंने बिना कुछ कहे-सुने भाग जाने का प्रयत्न किया ! देश-निकाले का दंड पाया हुआ व्यक्ति, जिसके स्वदेश लौटने पर मृत्यु-दंड बदा हो, विदा लिये बिना ही भाग जाने का प्रयत्न करे तो इसमें अशिष्टता या आश्चर्य कैसा ?"

"प्राण गंवाने का भय है ?"

"हां, ये प्राण अभी और कुछ दिनों के लिए मुझे चाहिएं। मैंने अपने पिता को जो वचन दिया है, उसे पूरा करने और अपनी जननी जन्म-भूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाने के लिए मुझे प्राण और कुछ दिन सुरक्षित रखने हैं।"

"लेकिन ये प्राण तो अब आपके नहीं हैं। महेन्द्र-मंडप में आप अपने प्राण खो बैठे। अब जो प्राण हैं, वे मेरे दिये हुए हैं। उन पर मेरा अधिकार है !" कुन्दवि ने कहा।

विक्रम फिर सोच में पड़ गया। करुणा-भरी दृष्टि से कुन्दवि की ओर देखकर बोला, "तुम्हारा कहना सब तरह से सच है। ये प्राण तुम्हारे ही हैं। इसलिए नहीं कि तुमने महेन्द्र-मंडप में मुझे नए प्राण दिये हैं। सच पूछो तो तीन वर्ष पहले जब मैंने तुम्हें कांचीपुरम और मामल्लपुरम में देखा था, तभी मैं तुम्हें प्राण अर्पित कर चुका था।"

"सच कह रहे हो !" कुन्दवि ने आतुर होकर पूछा।

"हां, बिल्कुल सच ! इसलिए तुमने मेरे नहीं, अपने ही प्राण महेन्द्र-मंडप में

बचाए थे।"

"अगर यह सच है तो मुझसे बिना बताये भाग खड़े होने का प्रयत्न क्यों किया ! यह कहां का न्याय है !" कुन्दवि ने कड़े स्वर में पूछा।

"मैं अपना दोष स्वीकार करता हूं। पर, क्या तुम नहीं जानती कि कारण क्या था ? तुम्हें बताकर विदा लेने में बड़ी कठिनाई इस बात की थी कि पहले तो मुझे अलग होने का साहस ही न होता और दूसरी बात यह कि तुम विदा न दो तो मैं कैसे जा सकता हूं ?"

"मेरे सम्बन्ध में ऐसा विचार आपके मन में क्यों उठा ? आप जाते तो मैं क्यों रोकती ? आप अपना कर्त्तव्य पूरा करते हो तो मैं क्यों रोड़ा अटकाऊंगी ?"

"मालूम होता है कि मैंने जो समझा था, ग़लत समझा था। तुमको सारी बातें मुझे पहले ही बता देनी चाहिए थीं और तुम्हारी मदद लेनी चाहिए थी। छिपाने का प्रयत्न करके मैंने अच्छा नहीं किया।"

"जो हुआ, सो हुआ। आगे जो होना है, उस पर हम विचार करें। आपके नाविक के लौटने तक हम यहीं बैठें !" कुन्दवि ने कहा।

"नाव कैसे खुली ? शायद तुमने···?"

"हां, मैंने ही नाव खोल दी थी। मुझे बताए बिना जाने का प्रयत्न किया न ? उसका दंड है !"

विक्रम थोड़ी देर मौन रहा, फिर बोला, "वही तो मैंने बताया। मेरे मन में यह डर समा गया था कि तुमसे कह-सुनकर विदा लेना और चले जाना असम्भव होगा।"

"आपके पूर्वज करिकाल चोल अगर इसी तरह डरे होते तो द्वीप-द्वीपान्तरों पर कैसे विजय पाते ?" कुन्दवि ने प्रश्न किया।

"नहीं पाते। इसलिए अब मैं चाहता हूं कि तुम धैर्य के साथ विदा दो और मैं तुमसे सहायता की भी प्रार्थना करता हूं। इस नदी को पार करने के लिए नाव और वहां से मामल्लपुरम जाने के लिए घोड़ा दे सको तो बड़ी कृपा होगी।"

"दूंगी, पर एक शर्त पर।"

"शर्त कैसी ?"

"हां, ज़रा कड़ी शर्त है। पिछली बार जैसा किया, वैसा इस बार नहीं करना चाहिए। माने, मुझे किनारे पर खड़ा छोड़कर आपको जहाज़ पर नहीं जाना है। जाते समय मुझे भी साथ ले चलना होगा, समझे ?"

विक्रम के आश्चर्य की सीमा न रही। कुन्दवि का कोमल हाथ अपने हाथ में लेकर गद्‌गद् स्वर में बोला, "देवी ! क्या कहा ? मेरे इन कानों ने जो सुना, क्या वह सच है ? मैंने ऐसा कौन-सा काम किया है कि मुझे इतना बड़ा सौभाग्य प्राप्त हो ? विश्व-विख्यात पल्लव-चक्रवर्ती की इकलौती बेटी हो तुम ! इस देश-निकाला

प्राप्त व्यक्ति के साथ समुद्र-पार के देश को चलोगी? तुम्हारे पिता चक्रवर्ती सहमत होंगे?"

"मेरे पिता ने अब तक मेरी कोई इच्छा नहीं टाली है, अब भी नहीं टालेंगे।"

तभी किसी ने, 'महाराज' कहकर पुकारा तो दोनों चौंक पड़े और मुड़कर देखा। आवाज़ देने वाला पोन्नन था।

विक्रम ने पोन्नन से कहा, "अरे पोन्नन! तुम कब आये? नाव मिली कि नहीं? इन्हीं ने नाव खोल दी थी। कहती हैं कि दूसरी नाव देंगी।"

"मैंने भी सुना है, महाराज! लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि इतने सारे कष्ट उठाने की ज़रूरत क्या है? देवी की बात चक्रवर्ती कभी नहीं टालेंगे। आपके बारे में एक शब्द भी कह दें···"

कुन्दवि एकदम जोश से भर गई और पोन्नन के सामने जा खड़ी हुई। बोली, "नाविक, तुम्हारे मुंह से ये बातें निकलीं कैसे! चक्रवर्ती के पास जाकर मैं गिड़-गिड़ाऊं कि वे तुम्हारे महाराज को क्षमा करें और प्राण-भिक्षा दें! एक बार मैं ग़लती कर चुकी हूं, फिर वही भूल दुहराऊंगी नहीं। ये अपने हाथ की इस तलवार के बल से चप्पा-भर भूमि के ही राजा बनें तो उस चप्पा-भर भूमि की मैं रानी बनूंगी। ये तुम्हारी तरह नाव खेकर जीवन-यापन करें और मुझे एक झोंपड़ी में रखें तो तुम्हारी स्त्री वल्लि की तरह उस कुटिया की ही रानी बनूंगी। इन्हें क्षमा करने या इन्हें चोल राज्य लौटा देने की प्रार्थना मैं चक्रवर्ती से कभी नहीं कर सकती। मैं अपने लिए अपने पिता से भीख मांग सकती हूं; पर इनके लिए कुछ मांगकर इनके गौरव और वीरता में बट्टा नहीं लगने दूंगी।"

"देवी!" पोन्नन ने कुछ कहना चाहा, पर कुन्दवि ने उसे बोलने न दिया और अपनी ही बात आगे बढ़ाई। बोली, "हां, और इनका भेद भी यदि खुल जाय और इन्हें मृत्यु-दंड दिया जाय तो भी मैं इनके प्राणों की भीख नहीं मागूंगी बल्कि यह वरदान मांगूंगी कि इन्हें दंड देने के पहले इनके साथ मेरा विवाह कर दिया जाय।"

"देवी, लगता है कि उसकी नौबत आ गयी है। वह देखिये, नावों में सवार सैनिक आ रहे हैं।" पोन्नन ने कहा।

विक्रम और कुन्दवि ने चौंककर उस ओर देखा जिस ओर पोन्नन ने इशारा किया था। उरैयूर की ओर से चार नावें आ रही थीं। बसंत-द्वीप के घने पेड़ अभी तक इन्हें दृष्टि से परे रखे हुए थे। अब एक मोड़ पर आकर वे दृष्टिगोचर हुईं। पोन्नन ने जैसा बताया था, वैसे ही नाव पर सैनिकों की टुकड़ियां दिखाई दीं।

थोड़ी देर विक्रम पास आती नावों को भौंचक खड़ा देखता रहा। फिर झट से होश संभालकर बोला, "पोन्नन, निकाल लो अपनी तलवार!"

पोन्नन भी सोच में खड़ा था। विक्रम की बात सुनकर उसके पास आकर

बोला, "महाराज, मारप्प भूपति के आदमियों से हमें लड़ाई नहीं मोल लेनी चाहिए। वे संख्या में बहुत हैं और हम तो दो ही हैं!"

"पोन्नन, तुम यह क्या कह रहे हो? चोल देश के वीरों की गंध तुम्हें भी लग गई क्या!" विक्रम ने कड़ककर पूछा।

"नहीं, महाराज! मैं अपने प्राणों के लिए नहीं डरता। इनका त्याग करने के लिए तो मैं हमेशा से ही तैयार हूं। कारण दूसरा ही है। इस समय हम लड़ेंगे तो सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा। महाराज, आपको अपनी माता अरुल्मोलि देवि के दर्शन नहीं करने हैं? एक बात और भी है। अपने पूर्वजों की इस गौरवमयी तलवार से आप पहले-पहल अपनी प्रजा पर हाथ साफ़ करना चाहेंगे?" पोन्नन का अन्तिम प्रश्न सुनकर विक्रम का मुंह सफेद पड़ गया।

"बस पोन्नन, बस! आगे कुछ न कहो। मैं तलवार नहीं छुऊंगा।" विक्रम ने पोन्नन को आश्वासन दिया। फिर कुन्दवि की ओर देखकर कहा, "देवि, इस पेटी को सुरक्षित रखने का काम तुम्हें सौंपता हूं। फिर मिलने का मौक़ा मिले तो मुझे लौटा देना।"

लेकिन न जाने, उसकी बातें कुन्दवि के कानों में पड़ीं या नहीं। उसका मुख क्रोध से तमतमा रहा था। आती हुई नावों को वह आग्नेय नेत्रों से देख रही थी।

नावें किनारे लगीं। मारप्प भूपति पहले नाव से उतरा और बड़े अदब से कुन्दवि देवी के पास आकर बोला, "देवी, आपकी अनुमति के बिना यहां आने के लिए आपसे क्षमा-याचना करता हूं। चक्रवर्ती की आज्ञा का पालन करने के लिए मुझे इस तरह पूर्व-सूचना दिये बिना ही आना पड़ा।"

कुन्दवि क्रोध से जलती हुई बोली, "चक्रवर्ती की? किस चक्रवर्ती की? कौन-सी आज्ञा?"

"आपके भाई महेन्द्र पल्लव की आज्ञा है। चम्पक द्वीप से जो जासूस आया है उसे पकड़कर कांची भेजने को कहा है। यह देखिए आज्ञा-पत्र!" कहकर मारप्प भूपति ने पत्र आगे बढ़ा दिया। उसमें महेन्द्र की मुद्रा के साथ यही आदेश था।

पत्र पढ़कर कुन्दवि ने पूछा, "चम्पक द्वीप का जासूस कौन है?"

"यह जो खड़ा है, यही है देवी!"

कुन्दवि कांप उठी। "सेनापति, ये मेरे अतिथि हैं। इनकी सुरक्षा का भार मैंने अपने ऊपर लिया है। इन्हें कुछ हो तो···" कहकर कुन्दवि विक्रम को अपनी आड़ में लेती हुई आगे जा खड़ी हुई। मारप्प भूपति ज़ोर से हंस पड़ा। "वाह रे वाह! चोल देश की कीर्ति कायम रखने वाला वीर सिंह एक औरत के आंचल में छिपता है!" ताना देते हुए वह फिर ठठाकर हंस पड़ा।

लज्जा और क्रोध से विक्रम की आंखें लाल हो गईं। कुन्दवि को पीछे करके

वह आगे आ खड़ा हुआ और मारप्प भूपति से कहा, "चाचाजी, मैं अभी चलने को प्रस्तुत हूं। ले चलिए मुझे।"

मारप्प भूपति ने व्यंग्य-भरी दृष्टि कुन्दवि पर डाली और बोला, "देवी, मुझ दीन पर क्रोध क्यों? इसे आप बचाना चाहती हैं तो पिता या भाई से कह सकती हैं। चक्रवर्ती तो बड़े करुणानिधान हैं। यह उनके पैरों पर पड़कर क्षमा मांगे और कर देने के लिए तैयार हो जाय तो अवश्य इसे क्षमा कर देंगे।"

मारप्प भूपति को जैसी आशा थी विक्रम और कुन्दवि पर वैसे ही उसके इन शब्दों की प्रतिक्रिया हुई। उनके दिल को ठेस पहुंचाकर उसके आनन्द की सीमा न रही।

विक्रम तुरन्त जाकर नाव पर सवार हो गया। कुन्दवि उत्सुक नेत्रों से विक्रम को देख रही थी। शायद उसे यह आशा थी कि विक्रम मुड़कर देखेगा तो आंखों-ही-आंखों उसे धीरज बंधा सकेगी। लेकिन विक्रम ने उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखा।

तेतीस

नावों के जाने के बाद कुन्दवि ने पोन्नन से पूछा, "नाविक, अपनी औरत को तुम कहां छोड़ आए हो?"

पोन्नन ने उत्तर दिया, "उस पार की कुटिया में छोड़ आया हूं।"

"अभी जाकर उसे यहां ले आओ। उसके बाद हमें एक बड़ा काम करना है। किसी तरह हमें तुम्हारे महाराज को छुड़ाना है। छुड़ाकर बड़ी सावधानी से उन्हें मामल्लपुरम भेजना है। आगामी अमावस्या के दिन चम्पक द्वीप को जाने वाले जहाज पर उन्हें चढ़ाने के बाद ही हम शान्ति की सांस ले सकते हैं।" कुन्दवि ने कहा।

कुन्दवि के मुंह से ये बातें सुनकर पोन्नन के मन में आया कि वह जो कुछ जानता है उसे बता दे। किन्तु दूसरे ही क्षण उसे स्मरण हो आया कि वह शिवयोगी के आगे वचनबद्ध है। उसे यह तो मालूम न था कि शिवयोगी अपने सारे काम गुप्त रूप से किसलिए करते हैं। उसकी उतावली के कारण उनके कार्य में विघ्न न पड़े, यह सोचकर वह बड़े धीरज के साथ कुन्दवि की बातें सुन रहा था। अन्त में वह बोला, "देवी, विक्रम महाराज की कुशल हो, इसके अतिरिक्त संसार में मेरे लिए और कुछ नहीं है। आप जैसी आज्ञा दें, करने को तैयार हूं।"

"अच्छा, अब महल को जा रही हूं। तुम जाकर वल्लि को यहां बुला लाओ।" कुन्दवि ने कहा।

कुन्दवि की आज्ञा से उसे जो नाव मिली, उस पर पोन्नन नदी के पार गया।

कुटिया के द्वार पर गया तो देखता क्या है कि द्वार अन्दर से बन्द है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि वल्लि ने आज तक कभी ऐसा नहीं किया। पोन्नन ने किवाड़ खटखटाया तो अन्दर से डपटकर वल्लि ने पूछा, "कौन है बाहर ?" पोन्नन की आवाज़ भलीभांति पहचानने के बाद ही वल्लि ने किवाड़ खोला। पोन्नन ने खीझ-कर पूछा, "इस तरह द्वार क्यों बन्द कर रखा है ?" इसके उत्तर में वल्लि ने जो बताया, उसने उसे चकित और भयभीत कर दिया।

पोन्नन के आने के थोड़ी देर पहले शाम के धुंधलके में किसी के बोलने का स्वर सुनाई दिया तो वल्लि ने कुटिया में जाकर अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिये। थोड़ी देर में वह स्वर कुटिया के अत्यन्त निकट आ गया। एक कल्पनातीत कर्कश स्वर ने कहा, "तुम यहीं रहो और मारप्प भूपति के आते ही उसे ले जाना। मैं मन्दिर में जा रहा हूं।" दूसरे कंठ ने कहा, "महाप्रभु चाहें तो इस कुटिया में ठहर सकते हैं।" "नहीं, नहीं, यह नौकाघाट है। यहां मेरा ठहरना उचित नहीं। तुम यहीं रुको और उसे ले आना।" उसी कर्कश स्वर ने उत्तर दिया। थोड़ी देर बाद वल्लि ने बिना कोई आहट किए धीरे-से किवाड़ खोले तो थोड़ी दूर पर धुंधले प्रकाश में दो व्यक्ति जाते हुए दिखाई दिए। उनमें एक लम्बे कद का था। उसके एक हाथ नहीं था। उसे देखकर कभी अधीर न होने वाला वल्लि का हृदय भी धीरज खो बैठा था। जब उसे इस बात का स्मरण आया कि वह कावेरी के संगम पर रानी अरुल्मोलि को उठाकर ले जाने वाला व्यक्ति ही है तो उसका डर और भी बढ़ गया। साथ वाला व्यक्ति एक विचित्र-सा बौना था। बौने के साथ-साथ चलते हुए वह लम्बा पुरुष और भी लम्बा दिखाई देता था।

एक हाथ वाला वह आदमी सड़क से पूरब की ओर चला गया। बौना सड़क के किनारे चुपचाप एक पेड़ के तने पर बैठ गया। वल्लि ने फिर किवाड़ लगा लिये।

ये सारी बातें सुनाने के बाद वल्लि ने चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। फिर पोन्नन का हाथ पकड़ती हुई अत्यन्त धीमे स्वर में बोली, "वह देखो, सड़क के किनारे वाले पेड़ के नीचे बौने की सूरत दिखाई दे रही है। लगता है वह हमारी कुटिया की ही तरफ़ घूर रहा है।"

पोन्नन कुछ सोचकर बोला, "वल्लि, चलो। आज रात को मुझे एक ज़रूरी काम करना है।"

"कहां चलने को कहते हो ? उरैयूर को ?" वल्लि ने पूछा।

"नहीं, वसन्त-द्वीप को। कुन्दविदेवी ने तुम्हें वहां बुला लाने को कहा है।"

"अच्छा, यह बात है ? युवराज···महाराज···अच्छे तो हैं ? देवी को इस बात का पता है कि वे कौन हैं ?" वल्लि अपनी उत्कंठा न दबा सकी।

"बहुत-सी बातें हैं कहने को। चलो नाव पर, सब-कुछ बताऊंगा।" पोन्नन ने कहा।

दोनों नदी-किनारे पहुंचे। पोन्नन ने जान-बूझकर काफ़ी शोर मचाते हुए नाव खोली। जब वह नाव चलाने लगा तो डांड की छप-छप भी काफी ऊंची सुनाई पड़ रही थी। अन्धकार में भी पोन्नन ने देखा कि उसकी नाव पर बौने की दृष्टि गड़ी है।

आधी रात में अभी एक घड़ी शेष थी। पोन्नन फिर नाव खेता हुआ कावेरी के दक्षिण तट पर आया। इस बार वह नौका घाट पर अपनी नाव नहीं लाया, बल्कि कुछ पूरब की ओर ले गया। बिना कोई आहट किये उसने नाव खड़ी की और उतरकर किनारे पर आया। देखा कि बौना सड़क के किनारे जहां-का-तहां बैठा है। धीरे-धीरे पोन्नन दबे पांव आकर कुटिया की दीवार से सटकर बैठ गया और उरैयूर के मार्ग पर आंखें गड़ाकर देखने लगा। निश्चय ही कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटने वाली है—इस प्रतीक्षा में उसका दिल धड़क रहा था।

घोड़े की टाप सुनाई दी तो पोन्नन चौकन्ना हो गया। हां, उरैयूर की ओर से ही आवाज़ आ रही थी। थोड़ी देर में घोड़ा निकट आ गया और तारों के प्रकाश में पोन्नन ने देखा कि घोड़े पर आने वाला व्यक्ति मारप्प भूपति ही है। सड़क के बीच खड़े बौने के पास आकर घोड़ा रुक गया।

बिना कोई आहट किये पोन्नन पेड़ों की घनी छाया में छिपकर चलता हुआ मार्ग के निकट एक वृक्ष की आड़ में जा खड़ा हुआ।

"चित्रगुप्त, महाप्रभु कहां हैं?" मारप्प भूपति का प्रश्न पोन्नन के कानों में पड़ा तो उसे निश्चय हो गया कि वहीं से उनकी बातचीत सुनाई देगी। अतः वह चौकन्ना होकर वहीं खड़ा हो गया।

"अय्यनार के मन्दिर में हैं। आपको रास्ता दिखाकर वहां पहुंचाने के लिए मुझे यहीं खड़ा कर गए हैं···। हां, वह कहां है?"

"कौन?"

"वही कई नामों वाला···जौहरी देवसेन और आपका दायक भागी···हि हि हि···" बौना तीखी हंसी हंसा।

"उसे पूछते हो? हा हा हा!" मारप्प भूपति ने हंसते हुए कहा, "वह सुरक्षित है। तुम उसकी चिन्ता मत करो···। उस दिन जैसे जौहरी को रास्ता बताया था, कहीं वैसे ही तो मुझे नहीं बताओगे?" अपने इस प्रश्न पर भूपति कहकहा मारकर हंस पड़ा। चित्रगुप्त ने जो उत्तर दिया वह पोन्नन के कानों में न पड़ा।

"मुझे रास्ता दिखाने के लिए तुम्हें यहां भेजा है? अच्छा, बताओ रास्ता!" कहते हुए मारप्प भूपति ने हवा में चाबुक चलाया। उसका छोर ज़ोर से चित्रगुप्त पर पड़ा। चाबुक की आवाज़ सुनकर घोड़ा हवा से बातें करने लगा।

बौना कुछ गुनगुनाता हुआ तेज़ क़दम बढ़ाता उसके पीछे चला। बौने को इतना तेज़ चलते देख पोन्नन को बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ा अन्तर देकर पोन्नन भी उनके पीछे दौड़ लगाता गया।

पूर्व की ओर एक घड़ी का रास्ता तय करने पर पोन्नन को निश्चित रूप से मालूम हो गया कि वे कहां जा रहे हैं। वे टूटे-फूटे शास्ता के मन्दिर की ओर ही बढ़ रहे थे। कहीं पेड़-पौधे शरीर पर लगें और उनकी आवाज़ से कुछ पता न लग जाय···इसलिए पोन्नन कुछ और पीछे-पीछे चलने लगा। थोड़ी देर बाद कुछ दूर पर मशाल की रोशनी दिखाई दी। हां, वही शास्ता का पुराना मन्दिर था।

मंदिर के प्रवेश-द्वार पर पोन्नन ने जो दृश्य देखा उससे उसका दिल दहल गया। वहां पुराणों में वर्णित भयावह राक्षस जैसे रूप का एक व्यक्ति हाथ में मशाल लिये खड़ा था। उसके निकट लम्बे-चौड़े महाकपाल भैरव खड़े थे। मशाल की लाल रोशनी में चन्दन-कुंकुम से पुता उनका माथा खून से भी अधिक लाल दिखाई दे रहा था। उनके गले में जो कपाल-माला लटक रही थी, उसे देखकर पोन्नन कांपने लगा। डरते-डरते वह मन्दिर के पिछवाड़े गया और वहां से मन्दिर के प्रवेश-द्वार के निकट नीम का जो बड़ा वृक्ष था, उसकी आड़ में आ खड़ा हुआ। उसी समय चित्रगुप्त और मारप्प भूपति महाकपाल भैरव के सामने पहुंचे।

"महाप्रभु !" मारप्प भूपति ने कपाल भैरव को झुककर प्रणाम किया।

"सेनापति, माता की आज्ञा पूरी कर लाये ?" कमाल भैरव के मुख से कर्णकटु स्वर फूटा।

"महाप्रभु, बलि सुरक्षित है।" कपाल भैरव के प्रश्न का मारप्प भूपति ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया।

"कहां है ? यहां क्यों नहीं लाये ? माता की आज्ञा की उपेक्षा तो नहीं कर रहे हो, सेनापति ?"

"नहीं, नहीं, महाप्रभु। आज ही शाम को युवराज को हथिया सका, अभी तुरन्त यहां लाने में बड़ा खतरा है। प्रभु, वह नाविक यहीं कहीं है···।"

यह सुनना था कि पेड़ के पीछे छिपा पोन्नन एकदम चौंक पड़ा। उसका कलेजा मुंह को आ गया। पैरों तले की भूमि खिसकती-सी लगी। उसे निश्चय हो गया कि आज प्राणों की खैर नहीं। पर मारप्प भूपति की आगे की बातों ने उसे धीरज बंधाया।

"···उसे हम नहीं पकड़ सके, प्रभु ! चक्रवर्ती की कुमारी ने बीच में रोड़ा डाल दिया। कुन्दवि देवी अभी यहीं हैं और युवराज को बचाने के प्रयत्न में लगी हैं इसलिए हमें अपने काम में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। नहीं तो सारा काम बिगड़ जायगा।"

महाकपाल भैरव एक विकट हंसी हंसे। बोले, "सेनापति, ऐसी बातें क्या

तुम्हारे ही मुंह से निकल रही हैं ? काली माता की आज्ञा का पालन करने से तुम हिचकिचाते तो नहीं हो ?"

"नहीं प्रभु, नहीं। महाप्रभु की आज्ञा और काली माता की इच्छा तो हमेशा सिर-आंखों पर है।"

"भूपति, मां काली की तुम पर पूर्ण कृपा है। तुम्हें ऊंचे-ऊंचे पदों पर बिठाने वाली है···अच्छा बोलो, कब और कहां बलि पहुंचाओगे ?"

"अमावस्या की रात को प्रथम प्रहर में परान्तकपुरम को तय करने पर जो महेन्द्र-मंडप आता है, उसके पास पहुंचाऊंगा। वहां आप अपने आदमी भेजकर ले लें तो अच्छा हो।"

"यह काम मुझे क्यों सौंपते हो ?"

"महाप्रभु, यहां के लोगों पर मुझे पूरा-पूरा भरोसा नहीं होता। मैं युवराज को इस बहाने वहां से भेजने वाला हूं कि चक्रवर्ती की आज्ञा उसे कांची पहुंचाने की हुई है। कुछ समय देकर मैं भी उनके पीछे आऊंगा। आपके आदमी रास्ता रोककर युवराज को छीन ले जायं। मैं जो आदमी साथ करूंगा, वे कोई ऐसे शूरवीर नहीं होंगे। आपका नाम सुनकर तलवार डाल देंगे और सिर नवाएंगे।"

"अच्छा, सेनापति ! यही करेंगे। लेकिन सावधान ! काली माता अगली अमावस्या की रात को निश्चयपूर्वक अपनी बलि की प्रतीक्षा करती होंगी।" कपालभैरव ने कहा।

फिर कपाल भैरव, चित्रगुप्त और मारप्प भूपति ये तीनों वहां से चल दिए। मशाल लिये हुए राक्षस उनके आगे-आगे चला। कुछ देर बाद मशाल की वह रोशनी आंखों से ओझल हो गई।

पूर्वाकाश में चांद उग आया था।

उनके जाने के कुछ देर बाद पोन्नन वहां से रवाना हुआ। उसका शरीर यद्यपि बहुत थक गया था, फिर भी मन में एक तरह का उत्साह था। विक्रम को नर-बलि चढ़ाने वालों के हाथ से बचाने का उपाय भी उसे सूझ गया था। उसने एक तरह से अनुमान लगा लिया था कि मारप्प भूपति कैसी चाल चलने वाला है। उसकी चाल से ज्यादा बड़ी चाल चलकर विक्रम महाराज को छुड़ाना चाहिए और सीधे मामल्लपुरम के बन्दरगाह ले जाना चाहिए। कुन्दवि देवी की सहायता से इन कार्यों को सम्पन्न करना होगा। इस प्रकार विचारों की माला गूंथता हुआ पौ फटते-फटते पोन्नन नौका-घाट पर आ पहुंचा।

चौंतीस

विक्रम उरैयूर के कारावास में एक अलग कमरे में बन्द किया गया था।

जहां सिंहासन पर बैठकर राज-दंड ग्रहण कर उसे शासन की बागडोर हाथ में लेनी चाहिए थी, वहां उसे कारागृह में बंदी बनकर रहना पड़ा। अपने इस भाग्य पर वह मलिन हंसी हंसा।

अमावस्या के समीप आते-आते विक्रम के मन की उथल-पुथल एकदम बढ़ गई। अमावस्या के दिन चम्पक द्वीप का जहाज़ मामल्लपुरम के बन्दरगाह में आयगा। दो दिन उसकी प्रतीक्षा में वहीं खड़ा रहेगा। किसी तरह इस कारावास से बचकर वह अमावस्या के दिन मामल्लपुरम जा सके तो···

विक्रम के मन में न जाने किन-किन विचारों का ज्वार-भाटा उठता रहा। एक-एक पल उसके लिए एक-एक युग बन गया। आखिर अमावस्या की पूर्व सन्ध्या को मारप्प भूपति आया। विक्रम को देखकर विकट हंसी हंसता हुआ बोला, "हे जौहरी महाराज ! कांची से आदेश आ गया है।"

एक क्षण के लिए विक्रम का दिल दहल उठा। आदेश का अर्थ उसने समझा, मृत्यु-दंड। यद्यपि वह मृत्यु से नहीं डरता था, खुशी-खुशी उसे गले लगाने को प्रस्तुत था, फिर भी जल्लाद के हाथों कट मरना उसे कतई अभीष्ट न था।

मारप्प भूपति फिर बोला, "आदेश आया है कि तुम्हें सुरक्षित रूप से कांची भेजा दिया जाय। आज रात्रि के दूसरे प्रहर में यहां से रवाना होना है। तैयार रहना !" सुनकर विक्रम का भय दूर हो गया और उत्साह लौट आया। मार्ग में बच निकलने के कितने ही रास्ते सम्भव हो सकते हैं ! न हो तो भी वह लड़कर वीरोचित मृत्यु प्राप्त कर सकता है। ये दोनों काम न हो सकें तो भी चक्रवर्ती के सामने उसे एक बार फिर यह कहने का मौका मिल सकता है कि पराधीन जीवन मुझे स्वीकार नहीं। स्वाधीनता के लिए मैं अपने प्राण होम कर दूंगा। यदि चक्रवर्ती के निकट उस समय कुन्दवि भी रहे और उसे यह कहने का अवसर भी मिले तो इससे बढ़कर सौभाग्य की बात दूसरी क्या हो सकती है ?

रात का प्रथम प्रहर बीतने पर कारावास का द्वार खुला। कुछ हथियार-बंद सैनिक और मारप्प भूपति अन्दर प्रविष्ट हुए। विक्रम के हाथों में हथकड़ी डालकर उसे बाहर लाये। द्वार पर एक गाड़ी खड़ी थी। विक्रम को उस पर चढ़ाया गया। उसके आगे-पीछे सैनिक बैठे।

गाड़ी उरैयूर की गलियों से होकर चलने लगी। पहले की तरह इस समय गलियों में दीये नहीं जल रहे थे। सारा नगर अन्धकार में डूबा था। इसे देखकर विक्रम के दिल को बड़ी ठेस पहुंची। हाय, क्या यही चोल देश की राजधानी उरैयूर है ?

"क्यों भाइयो ! यह लड़का कौन है ? इसे कहां लिये जा रहे हो ?"

प्रश्न सुनकर विक्रम चौंक पड़ा। प्रश्न करने वाला गाड़ीवान था। पर उसका स्वर·····पोन्नन का स्वर-सा नहीं लगता ! क्या यह भी सम्भव हो

सकता है ?

सैनिकों में से किसी ने उत्तर दिया, "अरे भाई, तुम इस बखेड़े में क्यों पड़ते हो ? चुपचाप अपनी गाड़ी हांको।"

उत्तर में गाड़ीवान ने कहा, 'हां-हां, ठीक है ! मैं इस बखेड़े में क्यों पड़ूं ? पर मैंने सुना है कि चंपक द्वीप से कोई जासूस आया है, जो जौहरी का वेष धारण करके लोगों को छलता फिर रहा है। उसने चक्रवर्ती की बेटी कुन्दवि को भी धोखा दिया था। तभी तो हमारे सेनापति ने बड़ी दौड़-धूप करके उसे पकड़ लिया है। नगर-भर में इसी बात की चर्चा हो रही है। इसीलिए मैंने पूछा कि क्या यह वही तो नहीं है ?"

"हां, समझ लो कि वही है।" किसी सैनिक ने उत्तर दिया।

"इसे कहां लिये जा रहे हो ?" गाड़ीवान के इस प्रश्न पर भी किसी ने उत्तर दिया, "और कहां ले जायंगे ? कांची नगरी को ही ले जा रहे हैं।"

"अरे बाप रे ! क्या इतनी दूर जाना है ? पहरा देने को तुम सात-आठ ही चल रहे हो। क्या इतने काफी हैं ? रास्ते में इसकी कोई मदद करे और इसे बचाने का प्रयत्न करे तो क्या करोगे ?" गाड़ीवान ने पूछा।

बोलने वाला क्या सचमुच पोन्नन ही है ? उसे संकेत से समझा तो नहीं रहा कि मैं रास्ते में मदद करूंगा ? विक्रम आश्चर्य में पड़कर यही सोच रहा था कि ज़रा दूर पर आने वाले सैनिक-प्रधान ने डांट लगाई, "कौन है ? क्या गप्प लड़ा रहे हो ?" फिर क्या था ? वहां एकदम मौन छा गया। गाड़ीवान या सैनिकों में से कोई भी आगे कुछ न बोला।

कावेरी के किनारे आकर गाड़ी रुक गई। विक्रम और सैनिक गाड़ी से उतरे। नदी के किनारे एक नाव तैयार खड़ी थी। वहां एक आदमी हाथ में मशाल लिये खड़ा था। जब सब गाड़ी से उतर गये तो गाड़ी मोड़ते हुए गाड़ीवान बोला, "राम-राम भाइयो ! जासूस को सावधानी से चक्रवर्ती के पास पहुंचा देना। रास्ते में एक जंगली नदी है। चेताए देता हूं।"

तभी मशाल की रोशनी उसके मुख पर पड़ी। उसका मुंह देखकर विक्रम को बड़ी निराशा हुई, क्योंकि वह पोन्नन नहीं था। पर उसकी आंखों में जो चमक थी वह···चेहरा तो कहीं देखा हुआ-सा लगता है। पर कहां देखा है ?··· झट उसकी आंखों के सामने सच्ची बात आ गई। पोन्नन ही था वह ! नकली मूंछ लगाये था, इसीलिए सूरत एकदम बदल गई थी।···उसकी बातों का क्या अर्थ हो सकता है ? यही न कि रास्ते में जंगली नदी के किनारे आकर वह उसे बचा लेगा। इस विचार ने विक्रम का उत्साह काफी बढ़ाया।

नाव पर चढ़कर उन्होंने नदी पार की। आधी रात तक उनकी यात्रा जारी रही। उसके बाद सड़क के किनारे एक मंडप में ठहरकर रात बिताई, फिर बड़े

तड़के उठकर दूसरी बैलगाड़ी तय की और यात्रा आरम्भ की। परांतकपुरम को पार करते-करते दिन ढल चुका था।

सूर्यास्त के बाद दो घड़ी रात हो चुकी थी। अमावस्या की अंधेरी रात में भी सड़क पर लोगों का चलना-फिरना अधिक दिखाई दिया तो विक्रम को आश्चर्य हुआ। लोग झुंड बनाकर इधर-उधर आ-जा रहे थे। उनकी वेशभूषा से लगा कि वे मंदिर जा रहे हैं। उन्मत्त होकर गाते-बजाते जा रहे थे। कुछ लोग पीताम्बर धारण किए थे। प्रत्येक दल में एक-एक व्यक्ति हाथ में मशाल लिये चल रहा था। कुछ लोगों के हाथों में लम्बी-लम्बी तलवारें देखकर विक्रम के मन में कुछ शंका भी हुई। ये लोग कहां जा रहे हैं? हाथों में तलवार क्यों लिये जा रहे हैं?

इनको देखकर मारप्प भूपति के आदमियों ने आपस में जो कानाफूसी की उसके एक-आध शब्द विक्रम के कानों में भी पड़े। 'भद्रकाली', 'नरबलि', 'कपाल-भैरव' जैसे शब्दों ने उसे आश्चर्य और भय में डाल दिया। महेन्द्र-मंडप के द्वार पर मारप्प भूपति और महाकपाल भैरव में जो बातें हुई थीं उसे उनका स्मरण हो आया। ओ हो, आज तो अमावस्या की रात है न? ऐसा तो नहीं कि मारप्प भूपति ने उसे कांची भेजने के बहाने महाकपाल भैरव के पास बलि होने को भेज दिया हो? विक्रम यह सोच ही रहा था कि एक साथ अनेक स्वर गूंज उठे, "ओं काली! जय काली?" यह आवाज़ सुनकर उसे रोमांच हो आया। दूसरे ही क्षण जय-घोष करने वालों ने विक्रम की गाड़ी को घेर लिया। तारों के प्रकाश में विक्रम ने देखा कि उनके हाथों में लम्बी-लम्बी तलवारें चमक रही हैं। 'ओं काली, जय काली' के बुलंद नारों के बीच एक भयंकर स्वर दहाड़ उठा "कहां है बलि-वस्तु?"

गाड़ी के आगे-पीछे जो सैनिक चल रहे थे, वे भाग खड़े हुए। गाड़ी में जो पहरेदार सैनिक बैठे हुए थे वे भी गाड़ी से कूद पड़े और अपनी जान बचाने को भागे। गाड़ीवान तो अन्तर्धान ही हो गया। विक्रम के हाथ ज़ंजीरों से बंधे थे और गाड़ी के खूंटों से जकड़े थे इसलिए वह गाड़ी से कूदकर भाग नहीं सका। तभी गाड़ी के पीछे से एक आवाज़ आई, "महाराज, घबराइए नहीं। मैं हूं।" पोन्नन ने तुरन्त गाड़ी पर चढ़कर विक्रम को ज़ंजीरों से मुक्त किया। विक्रम गाड़ी से उतरा तो देखता क्या है कि दो घोड़े तैयार खड़े हैं। पोन्नन ने कहा, "महाराज, चढ़िए घोड़े पर! अब एक क्षण का भी बिलम्ब नहीं होना चाहिए।"

दूसरे ही क्षण विक्रम और पोन्नन घोड़ों पर सवार हो गए। फिर क्या था, घोड़े हवा से बातें करने लगे।

थोड़ी देर बाद विक्रम ने पूछा, "हम लोग कहां जा रहे हैं, पोन्नन?"

"मामल्लपुरम को, महाराज!"

"पोन्नन!"

"क्या है महाराज ?"

"कल सुबह तक हमें मामल्लपुरम पहुंच जाना चाहिए।"

"हां, महाराज। इसीलिए मैंने कहा कि एक क्षण का भी विलम्ब नहीं होना चाहिए।"

"कल दोपहर तक जहाज़ प्रतीक्षा में खड़ा रहेगा।"

"तब तक हम ज़रूर पहुंच जायेंगे, महाराज !"

"विक्रम ने थोड़ी देर के मौन के बाद फिर पूछा, "देवी कुन्दवि अब कहां हैं, पोन्नन ? उनसे अन्त में एक बार विदा लेकर चला होता तो अच्छा होता ! अब..."

"यह सम्भव नहीं है, महाराज !"

"क्या सम्भव नहीं है ?"

"देवी से विदा लेकर चलना।"

"हां-हां वह तो सम्भव नहीं है, यह मैं जानता हूं। अब दुबारा उरैयूर कैसे जा सकता हूं ?"

"देवी उरैयूर में नहीं हैं, महाराज !"

"देवी उरैयूर में नहीं है ? तो कहां है ?"

"मामल्लपुरम में।"

"हैं ? क्या कहा ?" विक्रम ने आश्चर्य से पूछा। कुछ दिनों के कारावास के बाद छुटकारा पाने से जो आनन्द मिल रहा था उसने, ठंडी-ठंडी रात में घोड़े पर सवार जाते हुए जो स्फूर्ति मिल रही थी उसने, और इस ख़बर ने कि कुन्दवि मामल्लपुरम में है—मिलकर विक्रम के पर लगा दिए और वह ऐसा अनुभव करने लगा, मानो आसमान में उड़ रहा हो।

"तो तुमने क्यों कहा कि उनसे मैं विदा नहीं ले सकता ?"

"इसलिए कि मैं देवी का निश्चय जानता हूं। आपको विदा देकर भेजने का उनका इरादा नहीं हैं। वे भी आपके साथ जाने को तैयार हैं।"

'अरे, सच ? इतना बड़ा समाचार तुमने मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया ?" पूछते हुए विक्रम के आनन्द की सीमा न रही।

"अब भी मुझे न कहना चाहिए था। जहाज पर चढ़ने के बाद आपको आश्चर्य में डाल देने का विचार था देवी का। पर मैंने ही उतावली दिखा दी।"

विक्रम थोड़ी देर कुछ सोचता रहा। सहसा पोन्नन ने मौन भंग करके कहा, "वह देखिए, महाराज !" विक्रम ने चौंककर देखा, सड़क के एक तरफ़ एक पेड़ के नीचे दस-बारह आदमी दल बांधे खड़े थे। वे लोग जहां खड़े थे वह स्थान पार करते हुए विक्रम कांप उठा। कुछ दूर जाने के बाद वह बोला, "उफ् ! कैसी भयंकर आकृति के लोग हैं।"

"महाराज, ये लोग आपकी प्रतीक्षा में ही यहां खड़े हुए हैं। मारप्प-भूपति ने अपने आदमियों को इन्हीं के हाथों आपको सौंप देने का आदेश दिया था। उनकी चाल का मुझे पता लग गया तो मैं आगे बढ़ गया। ये लोग यह न समझते होंगे कि आप इस प्रकार अकेले घोड़े पर इस रास्ते से गुज़रेंगे। इसलिए बहुत देर तक आपकी प्रतीक्षा में वहीं खड़े रहेंगे। फिर जाकर कपाल भैरव को ख़बर देंगे कि आप आए ही नहीं। निश्चय ही कपाल-भैरव मारप्प भूपति पर आग-बबूला होंगे और क्रोध का ज्वालामुखी फटेगा।" पोन्नन ने कहा।

"पोन्नन, चक्रवर्ती की शिरसाज्ञा और कापालिकों की बलि इन दोनों महान् विपत्तियों से आज तुमने ही मुझे बचाया है। पहले भी जंगली नदी की बाढ़ में फैलने पर तुमने मुझे उबारा था। सच पूछो तो तुमने मुझे प्राण-रक्षा नहीं, प्राण-भिक्षा प्रदान की है। इसलिए मैं तो यही कहूंगा कि चोल देश के कुलदेवता सच-मुच तुम ही हो। मैं तुम्हारे उपकारों का क्या बदला चुका पाऊंगा और कैसे? कल तो तुमसे विदा होने वाला हूं। फिर न जाने तुम्हें कब और कहां देख पाऊंगा ?"

"वाह महाराज, वाह !" पोन्नन ने व्यंग्य-भरे स्वर में कहा।

"अरे, तुम यह क्या कहते हो, पोन्नन ?"

"आप मुझसे विदा होकर कहां जाने वाले हैं ?"

"कैसी बातें कर रहे हो, तुम ?"

"क्या आप समझते हैं कि आपको फिर जहाज़ पर भेजकर मैं यहीं रुका रहूंगा ? यहां मुझे कौन-सा काम पड़ा है ? वल्लि तो पहले ही कुन्दवि देवी के साथ मामल्लपुरम में है। वह और मैं दोनों ही आपके साथ चलने वाले हैं।"

विक्रम थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला, "पोन्नन, तुम्हारी इन बातों से मैं बहुत खुश हूं। तुम और वल्लि साथ चलोगे तो समझूंगा कि सारा चोल देश ही साथ हो गया। लेकिन एक बात मेरे मन में खटक रही है। न जाने महारानी किस दशा में हैं ? उनकी खोज-खबर कौन लेगा ? तुम्हारे बारे में उन्हें कौन बतायगा ? जन्मभूमि को लौटने का मेरा मुख्य उद्देश्य तो था महारानी के दर्शन करना। उनके दर्शन किए बिना निराश लौट रहा हूं। मेरे बारे में उन्हें खबर देने के लिए ही सही, क्या यहां किसी को नहीं रहना चाहिए ?"

पोन्नन के मन में भी यह बात खटक रही थी। शिवयोगी को उसने जो वचन दिया था पूरा नहीं किया था। न जाने वे कहां और कैसे होंगे ? महारानी का उन्होंने पता भी पाया होगा या नहीं ?

पोन्नन के मन को यद्यपि सान्त्वना न मिली, फिर भी उसने मन के भाव छिपाकर कहा, "महारानी की चिन्ता छोड़िए, महाराज ! उनकी देखभाल शिव-योगी कर लेंगे। ऐसा कोई काम नहीं जो शिवयोगी न कर सकें। महाशक्ति-सम्पन्न हैं वे।"

"यह तो सच है। फिर भी इस बात से मन को ठेस पहुंचती है कि मां और शिवयोगी के दर्शन किए बिना ही यहां से जा रहा हूं।" विक्रम ने खिन्न भाव से कहा।

इसी समय पोन्नन आश्चर्य-भरे स्वर में बोल उठा, "वह देखिए, वहां क्या हो रहा है?"

अब तक वे जंगली नदी के पास के महेंद्र-मंडप के निकट आ गए थे। मंडप के पास जो दृश्य दीखा उसी ने पोन्नन को चकित कर दिया था। वहां सात-आठ सशस्त्र सैनिक खड़े थे। इनके अतिरिक्त दो आदमी हाथ में मशाल लिये खड़े थे। मंडप के द्वार पर एक पालकी रखी हुई थी।

दोनों ने घोड़ों की रास खींचकर उन्हें रोका। पोन्नन को लगा कि वहां खड़े आदमियों में से एक को उसने कहीं देखा है। कहां देखा है? हां, तिरुच्चेंकाट्टांगुडि में देखा है। संत परंज्योति का सेवक कुमारप्पन था यह। उसने भी पोन्नन को देखकर उसे पहचान लिया।

"अरे पोन्नन!" आश्चर्य से वह चीखा। फिर बोला, 'पोन्नन' मालूम है तुम्हें, उरैयूर की महारानी मिल गईं? यहीं इसी मंडप में हैं। तुम्हारी भी पूछ-ताछ कर रही थीं।"

"महारानी मिल गईं।" इन शब्दों को सुनकर विक्रम और पोन्नन को एक झटका-सा लगा, सारे शरीर में फुरहरी-सी दौड़ी और रोमांच हो आया। दोनों तुरन्त घोड़ों पर से कूद पड़े।

तभी अन्दर से आवाज़ आई, "कुमारप्पन, कौन है वहां? स्वर तो पोन्नन का-सा लगता है!" आवाज़ और किसी की नहीं, महारानी अरुल्मोलिदेवी की थी।

"मां!" चीखता हुआ विक्रम महेंद्र-मंडप की तरफ़ दौड़ा। उसके पीछे-पीछे पोन्नन था।

विक्रम एक ही छलांग में मां के निकट पहुंचकर पैरों पर जा गिरा और साष्टांग प्रणाम करके पांव पकड़ लिये। महारानी अरुल्मोलि वहीं नीचे बैठ गईं और विक्रम का सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया। उनकी आंखों से आनन्द के आंसू बह रहे थे।

विक्रम के पीछे-पीछे पोन्नन मंडप के अन्दर आया तो मां-बेटे के मिलन का दृश्य देखकर आनन्द-विभोर हो गया। जब प्रकृतिस्थ हुआ तो संयोग से उसकी दृष्टि मंडप के एक कोने में पड़ी। देखा कि कोई व्यक्ति खम्भे से बंधा पड़ा है। मशाल की मन्द रोशनी में भी पोन्नन को यह पहचानने में देर न लगी कि वह सूरत चिरपरिचित उसी बौने की है।

पोन्नन की दृष्टि बौने पर पड़ी तो बौना 'ही-ही-ही' करके हंस पड़ा।

उसकी हंसी सुनकर विक्रम ने भी सिर उठाकर देखा और हड़बड़ाकर उठ बैठा। पोन्नन को उसने आवाज़ दी, "पोन्नन !"

"हां, महाराज मामल्लपुरम से आपको रास्ता दिखाकर लाने वाला यही बौना है।" पोन्नन ने विक्रम का संशय दूर किया।

"ही-ही-ही !" बौना फिर हंस पड़ा।

महारानी अरुल्मोलि ने एक-एक करके सब पर दृष्टि दौड़ाई। उनकी समझ में न आया कि किससे क्या पूछें। आखिर पोन्नन को लक्ष्य करके बोलीं, "पोन्नन, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है। ऐसा लगता है कि आंखों में पट्टी बांधकर किसी घने जंगल में छोड़ दी गई हूं। यह भी नहीं जानती कि इस पर्वतीय गुफ़ा में कितने दिन रही। अन्त में जब झरने में कूदकर प्राण देने की चेष्टा कर रही थी तो शिवयोगी ने आकर मुझे रोक दिया और कहा, 'तुम्हारा पुत्र लौट आया है। तुम अवश्य ही उससे मिलोगी।' पोन्नन, मैंने सुना है कि तुमने जंगली नदी की बाढ़ से विक्रम को बचाया था।"

पोन्नन के कुछ उत्तर देने से पहले विक्रम बोल उठा, "सिर्फ बाढ़ से ही नहीं, इसने मुझे चकवर्ती के मृत्यु-दण्ड और काली माता की बलि होने से भी बचाया है। सच पूछो तो न जाने कितनी विपत्तियों से इसने मुझे बचाया है।"

"काली माता की बलि……?" कहते-कहते अरुल्मोलि की घिग्घी बंध गई और वह कांपने लगी।

बौना फिर ही-ही-ही करके भयंकर हंसी-हंसा और बोला, "बलि ? हां बलि ! आज रात को एक बलि चढ़ाई जायगी ! काली माता की प्यास बुझाई जायगी।"

सब लोग घूरकर उसकी तरफ देखने लगे।

बौना बोला, "आज आधी रात को शिवयोगी बलिवेदी पर चढ़ाये जायंगे। महाभद्र काली का राज्य आरम्भ होगा। फिर…आ हा हा…फिर…कपालों का अकाल नहीं रहेगा।"

विक्रम उछलकर खड़ा हो गया और बोला, "पोन्नन, यह क्या बक रहा है। शिवयोगी का…?

"ही-ही-ही! बकता नहीं हूं, सच कह रहा हूं। उस कपटी शिवयोगी के हाथ-पैर बांधकर इस समय तक बलिवेदी पर चढ़ा दिया गया होगा और आधी रात होते-न-होते तलवार उसके गले से लग जायगी !" बौने ने कहा।

अरुल्मोलिदेवी ने विक्रम को देखकर कहा, "बेटा, यह पहले से ही यही रट लगा रहा है। मेरा हृदय वेदना और भय से दहल उठता है। पांच-छह दिन पहले जब मैं गुफ़ा से किसी तरह बच निकली और झरने में कूदने जा रही थी तब शिवयोगी ने ही आकर मुझे रोका था और कहा था कि जल्दी ही तुम्हें छुड़ाकर

ले जाने के लिए आदमी आयंगे। उनके कहे अनुसार ही हुआ। ये लोग आकर मुझे छुड़ा लाये। रास्ते में यह बौना छिपा खड़ा था सो इसे भी पकड़ लाये। जबसे यहां आया है तब से यही रट लगाए हुए है कि आज रात शिवयोगी को कापालिक बलिवेदी पर चढ़ाने वाले हैं। हाय, वे कितने महान् पुरुष हैं! हमारी कितनी सहायता की है···क्या उनकी ऐसी भयंकर और क्रूर मृत्यु होगी?" दुःख से महारानी अरुल्मोलि फूटकर रो पड़ीं।

विक्रम ने पोन्नन की ओर मुड़कर पूछा, "पोन्नन, क्या कहते हो तुम? अगर यह महापाप न रोका तो हमारे ज़िन्दा रहने से क्या लाभ!"

पोन्नन ने रानी अरुल्मोलि को देखकर कहा, "महारानी, इन पर बहुत विपत्ति है। देश-निकाले का दण्ड पाए हुए लोग आएं तो आप जानती हैं कि उनका क्या दण्ड-विधान है? इनके यहां आने की बात मारप्प भूपति को मालूम हो गई है और उन्होंने चक्रवर्ती को इसकी खबर भी भेज दी है। इसलिए इन्हें चाहिए कि कल सुबह तक मामल्लपुरम पहुंचकर जहाज़ पर चढ़ जायं। नहीं तो इनका बचना मुश्किल है। अब ये अगर शिवयोगी को बचाने जाकर किसी के हाथ फंस जायंगे तो इनकी जान पर बन आयगी। अतः आप ही निर्णय करें कि इन्हें करना क्या है?"

महारानी अरुल्मोलि बड़े पशोपेश में पड़ गईं। वे निर्णय न कर पाईं कि ऐसी परिस्थिति में क्या कहें। तब तक विक्रम ने मां को देखकर पूछा, "मां, पार्थिव महाराज की वीर पत्नी हो तुम। बताओ, मुझे इस हालत में क्या करना चाहिए। हम पर इतने उपकार करने वाले महात्मा के ऊपर जब एक घोर विपत्ति आई हो तब मैं अपनी जान की खैर मनाकर यहां से भाग जाऊं? अगर मेरे पिता जीवित होते तो क्या वे यह चाहते कि मैं ऐसा ओछा काम करूं?"

महारानी अरुल्मोलि ने दोनों को बारी-बारी से देखा, फिर निश्चय-भरे स्वर में बोलीं, "पोन्नन, शायद तुम समझोगे कि मेरा हृदय पत्थर का है और वात्सल्य भाव मुझमें लेश-मात्र भी नहीं है। लेकिन मैं अपने मन की बात बताती हूं। मैं अपने कानों से यह नहीं सुनना चाहती कि मेरा पुत्र अपने ऊपर अनेक उपकार करने वाले व्यक्ति को विपत्ति में फंसा देखकर भी अपने प्राणों की खैर मनाता हुआ भाग खड़ा हुआ।"

मां के मुंह से ऐसे वचन सुनकर विक्रम ने आदर से सिर नवाया और आश्चर्य-भरे स्वर में बोला, "मां, तुम मेरी वीर माता हो और पार्थिव महाराज की वीर पत्नी हो!" पोन्नन की ओर देखकर कहा, "चलो पोन्नन, अब क्या सोच रहे हो?"

"जायं कहां? यहां किसे मालूम है कि बलि कहां पर चढ़ाई जाने वाली है?" पोन्नन ने पूछा।

"ही-ही-ही! मुझे खोल दो तो मैं रास्ता दिखाऊं।" बौने ने कहा। बौने के बन्धन खोल दिए गए। उसके हाथ में एक मशाल दी गई। विक्रम और पोन्नन

दोनों घोड़ों पर सवार हुए। बौना हाथ में मशाल लिये पश्चिम की ओर के जंगली मार्ग पर तेज़ कदम बढ़ाता आगे-आगे चला और विक्रम और पोन्नन उसके पीछे-पीछे।

पैंतीस

नदी के किनारे-किनारे दो घड़ी का रास्ता तय करने के बाद बौना दक्खिन की ओर मुड़ा और एक घने जंगल में घुसा। जंगल पार करते ही एक मेंड़-सी दिखाई दी। उस पर चढ़े तो मालूम हुआ कि वह एक झील का कगार है। "वह देखो!" बौने ने जिस ओर संकेत किया उस ओर विक्रम और पोन्नन ने दृष्टि डाली। वहां सैकड़ों की संख्या में मशालें जल रही थीं। उनकी रोशनी में एक पर्वत-माला दिखाई दी। उसकी तराई में बहुत-से छोटे, पर घने पेड़ उगे थे। उस वन-प्रदेश में जो दो पैर वाले प्राणी घूम रहे थे, वे थे तो मनुष्य ही; पर लगता था मानो भूत, प्रेत, पिशाच आदि घूम रहे हों। वहां से ढोल, मंजीरा, तुरही, डमरू-जैसे बाजों की आवाज़ आ रही थी और उस प्रदेश की भयंकरता को और भी बढ़ा रही थी।

थोड़ी देर का रास्ता और तय करके वे लोग वन-प्रदेश के पास पहुंच गए। जब घोड़े डर के मारे आगे बढ़ने से इन्कार करने लगे तब विक्रम और पोन्नन वहीं उतर पड़े और घोड़ों को पेड़ से बांधकर उस वन-प्रदेश में प्रविष्ट हुए।

कुछ दूर जाने पर खुला मैदान दिखाई दिया। वहां पेड़-पौधे कुछ न थे। मैदान की दाहिनी तरफ़ एक चट्टान खड़ी थी, जिसमें काली माता की विशाल भयावह आकृति बनी थी। मूर्ति पर कई चमकीले रंग पुते थे। माता की तरेरती आंखें ऐसी सजीव लगती थीं कि देखने पर कोई भी कांप उठे। माता की इस मूर्ति के पास कुछ लोग झुंड बनाये खड़े थे। उनके बीच कपाल रुद्र भैरव खड़े थे जो कद में सबसे ऊंचे थे। उनके सिर के बाल भूरे थे। माथे पर चन्दन और सिन्दूर था और कण्ठ में कपाल माला थी। उनके पीछे खड़ा होकर एक आदमी डमरू बजा रहा था। कपाल भैरव की आंखें बन्द थीं। वे कुछ गुनगुना रहे थे और डमरू की ताल के साथ धीरे-धीरे झूम भी रहे थे।

महाकाल भैरव जहां खड़े थे उसी के सामने थोड़ी दूर पर एक चट्टान थी। स्वयं प्रकृति ने उसे बलिवेदी का रूप दे रखा था। उस बलिवेदी पर रस्से से बंधे शिवयोगी पड़े थे। उनकी आंखें खुली थीं और वे चारों तरफ़ दृष्टि डालकर कुछ देख रहे थे।

बलि वेदी के निकट एक राक्षसी आकृति वाला पुरुष हाथ में बड़ी-सी नंगी तलवार लिये खड़ा था। बस, इसी बात की देर थी कि महाकाल भैरव आंखें खोल कर आज्ञा-भर दे दें। तलवार तुरन्त ही शिवयोगी के गले लगने को प्रस्तुत थी।

विक्रम ने एक ही नज़र में सब देख लिया। फिर क्या था, हाथ की तलवार हवा में घुमाता हुआ एक ही छलांग में वह बलिवेदी के निकट पहुंच गया। राक्षस के हाथ में जो तलवार थी उस पर अपनी तलवार इतनी फुरती और तेज़ी से चलाई कि वह उसके हाथ से छूटकर दूर जा गिरी। तुरन्त विक्रम अंग-रक्षक के रूप में शिवयोगी की बगल में जा खड़ा हुआ और अपने पीछे आये हुए पोन्नन से बोला, "पोन्नन, देख क्या रहे हो? जल्दी से इनका बंधन खोलो।"

यह सब पलक मारते हो गया। पास में खड़े लोगों के "हा! हा!" करके चिल्लाने पर कपाल रुद्र भैरव ने आंखें खोलकर देखा और सारी स्थिति समझी। गम्भीर चाल से चलते हुए वे बलि-वेदी के निकट आए और घूरकर विक्रम को देखने लगे।

"हा! हा! हा!" उनका अट्हास पर्वतों से घिरे उस वन-प्रदेश में टकराकर गूंज उठा। सुनकर भय से लोगों के रोंगटे खड़े हो गए।

चारों ओर से लोग दौड़कर बलिवेदी को घेरकर खड़े हो गए। उन्हें देखकर महाकपाल भैरव ने अपना अकेला हाथ उठाकर भयंकर हुंकार भरा। सब लोग झट वहां से हट गए और थोड़ी दूर पर जाकर खड़े हो गए। जो राक्षस तलवार लिये खड़ा था वह भी डरकर कुछ दूर पर जाकर खड़ा हो गया। पोन्नन भी जहां-का-तहां जड़वत् खड़ा रहा।

महाकपाल भैरव ने विक्रम पर आंखें गड़ाकर पूछा, "बेटा, तू पार्थिव चोल का बेटा विक्रम है न? तुझे खोजते हुए एक बार मैं मामल्लपुरम भी आया था, पर उस मूढ़ मारप्प भूपति ने बीच में पड़कर सारा काम बिगाड़ दिया। लेकिन मैं न जानता था कि जो भी हो, आज रात को तू यहां अवश्य आयगा। मेरी यह आशा व्यर्थ ही गई।"

विक्रम भी अब तक मंत्रमुग्ध-सा खड़ा था, बोला, "आप कौन हैं? मेरी राह देखने की आपको क्या ज़रूरत पड़ी?"

"ज़रूरत इसलिए हुई कि आज रात को दक्षिण में काली माता का साम्राज्य स्थापित होगा। माता की आज्ञा है कि उसका युवराज तुझे बनाया जाय!" कपाल भैरव ने कहा।

"आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आईं। आप कहते हैं कि मुझे युवराज का पद देने वाले हैं। अगर यह सच है तो मैं जो काम करने जा रहा हूं उसमे विघ्न न डालिए। ये महान् शिवयोगी, जो इस बलिवेदी पर बंधे खड़े हैं हमारे कुल के परम मित्र हैं। मेरे और मेरी माता के ऊपर इन्होंने बहुत-से उपकार किए हैं। इन्हें छुड़ाना मेरा कर्त्तव्य है। जब तक मेरे हाथ में तलवार और शरीर में प्राण है, मैं इन्हें बलि न होने दूंगा।" इतना कहकर विक्रम शिवयोगी के निकट आकर उनके बन्धन खोलने लगा।

"ठहर जा !" कपाल भैरव के मुख से गर्जना हुई। फिर ऊंचे स्वर में बोले, "बेटा विक्रम, अगर तू यह जान पायगा कि यह कपटी संन्यासी, यह ढोंगी शिव-योगी, यह नकली जटाजूटधारी असल में कौन है तो तू यह बातें न करेगा और इसे बचाने के तू ये प्रयत्न भी न करेगा। ज़रा तू इस कपटी संन्यासी से पूछ तो देख। यह बताएगा यह कौन है ?"

विक्रम ने शिवयोगी की ओर देखा। उनके मुख पर मुस्कुराहट फैल रही थी। इसी समय कहीं से बिजली-सी कड़कती हुई एक आवाज़ आई, "विक्रम, पहले यह पूछ कि कपाल-मालाधारी, कपटी वेशधारी स्वयं कौन है ? साहस हो तो पहले वह अपना परिचय दे।"

यह प्रश्न करते हुए चट्टान की आड़ में से जो व्यक्ति बाहर आया, सबकी दृष्टि उस पर पड़ी। मशाल की रोशनी में उसका चेहरा देखते ही विस्मय से एक साथ अनेक स्वर फूट पड़े।

रुद्राक्ष धारण किये, मुख पर ज्ञान की ज्योति और तेज लिये एक महात्मा को देखा तो विक्रम के मन में भी असीम श्रद्धा की भावना जागी। वह महात्मा और कोई नहीं, पल्लव-साम्राज्य के भूतपूर्व सेनापति और वातापि पर विजय-पताका फहराने वाले महारथी शिरुत्तोण्डर यानी परंज्योति थे।

चट्टान के पीछे से जिस समय शिरुत्तोण्डर बाहर आये, उस समय और भी अनेक घटनाएं घटीं। चट्टान के पीछे से, पेड़ों की आड़ से, न जाने कहां-कहां से अनेक अस्त्र-शस्त्रधारी सैनिक आ पहुंचे। ऐसा लगा मानो वहां कोई इन्द्रजाल हो रहा हो। दूसरे ही क्षण इन्द्रजाल से भी बड़ा एक चमत्कार वहां दीखा। बलिवेदी पर बंधे शिवयोगी न जाने कैसे सहसा बन्धनमुक्त होकर बलिवेदी से नीचे कूद पड़े।

इतने में शिरुत्तोण्डर महाकपाल भैरव के पास पहुंच गये थे। उन्हें देखकर महाकपाल भैरव के मुख पर ऐसा भय छा गया जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। ज्यों-ज्यों शिरुत्तोण्डर उनके पास पहुंचते गए, त्यों-त्यों उनके भय की मात्रा बढ़ती दिखाई दी। उनका शरीर कांप उठा। शिरुत्तोण्डर उनके एकदम पास जाकर उनके सामने खड़े हो गये और उन पर अपनी दृष्टि गड़ाकर बोले, "ऐ कपट वेशधारी कापालिक ! यहां माता महाकाली के सामने बता कि तू कौन है ?" कपाल भैरव उनकी पैनी दृष्टि न सह सके और दो पग पीछे हट गये ! फिर तो उनके पैरों में शक्ति ही न रही और लड़खड़ाकर वहीं गिर पड़े।

तब शिरुत्तोण्डर बलिवेदी पर चढ़कर ऊंचे स्वर में बोले, "भाइयो ! काली माता के भक्तो ! निकट आओ। महाकपाल भैरव के छद्म-नाम से इतने दिन तुम लोगों को जो व्यक्ति छलता रहा, उस एक हाथ वाले की सच्ची कथा सुनना चाहते हो तो और निकट आओ।"

जब शिरुत्तोण्डर का देखकर कपाल भैरव भय से लड़खड़ाकर भूमि पर गिर पड़े तो लोगों के मन में उनके प्रति अविश्वास और शिरुत्तोण्डर के प्रति विश्वास छाने लगा। वे शिरुत्तोण्डर के निकट आकर उन्हें घेरकर खड़े हो गए। शिरुत्तोण्डर का गम्भीर स्वर उस वन-प्रदेश में गूंज उठा।

उन्होंने कहा :

"भाइयो, सुनो। हमें जन्म देने वाली यह तमिष् भूमि बड़ी पुण्य-भूमि है। कितने ही महापुरुष यहां अवतरित हुए हैं और परमात्मा की महिमा तथा उसे पाने का मार्ग बता गए हैं। तिरुमूल महर्षि ने कहा, 'अम्बुम् शिवमुम इरण्डेन्बार् अरिविलार्' अर्थात् अज्ञानी कहते हैं कि प्रेम और शिव दोनों अलग-अलग तत्त्व हैं। वही वैष्णव सन्त भी कहते हैं,

'अन्वे तकलिया आर्वमे नेय्याह
इनबुरुह चिन्तै इडुतिरिया-नन्वुरुहि
ज्ञानच्चुडर् विलक्केट्रिनेन्'

अर्थात् 'मैंने प्रेम को दीपक, लालसा को स्नेह और चित्त को बत्ती बनाया, इस प्रकार एकाग्र मन से ज्ञान की ज्योति जलाई।' जो देश ऐसे महान् सनातन धर्मों का आगार था, उसमें अनाचार्य-सिद्धान्तों को—नरबलि, मांस-भक्षण-जैसी भयंकर प्रथाओं को—इधर कुछ काल से चंद लोग फैला रहे हैं। प्रेम-स्वरूप भगवान् शिवजी और करुणामयी पराशक्ति नर-बलि चाहते होंगे ? इस बात पर विश्वास करना भी कितनी बड़ी मूर्खता है ! हमारे पुराणों में कहा गया है कि शिव हाथ में खोपड़ी लिये हैं और पराशक्ति कपाल-माला धारण किये हैं। हमारे विद्वानों ने बहुत ज़ोर देकर कहा है कि ये सब बातें तत्त्वार्थों से भरी हैं। उनका साधारण अर्थ लगाकर लोगों का दिमाग नहीं बिगाड़ना चाहिए। ऐसी दशा में इस पुण्य-भूमि में नर-बलि की भयंकर प्रथा के फैलने का क्या कारण है ? इस कुप्रचार का मूल स्रोत कहां है ? इसका पता लगाने के काम में मैं और मेरे मित्र शिवयोगी, जो अभी बलिवेदी पर बंधे पड़े थे, काफी अरसे से लगे हुए हैं। अन्त में मेरे मित्र इस काम में सफल हुए और उन्होंने सत्य का पता लगा लिया···"

"वे कौन हैं ?" भीड़ में से किसी ने पूछा।

"वे कहां हैं ?" भीड़ में से कइयों ने पूछा।

बात यह हुई कि सहसा शिरुत्तोण्डर के यहां प्रकट होने पर जो खलबली मची, उसमें सबकी आंख बचाकर शिवयोगी वहां से साफ खिसक गए थे। शिरुत्तोण्डर ने बात आगे बढ़ाई।

"उरैयूर में दो दिनों के बाद दरबार लगने वाला है। वहां आओ तो इस बात का पता चल जायगा कि वे महान् शिवयोगी कौन हैं। अभी तो इतना भर जान लो कि भयत्रस्त होकर भूमि पर पड़ा यह कपाल भैरव कौन है। क्या तुम

लोगों को याद है कि हमारे सुविख्यात महेन्द्र चक्रवर्ती के काल में बीस वर्ष पहले वातापि का नरेश पुलिकेशी तमिष् प्रदेश पर चढ़ आया था ?"

प्रश्न करके शिरुत्तोण्डर थोड़ा रुके तो कई कंठों ने एक साथ उत्तर दिया, "हां, अच्छी तरह से याद है।"

"उस राक्षस पुलिकेशी और उसकी सेना ने विश्वासघात करके इस तमिष् प्रदेश के गांवों और नगरों में जो अत्याचार किये थे, उन्हें तुम लोग भूले न होगे। महेन्द्र चक्रवर्ती की मृत्यु के बाद धर्मराजाधिराज नरसिंह पल्लव चक्रवर्ती ने और मैंने उससे बदला लेने की ठानी और बड़ी सेना लेकर वातापि पर आक्रमण किया यह बात भी तुम लोग जानते ही होगे। वातापि नगर के निकट ही घोर युद्ध हुआ। हमारी तमिष् सेना के वीरों ने पुलिकेशी की सेनाओं को तहस-नहस कर डाला। चक्रवर्ती का आदेश था कि शत्रु-सेना का कोई भी सैनिक रण-क्षेत्र से जीवित न लौटने पाये। लेकिन उनकी आज्ञा के विरुद्ध मैंने एक व्यक्ति को—हां, केवल एक ही व्यक्ति को—जाने दिया। क्योंकि वह युद्ध में एक हाथ खो चुका था और मेरी शरण आकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा था। उसे मारने का मेरा मन न हुआ और मैंने उसे भाग जाने दिया। यह वही एक हाथ वाला कापालिक है जो वहां पड़ा है। नाम है नीलकेशी। पुलिकेशी का छोटा भाई है। पर अत्याचार और क्रूरता में तो उसका बड़ा भाई है।

"जब मैंने चक्रवर्ती से कहा कि उसे क्षमा करके मैंने जाने दिया है तो उन्होंने कहा था कि तुमने बड़ी गलती की। इससे कोई उल्टा-सीधा काम न हो जाय। उनका यह कथन सत्य निकला। यह नीलकेशी कापालिक के वेष में हमारी पुण्य तमिष् भूमि में आकर रहने लगा। एक बार देश में ऐसा भारी अकाल पड़ा कि उससे पीड़ित होकर लोग अपनी बुद्धि ही खो बैठे थे। उस समय इसने अपने कापालिक मत और नर-बलि के सिद्धान्त को फैलाना शुरू किया। जानते हो किसलिए ? जो विजय युद्ध में प्राप्त न कर सका, उसे षड्यंत्र से प्राप्त करने के विचार से इसने यह ढोंग रचा था। समुद्र-पार के देशों में भी जिन मामल्ल चक्रवर्ती की सुकीर्ति फैली है, उनके विरुद्ध तुम लोगों को उभारकर अपना काम पूरा करना चाहता था। इसी उद्देश्य से इसने कोल्लिमलै की गिरि गुहाओं में हज़ारों की संख्या में तलवारें और कुल्हाड़ियां जमा कर रखी थीं···"

"हां !" कपाल भैरव के मुंह से क्रोध का स्वर फूटा।

"वे हथियार चक्रवर्ती की आज्ञा से आज वहां से हटा दिए गए हैं। इसका यह विचार था कि अपने दुष्कर्मों के साधने में चोल-राजकुमार विक्रम को भी मिला लिया जाय। इसलिए इसने पार्थिव महाराज की वीर पत्नी अरुल्मोलि देवी को उठा ले जाकर बन्दी बना लिया था।"

उसी समय महाकपाल भैरव उठ खड़े हुए और बोले, "यह सरासर झूठ है,

मनगढ़न्त है, इन सबका साक्षी कहां है ?"

"साक्षी यहां है !" एक आवाज आई। दूसरे ही क्षण एक पेड़ की आड़ से मारप्प भूपति बाहर आया।

"मैं साक्षी हूं। कपाल भैरव नामधारी यह नीलकेशी सचमुच कापालिक नहीं है। कपटी वेशधारी है। इसने महाराजाधिराज नरसिंह पल्लव चक्रवर्ती के विरुद्ध षड्यंत्र रचा था। उस षड्यंत्र में मुझे भी सम्मिलित होने को कहा। मैंने साफ इन्कार कर दिया। उस पर इसने देशनिकाले का दंड पाए हुए युवराज को अपने षड्यंत्र में मिलाना चाहा। चक्रवर्ती की आज्ञा से मैंने युवराज को कांची भेजा था। पर इसने उसे रास्ते में ही रोककर यहां पकड़ लाने का प्रबन्ध कर लिया था..."

इस पर शिरुत्तोण्डर ने उसे बीच में ही टोककर कहा, "बस-बस, मारप्पन ! बन्द करो अपनी गवाही !"

मारप्प भूपति के मन में न जाने क्या था। सम्भव है कि उसकी उपेक्षा करके महा कपालभैरव ने विक्रम को युवराज पद देने की बात कही तो वह क्रोधाग्नि हो गया हो या उसके मन में यह विचार उठा हो कि कहीं चक्रवर्ती के विरुद्ध षड्यंत्र का अभियोग उसी पर न लगे।

उसका उद्देश्य चाहे जो भी रहा हो, उसने उस समय एक अप्रत्याशित कार्य कर डाला। हाथ में नंगी तलवार लिये वह कपालभैरव के निकट गया और "चक्रवर्ती के विरुद्ध षड्यंत्र करने वाला यह पापी साम्राज्यद्रोही आज काली माता की बलि हो !" कहते हुए किसी के रोकने के पहले ही अपनी तलवार चला दी। कपालभैरव का सिर धड़ से अलग जा गिरा। यह क्रूर दृश्य देखकर सब भौंचक्के-से खड़े रह गए। इतने में ही एक घटना और घटी। न जाने कहां से हाथ में तलवार लिये बौना चित्रगुप्त बलिवेदी पर आ पहुंचा और उसकी चलाई तलवार मारप्प भूपति का गला चूम गई। बौने को तुरंत पल्लव सैनिकों ने पकड़ लिया। वह ही-ही हंस पड़ा।

इन घोर कृत्यों को देखकर विक्रम ने घृणा से मुंह फेर लिया। रणक्षेत्र में आमने-सामने खड़े होकर एक-दूसरे पर तलवार चलाकर मौत के घाट उतारना उसके लिए सामान्य बात थी। पर ऐसी क्रूर हत्या तो उससे नहीं सही गई। उसने पास खड़े पोन्नन से कहा, "चलो पोन्नन, हम लोग यहां से चले चलें।" जब वह जाने को उद्यत होकर मुड़ा तो देखा कि उसे और पोन्नन को घेरे पल्लव सैनिक खड़े हैं।

सैनिकों के प्रधान ने एक आदेश-पत्र विक्रम के आगे बढ़ा दिया। उसमें नरसिंह चक्रवर्ती की मुहर लगी थी और लिखा था कि उरैयूर से कांची जाने वाले चोल-राजकुमार को वापस उरैयूर ही ले जाया जाय। उरैयूर में ही चक्रवर्ती

के दरबार में उसका न्याय-विचार होगा।

शिरुत्तोण्डर ने भी आदेश-पत्र लेकर पढ़ा और विक्रम को लक्ष्य करके कहा, "विक्रम, इस पत्र के आदेशानुसार तुम उरैयूर लौट जाओ, मैं भी तुम्हारी मां को लेकर वहीं आ रहा हूं।"

इसके थोड़ी ही देर बाद विक्रम और पोन्नन पल्लव-सैनिकों की रक्षा में मृत्यु मंडराती उस रुद्रभूमि से रवाना हो गए।

छत्तीस

अमावस्या के दूसरे दिन सवेरे से ही मामल्लपुरम के महल में कुन्दवि का एक-एक क्षण एक-एक युग के समान बीत रहा था। कारण यही था कि वह विक्रम और पोन्नन की बड़ी उत्कंठा से राह देख रही थी।

कुन्दवि ने यह सोच रखा था कि विक्रम और पोन्नन के आने पर क्या करना चाहिए। उसने अपना पहले का विचार बदल दिया था कि विक्रम के साथ जहाज पर चली जाय। क्योंकि ऐसा करने से सम्भव था कि लोगों को संदेह हो और विक्रम फिर से पकड़ा जाय। इसके अलावा अपने पिता से कुछ कहे-सुने बिना भाग जाने का भी उसका मन नहीं हुआ। नरसिंह चक्रवर्ती की कीर्ति में अपने किसी आचरण से वह क्यों कोई बट्टा लगने दे! इससे बेहतर यह होगा कि विक्रम पहले जहाज पर चढ़कर चला जाय और इसके बाद सारी बातें वह पिता को सुनाकर क्षमा मांग ले और कहे कि मैंने विक्रम को पति के रूप में वर लिया है। यह निर्णय करके कुन्दवि विक्रम के आने की राह देखने लगी। सूरज ज्यों-ज्यों आकाश में चढ़ता गया त्यों-त्यों कुन्दवि की उतावली भी बढ़ी। आखिर दोपहर के करीब दूर घोड़ों की टाप सुनाई दी। वह चौकन्नी होकर सुनने लगी। थोड़ी देर बाद घोड़े महल के द्वार पर आ खड़े हुए। कुन्दवि की आंखें द्वार पर बिछ गईं।

अरे यह क्या? अन्दर आने वाले यह कौन हैं? चक्रवर्ती हैं न ?···कुन्दवि का सिर चकरा गया। किसी तरह उसने अपने को संभाला। फिर लड़खड़ाते स्वर में बोली, "पिताजी, आइए। इतने दिन कहां रहे?"

चक्रवर्ती ने उसके पास आकर बड़े स्नेह से उसे हृदय से लगाया और माथा चूमा। इतने में चौंककर बोले, "क्यों बेटी, तुम्हारा शरीर इस तरह क्यों कांप रहा है?"

"कुछ नहीं पिताजी, आप अचानक आए न, इसीलिए···" कहते-कहते कुन्दवि रुक गई।

"बस इतना ही? बैठो, बेटी! तुम उरैयूर से कब आईं? इतनी जल्दी क्यों

लौट आई ?" प्रश्न पूछते हुए चक्रवर्ती एक आसन पर बैठ गए।

कुन्दवि का हृदय घबरा रहा था और समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। पर उसकी घबराहट पर चक्रवर्ती ने जैसे ध्यान ही नहीं दिया, बोले, "बेटी, आज शाम को मैं उरैयूर जा रहा हूं। क्या तुम भी साथ चलोगी ? या उरैयूर से मन ऊब गया है ?"

"क्या कहा ? उरैयूर जा रहे हैं ? किसलिए पिताजी ?" कुन्दवि ने उत्सुक होकर पूछा।

"कई बड़े-बड़े काम इधर हुए हैं, बेटी। अरुल्मोलि देवी मिल गई हैं।" चक्रवर्ती ने कहा।

"सच ?" कुन्दवि लगभग चीख उठी।

"हां, अरुल्मोलि का पता लगाकर उन्हें छुड़ा लाने वाले कौन हैं, जानती हो ? बार-बार तुम जिन शिवयोगी का नाम लेती थीं, वे ही।"

"क्या···क्या ? देवी कहां थीं ? किसने उन्हें ले जाकर छिपा रखा था ? वे कपटी शिवयोगी···शायद उन्होंने तो नहीं ?"

चक्रवर्ती के होंठों पर मुस्कराहट खेल गई। बोले, "अब भी संदेह दूर नहीं हुआ, बेटी ? उन महान् शिवयोगी ने महारानी अरुल्मोलि को छिपाकर नहीं रखा था। रानी को उठाकर ले जाने वाला तो जैसा मैं पहले ही कह चुका हूं, उस कापालिक दल का बड़ा पुजारी महा कपालभैरव था।"

"हाय !"

"शिवयोगी के महारानी अरुल्मोलि को बचाकर छुड़ा लाने का फल यह हुआ कि उनकी जान ही जोखिम में पड़ गई। कल रात को कपालभैरव शिवयोगी को काली माता की बलि चढ़ाने वाला था। उनके हाथ-पैर बांधकर बलिवेदी पर लाकर लिटा दिया गया था। तलवार उनका गला चूमने ही वाली थी कि उन्हें किसी ने आकर बचा लिया। वह कौन था, जानती हो ?"

"कौन था, पिताजी ?"

"चम्पक द्वीप से आया था न, जौहरी देवसेन ! उसने और नाविक पोन्नन ने समय पर आकर उनकी प्राण-रक्षा की।"

कुन्दवि ने कुछ कहने के विचार से मुंह खोला। पर उसके मुंह से कोई शब्द न निकला। उसके सुन्दर लाल-लाल होंठ, अनार की कली-जैसे खिले, सो खिले ही रह गए।

"एक और विचित्र बात सुनो, बेटी। जौहरी देवसेन असल में कौन था, मालूम है ? आखिर वह भी एक कपट वेशधारी ही निकला। देश-निकाले का दंड पाया हुआ चोल-राजकुमार विक्रम ही अपनी माता और मातृभूमि के दर्शन करने उस वेष में आया था, देखा बेटी उसका साहस ?"

कुन्दवि ने भर्राये स्वर में पूछा, "वे सब अब कहां हैं, पिताजी ?"

"किन्हें पूछ रही हो, बेटी ? विक्रम और पोन्नन की ही बात है न ? मैंने उन्हें उरैयूर ले जाने को कहा है। और यह भी कहा है कि उनका न्याय करने मैं स्वयं आऊंगा। इसीलिए मैं उरैयूर जा रहा हूं। क्या तुम भी साथ चलोगी ?" चक्रवर्ती ने पूछा।

इतनी देर से कुदवि ने जिस दुःख को अपने हृदय में दबा रखा था, वह फूट पड़ा। पिता की गोद में सिर छिपाकर वह फफक-फफककर रो उठी।

अब तक चक्रवर्ती के होठों पर जो मुस्कुराहट खेल रही थी, वह गायब हो गई और उनकी आंखों की कोर में आंसुओं की बूंदें मोती-जैसी चमकने लगीं। कुन्दवि की पीठ और सिर पर प्रेम से हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "बेटी, तुम्हें कौन-सा दुःख है ? अपने मन में कौन-सी वेदना छिपाए हुए हो ? मुझसे यह दुराव क्यों ? दिल में जो कुछ भी हो, मुझे बताओ, बेटी !"

कुन्दवि ने धीरे-धीरे सब बातें बताईं। कांची नगर के राजमार्ग पर जंजीरों से जकड़े विक्रम को जो देखा था, तबसे लेकर अब जहाज़ पर बिठाकर उसे भेज देने का जो प्रबन्ध किया था, वहां तक की सारी बातें बिना कुछ भी छिपाए उन्हें बताईं। अन्त में यह भी कहा, "पिताजी, उस चोल-राजकुमार को मैंने पति के रूप में वर लिया है यह निश्चय मानिए कि मैं अपने मन में किसी दूसरे को स्थान नहीं दे सकती।" कहते-कहते वह सुबक पड़ी।

चक्रवर्ती ने स्नेह-सने स्वर में कहा, "बेटी संसार में प्रेम ही शाश्वत है और वस्तुएं अनित्य हैं। जब दो युवा-हृदय प्रेम-सूत्र में बधकर एक होते हैं तब प्रेममय भगवान् का सान्निध्य होता है। इस प्रकार प्रेम में बंधने वाले हृदयों के बीच में बाधा खड़ी करने का किसी को अधिकार नहीं है। मां-बाप तक को नहीं। तुम चोल देश के राजकुमार से विवाह करना चाहो तो मैं कदापि रोड़ा न अटकाऊंगा। लेकिन बेटी, हमारा पल्लव-वंश इस बात के लिए विख्यात है कि नीति-नियम के पालन में वह ज़रा भी भूल-चूक नहीं करता। पल्लव साम्राज्य में राज-कुल वालों के लिए जो नीति है वही दीन-हीन ग़रीब किसानों के लिए भी बरती जाती है। इसलिए चोल-राजकुमार के विषय में भी वही नीति अपनाई जाएगी। उसके अपराध के योग्य दंड उसे दिया जाएगा। उसके बाद भी तुम उस राजकुमार से विवाह करना चाहो तो मैं कोई बाधा न डालूंगा ?"

यह सुनकर कुन्दवि ने पूछा, "पिताजी, देश निकाला-प्राप्त व्यक्ति लौट आया तो उसके लिए क्या दण्ड-विधान है ?"

"साधारणतया मृत्यु-दण्ड ही दिया जाता है। पर वह राजकुमार अपने कृत्यों के लिए पूरा उत्तरदायी नहीं है। उसके पीछे कपटी शिवयोगी के उपदेश भी हैं। इसके अलावा एक और बात भी यहां विचारणीय है। चम्पक द्वीप के जौहरी को

घोड़ा देकर चोल देश भेजने वाला कौन था, सो तुम्हें याद है, बेटी ?" मंद-मंद मुस्कराते हुए चक्रवर्ती ने पूछा।

"पिताजी !" विस्मय और आनन्द से कुन्दवि चीख उठी। उसे स्मरण हो आया की जासूस के वेष में चक्रवर्ती ने ही तो विक्रम को घोड़ा दिया था और उसके बाद ही विक्रम चोल देश को रवाना हुआ था। उत्कण्ठा-भरे स्वर में उसने पूछा, "तो पिताजी, दंड का क्या रूप होगा ?"

"सबसे पूछ-ताछ करके ही तो निर्णय किया जा सकता है, बेटी ! पूछ-ताछ करने पर जो न्याय-संगत होगा, वही करेंगे। पल्लव-साम्राज्य में नीति के विरुद्ध कोई कार्य नहीं होगा !" चक्रवर्ती ने कहा।

सैंतीस

चोल देश की राजधानी का ऐसा सिंगार हुआ था कि देखने वाले विश्वास नहीं कर पाते थे कि यह वही उरैयूर है ! ऐसा लगता था कि पार्थिव महाराज की रण-यात्रा के समय उनके साथ जो लक्ष्मी विदा हो गई थी, आज पुनः उरैयूर को लौटी है।

सब जगह इसी बात की चर्चा थी कि कांची के नरसिंह पल्लव चक्रवर्ती उरैयूर में एक विराट सार्वजनिक सभा बुला रहे हैं, जिनमें सम्मिलित होने के लिए चोल देश के नगरों और गांवों में रहने वाले प्रमुख व्यक्ति भी आमंत्रित किए गए हैं। लोगों को आशा थी कि उस दिन की सभा में कई राज़ खुलेंगे और कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटेंगी।

पोन्नन और वल्लि उस दिन जब उरैयूर की गलियों में से गुज़र रहे थे तब लोगों ने उन्हें जगह-जगह रोककर पूछा, "कहो पोन्नन, आज क्या होने वाला है ?" लोगों को अपार कौतूहल था और उनकी उत्सुकता का कोई अन्त न था।

देवलोक में देवेन्द्र की सभा से लौटकर किसी ने यह नहीं बताया है कि वह कैसी होती है। लेकिन उस दिन उरैयूर में आयोजित मामल्ल नरसिंह चक्रवर्ती की सभा को देखने वालों ने एकमत होकर यह निष्कर्ष अवश्य निकाला होगा कि देवेन्द्र की सभा ऐसी ही होती होगी। सभा-मण्डप की सज-धज का क्या कहना ! नियत समय तक 'देवेन्द्र' को छोड़कर बाकी सभी अपने-अपने आसनों पर बैठ गए। चक्रवर्ती के सिंहासन के एक ओर वशिष्ठ और वामदेव की तरह शिवयोगी और शिरुत्तोण्डर बैठे थे। सिंहासन के दूसरी ओर चक्रवर्ती के सुपुत्र महेन्द्र और सुपुत्री कुन्दवि विराजमान थीं। कुन्दवि के बगल में अरुल्मोलिदेवी और शिरुत्तोण्डर की धर्मपत्नी तिरुवेण्काट्टुनगै दिखाई पड़ रही थीं। उन दोनों के बीच शिरुत्तोण्डर का इकलौता बेटा शीरालदेवन बैठा हुआ विस्मय-विस्फारित नेत्रों से चारों ओर देख

रहा था। इनके पीछे पोन्नन और वल्लि विनम्र भाव से खड़े थे। चक्रवर्ती के सिंहासन के ठीक सामने पल्लव सेनापति और पल्लव सैनिकों से घिरा विक्रम गर्वोन्नत खड़ा था।

उस विराट् सभा-मण्डप में मन्त्री, प्रधान, सेनापति, कोषाध्यक्ष, पण्डित, कलाकार, कविगण, प्रमुख व्यापारी, गांवों से आये हुए मुखिया आदि सभी अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। इन सबके अलावा एक व्यक्ति ऐसा भी था जो बरबस सब लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता था। उसकी वेश-भूषा से साफ़ प्रकट था कि वह तमिष़नाडु का नहीं है। चक्रवर्ती के सुपुत्र महेन्द्र के पीछे वह चुपचाप बैठा था। लोग उसकी ओर उंगली से इशारा करके आपस में कह रहे थे कि ये ही चीन देश से आये हुये यात्री हैं। उसके 'युवांग-च्वांग' नाम का लोग अपने-अपने ढंग से उच्चारण कर रहे थे।

चीन के इस यात्री के अलावा उस सभा में कुछ विदेशी और भी थे। वे वेश-भूषा से यद्यपि विदेशी जान पड़ते थे, पर उनकी भाषा तमिष़ ही थी। वे जहाज़ पर जौहरी देवसेन के साथ चम्पक द्वीप से आये हुए लोग थे। उस सभा में जो न्याय-विचार होने वाला था, उसका निर्णय जानने के लिए और विक्रम के भविष्य के विषय में उनकी उत्कण्ठा स्वाभाविक ही थी।

नियत समय के बाद भी जब चक्रवर्ती न आये तो लोग आपस में काना-फूसी करने लगे कि आखिर अभी तक वे क्यों नहीं आए, माज़रा क्या है ? अनेक कंठों से निकलने वाली फुसफुसाहट शोर-गुल का रूप धारण करे इसके पहले ही शिरुत्तोण्डर उठे और हाथ से चुप रहने का इशारा करते हुए बोले, "उपस्थित सज्जनो ! समाचार आया है कि चक्रवर्ती के सभा-मण्डप में पधारने में अभी थोड़ा समय और लगेगा। आज की सभा किस उद्देश्य से बुलाई गई है, यह आप सब जानते हैं। चक्रवर्ती के आने से पहले एक बार अब तक का इतिहास दुहरा लें तो आगे की बातें और सरल हो जायंगी। चक्रवर्ती से मुझे यही करने का आदेश मिला है।"

उनका कड़कता, गम्भीर कंठ स्वर सुनकर सभा-मंडप में स्तब्धता छा गई। सब बड़ी भक्ति और श्रद्धा से शिरुत्तोण्डर का मुख देखने लगे। शिरुत्तोण्डर ने कहना प्रारम्भ किया।

"वीर गति को प्राप्त हुए मेरे परम मित्र पार्थिव चोल महाराज के सुपुत्र विक्रम चोल आज आप लोगों के सामने न्याय-विचार के लिए अभियुक्त के रूप में खड़े किये गए हैं। विक्रम चोल ने चक्रवर्ती की आज्ञा का उल्लंघन करके यद्यपि अच्छा नहीं किया, फिर भी उस दोष के उत्तरदायी अकेले वे ही नहीं हैं। मेरी बगल में जो मित्र बैठे हैं, वे उसका अधिकांश उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने को प्रस्तुत हैं।" शिरुत्तोण्डर के मुँह से यह बात सुनकर सभा में उपस्थित सभी लोगों का ध्यान

शिवयोगी पर गया।

फिर शिरुतोण्डर ने लोगों को इसका स्मरण कराया कि दस वर्ष पहले पार्थिव महाराज ने युद्ध के लिए उरैयूर से कूच किया था और वेण्णारु के किनारे घमासान युद्ध हुआ था। फिर शिवयोगी की ओर इशारा करके वह बोले कि ये शिवयोगी महाराज रण-क्षेत्र में वीर गति को प्राप्त हुए महाराजा पार्थिव के मुख का दर्शन करने के लिए उनके शरीर की खोज में मारे-मारे फिरे थे। मृत्यु-शैया पर पड़े महाराज ने शिवयोगी सेअपने पुत्र को वीर और स्वतन्त्रता-प्रिय पुरुष बनाने का वर मांगा था और शिवयोगी ने सहर्ष स्वीकार भी किया था। इस घटना का उल्लेख सुनकर सभा के चारों कोनों से साधुवाद की ध्वनि फूट पड़ी। बहुतों की आंखों से तो आंसुओं की धारा ही बह चली।

उसके बाद शिवयोगी के उरैयूर आने, रानी अरुल्मोलि को सान्त्वना देने से लेकर पिछली अमावस्या तक जो भयावह घटनाएं घटी थीं, उनका आद्योपान्त वर्णन करके उन्होंने बताया कि विक्रम कैसे अपने प्राणों का मोह छोड़कर शिवयोगी को बचाने वहां आ पहुंचा था। सारी बातें बताने के बाद उन्होंने अन्त में पूछा, "उपस्थित सज्जनो, आप लोगों से एक बात पूछना चाहता हूं। क्या आप लोग यह मानते हैं कि मेरे मित्र शिवयोगी ने रण-क्षेत्र में पार्थिव महाराज को जो वचन दिया था, उसका उन्होंने पूरा पालन किया है? पार्थिव महाराज के सुपुत्र विक्रम का पालन-पोषण एक वीर, स्वतन्त्रता-प्रिय पुरुष के रूप में हुआ है?"

सभा-भवन में एक साथ सबके मुंह से 'हां! हां!' की ध्वनि उठी और मंडप के बाहर भी जाकर फैल गई।

शिरुत्तोण्डर हाथ से लोगों को शान्त होने का इशारा करते हुए बोले, "एक बात मैं आप लोगों को बताना भूल गया। शिवयोगी जब महाराज पार्थिव को रण-क्षेत्र में वचन दे चुके तो राजा ने उनसे पूछा था कि स्वामी, आप कौन हैं? तब इन कपट-वेशधारी शिवयोगी ने शब्दों में कोई उत्तर नहीं दिया था। केवल अपनी नकली जटा-जूट और दाढ़ी मूंछ-हटाकर अपना असली रूप उन्हें दिखा दिया था। शिवयोगी असल में कौन हैं—यह जानने के बाद पार्थिव महाराज ने शान्ति की सांस छोड़ी और अपने हृदय में यह दृढ़ विश्वास लिये स्वर्ग को प्राप्त हुए कि उनका मनोरथ अवश्य पूर्ण होकर रहेगा।" शिरुत्तोण्डर के मुख से यह सुनते ही सभा-मंडप में खलबली मच गई।

"मैं जानता हूं कि आप सब इन कपट-वेषधारी शिवयोगी का असली रूप देखने को उत्सुक होंगे। आप लोग खुशी से देख सकते हैं,"—कहते हुए शिरुत्तोण्डर शिवयोगी की तरफ मुड़े और अपने हाथों से एक ही झटके में उनकी जटा-जूट और दाढ़ी-मूंछ निकालकर रख दी। सबने देखा कि शिवयोगी की जगह अब मामल्ल नरसिंह चक्रवर्ती अपने तेजोमय गम्भीर रूप में विराजमान हैं।

आनन्द-कोलाहल का कोई पार न रहा। कुन्दवि अपने आसन से उठकर 'पिताजी' पुकारती हुई उनके पास दौड़ी गई। विक्रम आंखें फाड़कर उन्हें देखता रह गया। आनन्द में पागल पोन्नन ने यह भी न सोचा कि वह कहां है और क्या कर रहा है? भरे दरबार में वल्लि का हाथ अपने हाथ में लेकर वह हर्षातिरेक में नाचने लगा।

थोड़ी देर बाद नरसिंह चक्रवर्ती अपनी राज-पोशाक में सभा-मण्डप में प्रविष्ट हुए। उनके प्रवेश के समय और धर्म-सिंहासन पर बैठते समय 'जय विजयी भव' का कोलाहलपूर्ण नारा आसमान में गूंज उठा।

हर्ष-ध्वनि के थमने पर चक्रवर्ती अपने आसन से उठे और बोले, "विक्रम चोल के सम्बन्ध में आप लोगों की क्या राय है, यह मैंने जाना। देश से निर्वासित लोग बिना आज्ञा के वापस आएं तो दंड-विधान में उनके लिए शीर्षाज्ञा लिखी है। इसलिए मैं विक्रम चोल को यह आज्ञा देता हूं कि चोल राजाओं के इस पुरातन मणि-मुकुट को वे स्वतन्त्र रूप से धारण करें। आज से चोल देश स्वतन्त्र राज्य हो गया है। आगे इसका भार विक्रम चोल और उनके वंशज ही वहन करेंगे।"

उस समय जो हर्षध्वनि उठी, वह वर्णनातीत थी।

अड़तीस

शुभ घड़ी में विक्रम चोल प्रदेश का स्वतन्त्र राजा हुआ। वैसे ही एक शुभ मुहूर्त में पल्लव-राजकन्या कुन्दवि के साथ उनका विवाह भी बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। विवाह के उपरान्त विक्रम ने नरसिंह पल्लव को प्रणाम करते हुए आशीर्वाद मांगा तो उन्होंने कहा, "बेटा, अपने सुकर्मों से हमेशा यह सुकीर्ति पाओ कि तुम पार्थिव महाराज के सुपुत्र हो! भगवान् तुम्हें उसके योग्य संकल्प प्रदान करें!" उसी प्रकार जब कुन्दवि ने अरुल्मोलिदेवी को प्रणाम किया तो उन्होंने यह आशीर्वचन कहे—"बेटी, तुम्हें सकल सौभाग्य प्राप्त हों! नरसिंह चक्रवर्ती की पुत्री और पार्थिव महाराज की पुत्रवधू के योग्य व्यवहार कर तुम सुकीर्ति पाओ!"

विक्रम और कुन्दवि ने उरैयूर के राज-सिंहासन पर बैठकर जब शासन आरम्भ किया तो चोल प्रदेश सब तरह से सम्पन्न और समृद्ध था। प्रति माह तीन बार बारिश होती थी और प्रति वर्ष चोल देश की उपजाऊ भूमि तीन बार फ़सल देती थी। गांव-गांव में शिवालयों और विष्णु-मन्दिरों का निर्माण हुआ। शिल्प-कला, चित्र-कला आदि ललित कलाओं में अपार प्रगति हुई। लक्ष्मी और सरस्वती कावेरी नदी के तीर पर एक-दूसरे के हाथ में हाथ लिये आनन्दोत्सव मनाती थीं।

किन्तु फिर भी पार्थिव महाराज ने जो सपना देखा था, वह विक्रम के काल

में पूर्ण रूप से चरितार्थ न हो सका। सूर्य के सामने जैसे अन्य सभी ग्रह धुंधले पड़ जाते हैं, वैसे ही नरसिंह वर्मा चक्रवर्ती की महिमा के सामने विक्रम का कीर्ति-कलश न चमक सका। उसके लिए मामल्ल चक्रवर्ती की कीर्ति बाधक बनी रही। पार्थिव महाराज की वीर मृत्यु और विक्रम के पराक्रम से मामल्ल चक्रवर्ती की सुकीर्ति में ही चार चांद लगे थे।

नरसिंह चक्रवर्ती के बाद बहुत समय तक पल्लवों की कीर्ति अक्षुण्ण बनी रही। चोल देश अपनी सीमा में बंधा था। लेकिन विक्रम या उसके वंशजों में कोई भी पार्थिव महाराज के सपने को नहीं भूला। प्रत्येक चोल राजा अपने पुत्र को पार्थिव की वीर मृत्यु की कहानी सुनाता और उरैयूर के चित्र-मण्डप में उन्होंने जो सपने अंकित किये थे उन्हें दिखाता।

लगभग तीन सौ साल के बाद चोल देश की गद्दी पर राज-राज चोल और उसके सुपुत्र राजेन्द्र चोल बैठे। इनके शासन-काल में पल्लवों की कीर्ति मंद पड़ी और चोल देश महोन्नत दशा को प्राप्त हुआ। चोल देश के वीर सैनिक उत्तर में गंगा, दक्षिण में लंका और पूरब में समुद्र-पार के देश कडारम तक गए और विजय प्राप्त करके अपनी व्याघ्र-पताका फहराई।

व्याघ्र-पताका फहराते हुए चोल देश के जलयान समुद्र-पार के दूर देशों में भी गये और चावक, पुष्पक-जैसे द्वीपों को भी अपने अधिकार में कर लिया।

इसी काल में देश-भर में अपूर्व मन्दिर और गोपुर बने, जो चोल राजाओं की सुकीर्ति की तरह आसमान से बातें करते खड़े हैं। आज भी वे चोल राजाओं के यश की अमर गाथा का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। पार्थिव चोल ने जो सपने देखे थे वे उनकी वीर-मृत्यु के तीन सौ वर्ष बाद पूरे हुए। नियति का यह निर्णय यहां भी साकार दीखा कि वीर तथा पराक्रमी पुरुषों के स्वप्न एक-न-एक दिन पूरे अवश्य होते हैं।

□ □

साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित स्वर्गीय कृष्णमूर्ति (जो अपने उपनाम 'कल्कि' से लोक-विख्यात हुए) आधुनिक तमिष् साहित्य के उन्नायकों में अन्यतम थे। गद्य-लेखन के क्षेत्र में उन्होंने अपनी विपुल रचनाओं से उच्च स्थान प्राप्त किया था। विशेष रूप से, अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने जिस संकलन-शक्ति और शैलीगत ऊर्जस्विता का परिचय दिया उसने उन्हें तमिष्नाडु के कोने-कोने में यश का भागी बनाया।

प्रस्तुत रचना उन्हीं का एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें अनूठा आकर्षण है। पल्लव और चोल वंशों में दीर्घ-काल से वैमनस्य चला आ रहा था जिसके फलस्वरूप चोल युवराज विक्रम को अपने राज-सिंहासन से हाथ धोना पड़ा। आगे चलकर नाना कष्टों का सामना करने के उपरान्त विक्रम ने पल्लव राजकुमारी से विवाह करके इन दो वंशों के बीच के इस दीर्घ कलह का अन्त करके मैत्री और मेल के युग की स्थापना की।

प्रस्तुत रचना में प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व, दिल दहलाने वाली परिस्थितियाँ और वर्णन की स्फूर्तिमयी हृदयग्राही शैली पाठक के मन को अभिभूत कर लेती है।